सुलभजैनग्रंथमाला पुष्प ३

श्रीपरमात्मने नमः ।

श्रीमुनिस्वामिकार्तिकेय विरचित

# स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा

स्वर्गीय पं० जयचंद्रजी कृत वचनिका सहित ।

जिसको

गांधी हरीभाई देवकरण एंडसन्स् संरक्षित

भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाने

धरणगांव निवासी क्षेमकराम भगवानसा दि० जैन ओसवालकी

द्रव्यसे प्रकाशित किया ।

प्रथमावृत्ति } भाद्रपद वी० सं० २४४७ { न्योछावर ॥)

प्रकाशक—
पन्नालाल बाकलीवाल,
महामन्त्री—भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्था,
८ महेंद्रबोसलेन, श्यामबाजार-कलकत्ता।

मुद्रक—
श्रीलालजैन काव्यतीर्थ
जैनसिद्धांतप्रकाशक पवित्र प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन, श्यामबाजार-कलकत्ता।

# निवेदन।

धरणगांवनिवासी शेठ झूमकराम भगवानसा दिगम्बरी बीसा ओसवाल, आजसे चारवर्ष पहिले ( वी स २४४३ ) आठसौ रुपये प्रदान कर संस्थाके दानी सहायक हुये थे। यह रकम उन्होंने अपने मृत्युसमय ज्ञानावरणीय कर्मक्षयार्थ जिनवाणीके प्रचारार्थ निकाली थी। तदनुसार "तत्वज्ञानतरंगिणी" ग्रंथ प्रकाशित किया गया और उसकी आई न्योछावरसे आज यह दूसरा ग्रंथ सुलभजैनग्रंथमालामें निकाला जाता है।

संस्थामें दान किये गये द्रव्यसे दाताकी इच्छानुसार ग्रंथ प्रकाशित कर लागत मात्र न्योछावरसे सर्वसाधारणको दिये जाते हैं और उनकी संपूर्ण द्रव्य उठ आनेपर दूसरा ग्रंथ छपाया जाता है।

इसप्रकार एक बार दान देकर सैकडों वर्षोंतक अपनी या अपने कुटुम्बियोंकी कीर्तिलता जीवित रखनेवाले श्रीमानोंको संस्थाके दानी सहायक हो स्वपर कल्याण करना चाहिये।

मंत्री.

# प्रस्तावना.

## ( प्रथम संस्करण )

पाठक महाशय ! हमारी इच्छा थी कि मूल ग्रन्थकर्त्ताका जीवन चरित्र यथाशक्ति संग्रह करके प्रकाशित किया जाय परंतु यथासाध्य अन्वेषण करनेपर भी ग्रन्थकर्त्ताका कुछ भी सत्य संग्रह नहिं हुआ विशेष खेदकी बात यह है कि स्वामिकार्तिकेय मुनिमहाराज कौनसी शताब्दीमें हुए सो भी निर्णय नहिं हुआ यद्यपि दंतकथापरसे प्रसिद्ध है कि ये आचार्यवर्य विक्रम संवत्से दो तीनसौ वर्ष पहिले हुये हैं परंतु जबतक कोई प्रमाण न मिले इस दंतकथापर विश्वास नहिं किया जा सक्ता. आचार्योंकी कई पट्टावली भी देखी गई उनमें भी इनका नाम कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहिं हुवा किंतु इस ग्रंथकी गाथा ३९४ की संस्कृत टीका वा भाषा टीकामें इतना अवश्य लिखा हुवा मिला कि-" स्वामिकार्तिकेय मुनि क्रोंचराजाकृत उपसर्ग जीति देवलोक पाया " परंतु क्रौंचराजा कब हुवा और यह वाक्य कौनसे ग्रथके आधारसे टीकाकारने लिखा है सो हमको मिला नहीं एक मित्रने कहा कि इनकी कथा किसी न किसी कथाकोशमें मिलेगी परंतु प्रस्तुत समयतक कोई भी कथाकोश हमारे देखनेमें नहिं आया परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि ये बालब्रह्मचारी आचार्यश्रेष्ठ दो हजार वर्षसे पहिले हो गये हैं क्योंकि इस ग्रन्थकी प्राकृत भाषा व रचनाकी शैली विक्रमशताब्दीके बने प्राकृत पुस्तकोंसे भिन्न प्रकारकी ही यत्र तत्र दृष्टिगत हुई प्रचलित आधुनिक प्राकृतभाषाके व्याकरणोंमें भी इस ग्रन्थके आर्षप्रयोगोंकी सिद्धि बहुत कम मिलती है इसकारण मूल पुस्तकको शुद्ध करनेमें भी सिवाय प्राचीन प्रतियोंके कोई साधन प्राप्त नहिं हुवा है।

इस ग्रन्थमें मूल गाथा ४८९ हैं जिनमें मुमुक्षुजनोंके लिये प्राय आवश्यकीय सब ही विषय सक्षिप्त स्पष्टतया वर्णन किये गये हैं परंतु मुख्यतया इनमें ससारके दु ख दिखाकर संसारसे विरक्त होनेका उपदेश है, इसकारण समस्त विषय द्वादश अनुप्रेक्षाके कथनमें ही गर्भित करके वर्णन किये गय हैं मानो घडेमें समुद्र भर दिया गया है।

इस ग्रंथपर एक टीका तो प्राक गयके कर्ता जगत्प्रसिद्ध दिगबरजैनाचार्य वाग्भट्ट विरचित है जिसका उल्लेख पिटर्सनसाहब तथा बूलरसाहब की किसी रिपोर्टमें किया गया है उसके आदि अन्तके श्लोक छपे हुये एकवार हमारे देखनेमें आये थे। दूसरी टीका-पद्मनंदी आचार्यके पट्ट पर सुशोभित त्रैविद्यविद्याधरषड्भाषाकविचक्रवर्ति भट्टारक शुभचन्द्राचार्य सागवाडा पट्टाधीशकृत है जिसमें अनेक प्राचीन जैनग्रंथोंके प्रमाणोंसे ७००० श्लोकोंमें विस्तृतव्याख्या की है तीसरे—किसी महाशयने प्राकृत पदोंकी सस्कृत छाया लिखी है इसके सिवाय एक प्राचीन गुजर भाषामिश्रित टिप्पणिग्रन्थ भी प्राप्त हुवा है इन्ही सब ग्रंथोंपरसे मूल, तथा जयचन्द्रजीकी दो वचनिकापरसे शुद्ध करके मुद्रणयन्त्रद्वारा इस ग्रंथकी सुलभ प्राप्ति की गयी है मूलपाठमें जहा कहीं पाठान्तर था, कहीं २ टिप्पणीमें दिखाया गया है तथा सस्कृत टीकाकी प्रतिका पाठ शुद्ध समझकर वही पाठ रक्खा गया है।

यद्यपि हमारे कइ मित्रोंकी सम्मति थी कि जयचन्द्रकृत वचनिका ( भाषाटीका ) ढुढाडीभाषामिश्रित पुराने ढगकी है इसको वर्तमानकी प्रचलित हिंदीभाषामें परिवर्तन करके छापना उचित है परन्तु हमने ऐसा नहिं किया, कारण जैनियोंका जो कुछ हिंदी साहित्य—धर्मशास्त्र, पारलौकिक पदार्थविद्या वा अध्यात्म पुराणादिक हैं वे सब जयपुरीभाषा और

आगरेकी प्राचीन ब्रजभाषाके गद्यपद्यमें ही हैं यदि इस प्राचीन हिंदी सा-
हित्यको सर्व साधारणमें प्रचार नहिं करके सर्वथा आजकलकी नवीन गढी
हुई भाषामें ही अनुवादके ग्रंथ छपाये जांयगे तो कहांतक अनुवाद किया
जायगा क्योंकि प्रथम तो प्राचीन भाषाके ग्रंथ बहुत हैं दूसरे—हमारी
क्षुद्रजैनसमाजमें ऐसे बहुत कम विद्वान हैं जो प्राचीन हिंदी साहित्यके समस्त-
विषयोंके सैकडों ग्रंथोंका नया हिंदीमें अनुवाद कर सके हों तीसरे ऐसा
कोइ समझदार धर्मात्मा धनाढ्य सहायक भी तो नहीं दीखता, जो सबसे
पहिले करने योग्य जिनवाणीके जीर्णोद्धार करनेमें पुण्य वा नामवरी समझ-
ता हो जब समस्तप्रकारके प्राचीन हिंदी जैनग्रंथोंके अनुवादपूर्वक प्रका-
शित करनेका वर्तमानमें कोइ साधन नहीं है और उपदेशकोंके द्वारा पाठ
शालायें स्थापन करनेका प्रचार बढाया जाता है तो कुछ ग्रन्थ प्राचीन
भाषाके भी छापकर सर्व साधारणको इस भाषाके जानकार कर देना ब
हुत लाभ दायक हो सक्ता है क्योंकि नयी भाषाके ग्रन्थोंकी प्राप्ति नहीं
होगी तो प्राचीन भाषाका ज्ञान होनेसे हस्तलिखित प्राचीन भाषाके ग्रंथोंको
स्वाध्याय करके ही हमारे जैनीभाई ज्ञानप्राप्ति कर सकेंगे, परंतु—यह
भाषा कुछ मराठी गुजरातीकी तरह सर्वथा पृथक भी तो नहीं है ? हम
जहांतक विचारते हैं तो कोई २ ठेठ ढूंढाडी शब्द होने तथा द्वितीया प
चमी आदि विभक्तिव्यवहारका किंचिन्मात्र विभेदरूप होनेके सिवाय कोई
भी दोष इस भाषामें दृष्टिगोचर नहिं होता किन्तु आजकलकी नवीन हिंदी
भाषामें बहुभाग लेखकगण व बंग भाषाके अनुवादकगण संस्कृत शब्दोंकी
इतनी भरमार करते हैं कि उस भाषाको पश्चिमोत्तरप्रदेशके काशीप्रयागादि
मुख्य २ शहरोंके सिवाय ग्रामनिवासी, मारवाडी ( राजपूतानानिवासी )
गुजराती आदि कोइ भी नहीं समझ सके ऐसा दोष इस प्राचीन जयपुरी

भाषामें नहीं है क्योंकि यह भाषा बहुत सरल है तथा इस भाषाके ह-जारों ग्रंथ समस्त देशोंके बडे २ जिनमंदिरोंमें मौजूद हैं तथा बडे २ शहरों और ग्रामोंके पढे लिखे जैनी भाई नियमसे स्वाध्याय भी करते रहते हैं अतएव इस प्राचीन भाषाका अनादर नहिं करके इस भाषामें ही ग्रन्थोंका छपना युक्तिसंगत समझकर इस ग्रंथको नवीन भाषामें परिवर्तन नहिं किया गया किन्तु खास विद्वद्वर्य पंडित जयचन्द्रजीकी भाषामें ही छपाया है परंतु प्रमादवशात यत्र तत्र इस भाषासबंधी नियमोंका पालन नहि हुवा हो तो जयपुर निवासी विद्वद्गण क्षमाकरेंगे।

मुम्बयी जैनीभाइयोंका दास,

ता १–१०–१९०४ ई० पन्नालाल बाकलीवाल

## वक्तव्य।

इस ग्रंथकी पहिली आवृत्ति नहीं मिल सकनेके कारण हमने सर्व साधारणके हितार्थ यह सुलभ संस्करण कराया है। पहिले गाथाओंके नीचे छाया थी वह इस बार नहीं छपाई गई क्यों कि संस्कृतज्ञ थोडासा ही परिश्रम करनेसे गाथाओं द्वारा भी अपना प्रयोजन सिद्ध कर सकते हैं। संशोधनमें यथाशक्ति सावधानी रक्खी है प० जयचन्द्रजी कृत पीठिका और विषय सूची साथमें छपाकर पहिली त्रुटि दूर करदी गई है।

आशा है पाठक गण ! इस संसारके सच्चे स्वरूपको बतलानेवाले मनकी चंचलताके निवारक ग्रन्थका स्वाध्याय कर वास्तविक शांतिका लाभ करेंगे।

मंत्री.

# विषयसूची।

## पीठिका ।

अब यामें प्रथम ही पीठिका लिखिए है। तहां प्रथम ही मंगलाचरण गाथा एकमें करि बहुरि गाथा दोयमें बारह अनुप्रेक्षाका नाम कहे हैं। पीछै उगणीस गाथामें अध्रुवानुप्रेक्षाका वर्णन किया। पीछै अशरण अनुप्रेक्षाका वर्णन गाथा नवमें किया। पीछै संसार अनुप्रेक्षाका वर्णन गाथा बियालीसमें किया है। तहां च्यारि गति दुःखका वर्णन, संसारकी विचित्रताका वर्णन, पंच प्रकार परावर्तनरूप भ्रमणका वर्णन है। बहुरि पीछै एकत्वानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा छहमें किया। पीछै अन्यत्वानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा तीनमें किया। पीछै अशुचित्वानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा पांचमें किया है। पीछै आस्रवानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा सातमें किया है। पीछै संवरानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा सातमें किया है। पीछै निर्जरानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा तेरामें किया है। पीछै लोकानुप्रेक्षाका वर्णन गाथा एकसौ अठसठमें कीया है। तहां यह लोक षट्द्रव्यनिका समूह है। सो आकाशद्रव्य अनंता है ताके मध्य जीव अजीव द्रव्य है ताकूं लोक कहिये है। सो पुरुषाकार चौदह राजू ऊंचा घनरूप क्षेत्रफल कीए तीनसै तियालीस राजू होय है। ऐसैं कहिकरि पीछै कहा है जो यह जीव अजीव द्रव्यनितैं भरया है। तहां प्रथम जीव द्रव्यका वर्णन किया है। ताकै अठ्याणवै जीव समास कहे हैं, पीछै पर्याप्तिनिका वर्णन है। बहुरि तीन लोकमें जो जीव जहां जहां बसै हैं तिनका

वर्णन करि तिनकी संख्याका कही है ताका अल्प बहुत्व कह्या है। बहुरि आयु कायका परिमाण कह्या है। बहुरि अन्यवादी कई जीवका स्वरूप अन्य प्रकार मानै हैं, तिनि-का युक्ति करि निराकरण किया है। बहुरि अंतरात्मा ब-हिरात्मा परमात्माका वर्णन करि कह्या है—जो अंतरात्मा जो जीव है अर अन्य सर्व मात्र तत्त्व है। ऐसे कहि करि जीवनिका निरूपण समाप्त किया है। पीछे अजीवका नि-रूपण है। तहां पुद्गल द्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाश-काल द्रव्यका वर्णन किया है। बहुरि द्रव्यनिके परस्पर कारण कार्य भावका निरूपण किया है। बहुरि कह्या है जो द्रव्य सर्व ही परिणामी द्रव्य पर्यायस्वरूप हैं ते अनेकान्त स्वरूप हैं। अनेकान्त विना कार्य कारण भाव नाहीं बनै है। कारण कार्य विना काहेका द्रव्य? ऐसैं कह्या है। बहु-रि द्रव्य पर्यायका स्वरूप कहिकरि पीछे सर्व पदार्थकू जान-नेवाला प्रत्यक्ष परोक्ष स्वरूप ज्ञानका वर्णन किया है। ब-हुरि अनेकान्त वस्तुका साधनेवाला श्रुतज्ञान है, ताके भेद नय हैं। ते वस्तुकू अनेक धर्मस्वरूप साधै हैं तिनिका वर्णन है। बहुरि कह्या है जो यथार्थ नयनिते वस्तुकू साधि मोक्ष-मार्गकू साधै हैं ऐसे तत्त्वके सुननेवाले, जाननेवाले, भाव-नेवाले विरले हैं विषयनिके वशीभूत होनेवाले बहुत हैं। ऐसे कहिकरि लोकभावनाका कथन संपूर्ण किया है। बहु-रि आगे बोधदुर्लभानुप्रेक्षाका वर्णन अठारह गाथानिमें कीया है। तहां निगोदतैं लेकरि जीव अनेक पर्याय सदा

पाया करै है। ते सर्व सुगम हैं। अर सम्यग्ज्ञान चारित्र स्वरूप मोक्षका मार्गका पावना अति दुर्लभ है। ऐसैं कह्या है। आगैं धर्मानुप्रेक्षाका वर्णन एकसौ छत्तीस गाथामें है, तहां निवै गाथामें तो श्रावक धर्मका वर्णन है। तामें छत्तीस गाथामें तो अविरत सम्यग्दृष्टीका वर्णन है। पीछैं दोय गाथामें दर्शन प्रतिमाका, इकतालीस गाथामें व्रतप्रतिमाका, तिनमें पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत ऐसे बारह व्रतनिका, दोय गाथामें सामायिक प्रतिमाका, छह गाथामें प्रोषध प्रतिमाका, तीन गाथामें सचित्त त्याग प्रतिमाका, दोय गाथामें अनुमति त्याग प्रतिमाका दोय गाथामें उद्दिष्ट आहार त्याग प्रतिमाका, ऐसैं ग्यारा प्रतिमाका वर्णन है। बहुरि छियालीस गाथामें मुनिके धर्मका वर्णन है। तहां रत्न त्रयकरि युक्त मुनि होय उत्तम क्षमा आदि दश लक्षण धर्मकू पालै, तिन दश लक्षणका जुदा २ वर्णन है। पीछैं अहिंसा धर्मकी बड़ाई वर्णन है। बहुरि फेरि कह्या है जो धर्म सेवना सो पुण्य फलके अर्थि न सेवना, मोक्षके अर्थि सेवना। बहुरि शंका आदि आठ दूषण हैं सो धर्ममैं नाहीं राखणे। निशंकित आदि आठ अंग सहित धर्म सेवना, ताका जुदा जुदा वर्णन है। बहुरि धर्मका फल माहात्म्य वर्णन किया है। ऐसैं धर्मानुप्रेक्षाका वर्णन समाप्त कीया है। बहुरि आगैं धर्मानुप्रेक्षाकी चूलिका स्वरूप बारह प्रकार तप है। तिनिका जुदा जुदा वर्णन है। ताकी गाथा इक्यावन हैं। बहुरि तीन गाथामें कर्ता अपना कर्तव्य प्रगटकरि अन्त मंगल करि ग्रन्थ समाप्त किया है। सर्व गाथा च्यारिसै निवै हैं ऐसैं जानना।

श्रीपरमात्मने नमः

# स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा।

( भाषानुवादसहित )

भाषाकारका मंगलाचरण ।

## दोहा ।

प्रथम ऋषभ जिन धर्मकर, सनमति चरम जिनेश ।
विघनहरन मंगलकरन, भवतमदुरितदिनेश ॥ १ ॥
वानी जिनमुखतैं खिरी, परी गणाधिपकान ।
अक्षरपदमय विस्तरी, करहि सकल कल्यान ॥ २ ॥
गुरु गणधर गुणधर सकल, प्रचुर परंपर और ।
व्रततपधर तनुनगनतर, वंदों वृष शिरमौर ॥ ३ ॥
स्वामिकार्त्तिकेयो मुनी, बारह भावन भाय ।
कियो कथन विस्तार करि, प्राकृतछन्द बनाय ॥ ४ ॥
ताकी टीका संस्कृत, करी सुघर शुभचन्द्र ।
सुगमदेशभाषामयी, करूं नाम जयचन्द्र ॥ ५ ॥

पढहु पढावहु भव्यजन, यथाज्ञान मनधारि ।
करहु निर्जरा कर्मकी, बार बार सुविचारि ॥ ६ ॥

ऐसें देवशास्त्र गुरको नमस्काररूप मंगलाचरणपूर्वक प्रतिज्ञा करि स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षानामा ग्रन्थकी देशभाषामय वचनिका करिये है। तहां संस्कृत टीकाका अनुसार ले, मेरी बुद्धिसारू गाथाका संक्षेप अर्थ लिखियेगा तामें कहीं चूक होय तौ विशेष बुद्धिमान सवार लीजियो ।

श्रीमत्स्वामिकार्त्तिकेय नामा आचार्य अपने ज्ञानवैराग्य की वृद्धि होना, नवीन श्रोता जनोंके वैराग्यका उपजना तथा विशुद्धता होनेतें पापकर्मकी निर्जरा, पुण्यका उपजना, शिष्टाचारका पालना निर्विघ्नतें शास्त्रकी समाप्ति होना इत्यादि अनेक भले फल चाहिता संता अपने इष्टदेवको नमस्काररूप मंगलपूर्वक प्रतिज्ञाकरि गाथासूत्र कहै हैं—

तिहुवणतिलयं देवं, वंदित्ता तिहुअणिंदपरिपुज्जं ।
वोच्छं अणुपेहाओ, भवियजणाणंदजणणीओ ॥ १ ॥

भावार्थ—तीन भुवनका तिलक, बहुरि तीन भुवनके इंद्रनिकरि पूज्य ऐसा देव है ताहि में वंदिकार भव्य जीवनिकों आनन्दके उपजावनहारी अनुप्रेक्षा तिनहि कहूंगा। भावार्थ—

---

(१) इस जगह भाषानुवादक स्वर्गीय पं० जयचन्द्रजीने समस्त ग्रन्थकी पीठिका (कथनकी संक्षिप्त सूचनिका) लिखी है सो हमने उसको यहां न रखकर आधुनिक प्रथानुसार भूमिकामें (प्रस्तावनामें) लिखा है।

यहां 'देव' ऐसी सामान्य संज्ञा है सो क्रीडा विजिगीषा द्युति स्तुति मोद गति काति इत्यादि क्रिया करै ताकौ देव कहिये. तहा सामान्यविषै तो चार प्रकारके देव वा कल्पित देव भी गिनिये है तिनितैं न्यारा दिखानेके अर्थि 'त्रिभुवनतिलक' ऐसा विशेषण किया तातै अन्यदेवका व्यवच्छेद ( निराकरण ) भया, बहुरि तीनभुवनके तिलक इन्द्र भी है तिनितैं न्यारा दिखावनेके अर्थि 'त्रिभुवनेंद्रपरिपूज्य' ऐसा विशेषण किया, यातैं तीन भुवनके इन्द्रनिकरि भी पूजनीक ऐसा देव है ताहि नमस्कार किया, इहा ऐसा जानना कि ऐसा देवपणा अर्हत् सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इन पंच परमेष्ठीविषै ही संभवै है जातै परम स्वात्मजनित आनद सहित क्रीडा, तथा कर्मके जीतने रूप विजिगीषा, स्वात्मजनित प्रकाशरूप द्युति, स्वस्वरूपकी स्तुति, स्वरूपविषै परमप्रमोद, लोकालोकव्यापरूप गति, शुद्धस्वरूपकी प्रवृत्तिरूप कान्ति इत्यादि देवपणाकी उत्कृष्ट क्रिया सो समस्त एकदेश वा सर्वदेशरूप इनिहीविषै पाईए है तातैं सर्वोत्कृष्ट देवपना इनिहीविषै आया, तातैं इनिकौं मगलरूप नमस्कार युक्त है 'म' कहिये पाप ताकौ गालै तथा 'मंग' कहिये सुख, ताकौ लाति ददाति कहिये दे, ताहि मगल कहिये. सो ऐसे देवकौ नमस्कार करनेतैं शुभपरिणाम हो है तातै पापका नाश हो है. शातभावरूप सुख प्राप्ति हो है, बहुरि अनुप्रेक्षाका सामान्य अर्थ बारम्बार चितवन करना है । तहां चितवन अनेक प्रकार है, ताके करनेवाले अनेक है, तिनितैं न्यारे

बनेके अर्थि 'भव्यजनानन्दजननीः' ऐसा विशेषण दिया है-तातैं भव्यजीवनिकैं मोक्ष होना निकट आया होय तिनिकैं आनन्दकी उपजावनहारी ऐसी अनुप्रेक्षा कहूंगा। बहुरि यहां 'अनुप्रेक्षा' ऐसा बहु वचनांत पद है सो अनुप्रेक्षा-सामान्य चितवन एक प्रकार है तो हू अनेक प्रकार है, तहां भव्य जीवनिको सुनते ही मोक्षमार्गविषै उत्साह उपजै, ऐसा चितवन संक्षेपताकरि बारह प्रकार है, तिनका नाम तथा भावनाकी प्रेरणा दोय गाथानिविषै कहै हैं।

अद्धुव असरण भणिया संसारामेगमण्णमसुइत्त ।
आसव संवरणामा णिज्जरलोयाणुपेहाओ ॥ २ ॥
इय जाणिऊण भावह दुल्लह धम्माणुभावणाणिच्चं ।
मणवयणकायसुद्धी एदा उद्देसदो भणिया ॥ ३ ॥

भाषार्थ-भो भव्य जीव हो! एते अनुप्रेक्षा नाम मात्र जिनदेव कहे हैं, तिनहिं जाणकरि मनवचनकाय शुद्ध करि आगें कहेंगे तिसप्रकार निरंतर भावो. ते कौन? अध्रुव १ अशरण २ संसार ३ एकत्व ४ अन्यत्व ५ अशुचित्व ६ आस्रव ७ संवर ८ निर्जरा ९ लोक १० दुर्लभ ११ धर्म १२ ऐसे बारह। भावार्थ-ये बारह भावनाके नाम कहे, इनका विशेष अर्थरूप कथन तो यथास्थान होयहीगा। बहुरि नाम ये सार्थक हैं तिनिका अर्थ कहा? अध्रुव तौ अनित्यकों कहिये। जामें शरण नाहीं सो अशरण। भ्रमणकों संसार कहिये। जहां दूसरा नहीं सो एकत्व। जहां सर्वतैं जुदा सो

अन्यत्व। मलिनताकों अशुचित्व कहिये। जो कर्मका आवना सो आस्रव। कर्मका आवना रोकै सो संवर। कर्मका खरना सो निर्जरा। जामें षट्द्रव्य पाइये सो लोक। अतिकठिनता-सौं पाइए सो दुर्लभ। संसारतैं उद्धार करै सो वस्तुस्वरूपा-दिक धर्म। इस प्रकार इनके अर्थ हैं।

—:o:—

## अथ अध्रुवानुप्रेक्षा लिख्यते.

प्रथम ही अध्रुवानुप्रेक्षाका सामान्य स्वरूप कहै हैं,—

जं किंपिवि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणामसरूवेण वि ण य किंपिवि सासयं अत्थि॥४॥

भाषार्थ—जो कुछ उपज्या, ताका नियमकरि नाश हो है. परिणाम स्वरूपकरि कछू भी शाश्वता नाहीं है. भावार्थ सर्ववस्तु सामान्य विशेषस्वरूप हैं तहां सामान्य तो द्रव्यको कहिये, विशेष गुणपर्यायको कहिये. सो द्रव्य करिकै तो वस्तु नित्यही है. बहुरि गुण भी नित्यही है और पर्याय है सो अ-नित्य है याकों परिणाम भी कहिये सो यहु प्राणी पर्याय-बुद्धि है सो पर्यायकू उपजता विनशता देखि हर्षविषाद करै है तथा ताकू नित्य राख्या चाहै है सो इस अज्ञानकरि व्या-कुल होय है, ताकों यहु भावना ( अनुप्रेक्षा ) चिंतवना युक्त है। जो मैं द्रव्यकरि शाश्वता आत्मद्रव्य हों, बहुरि उपजै विनशै है सो पर्यायका स्वभाव है, यामें हर्षविषाद

कहा? शरीर है सो जीव पुद्गलका संयोगजनित पर्याय है, धन धान्यादिक है ते पुद्गलके परमाणूनिके स्कन्धपर्याय हैं सो इनके मिलना बिछुरना नियमकरि अवश्य है, थिरकी बुद्धि करै है सो यहु मोहजनित भाव है तातैं वस्तु स्वरूप जानि हर्ष विषादादिकरूप न होना।

आगें इसहीको विशेषकरि कहै हैं,—

जम्म मरणेण समं संपज्जइ जुव्वणं जरासहियं।
लच्छी विणाससहिया इयसव्वं भंगुरं मुणह॥ ५॥

भाषार्थ—भो भव्य हो! यह जन्म है सो तौ मरणकरि सहित है, यौवन है सो जराकर सहित उपजै है, लक्ष्मी है सो विनाश सहित उपजै है, ऐसें ही सर्व वस्तु क्षणभंगुर जानहु. भावार्थ—जेती अवस्था जगतमें हैं, तेती सर्व प्रतिपक्षी भावको लिये हैं. यह प्राणी जन्म होय तब तो ताकूं थिर मानि हर्ष करै है मरण होय तब गया मानि शोक करै है. ऐसें ही इष्टकी प्राप्तिमें हर्ष, अप्राप्तिमें विषाद, तथा अनिष्टकी प्राप्तिमें विषाद, अप्राप्तिमें हर्ष करै है. सो यह मोहका माहात्म्य है ज्ञानीनिको समभावरूप रहना।

अथिरं परियणसयणं पुत्तकलत्तं सुमित्त लावण्णं।
गिहगोहणाइ सव्वं णवघणविंदेण सारित्थं॥ ६॥

भाषार्थ— जैसे नवीन मेघके बादल तत्काल उदय होकर विलाय जांय, तैसें ही या संसारविषै परिवार बंधुवर्ग

पुत्र, स्त्री, भले मित्र, शरीरकी सुन्दरता, गृह, गोधन इत्यादि समस्त वस्तु अथिर है। भावार्थ– ये सर्व वस्तु अथिर जानिकरि हर्ष विषाद नहिं करना।

सुरधणुतडिव्वचवला इंदियविसया सुभिच्चवग्गा य।
दिट्ठपणट्ठा सव्वे तुरयगयरहवरादीया ॥ ७ ॥

भावार्थ– या जगतविषै इन्द्रियनके विषय हैं ते इन्द्रधनुष तथा बिजलीके चमत्कारवत् चचल हैं पहिली दीसैं पीछैं तुरत विलाय जाय हैं बहुरि तैसे ही भले चाकरनिके समूह हैं बहुरि तैसे ही भले घोडे हस्ती रथ हैं ऐसे सर्व ही वस्तु हैं. भावार्थ– यह प्राणी श्रेष्ठ इन्द्रियनके विषय भले चाकर घोडे हाथी रथादिक की प्राप्ति करि सुख मानै है. सो ये सारे क्षणविनश्वर हैं. अविनाशी सुखका उपाय करना ही योग्य है।

आगे बन्धुजनका सगम कैसा है सो दृष्टान्तद्वारकरि कहैं हैं–

पंथे पहियजणाणं जह संजोओ हवेइ खणमित्तं।
बंधुजणाणं च तहा संजोओ अद्धुओ होइ ॥ ८॥

भावार्थ– जैसें मार्गविषै पथिक जननिका संयोग क्षण मात्र है तैसें ही ससारविषै बन्धुजननिका सयोग अथिर है।

भावार्थ– यह प्राणी बहुत कुटुम्ब परिवार पावै, तब अभिमान करि सुख मानै है या मदकरि निजस्वरूपको भूलै है, सो यहु बन्धुवर्गका संयोग मार्गके पथिकजन सा-

रिखा है शीघ्र ही बिछुडै है. याविषै संतुष्ट होय स्वरूपकूं न भूलना.

आगे देहसंयोगकूं अथिर दिखावै हैं—

अइलालिओ वि देहो ण्हाणसुयंधेहिं विविहभक्खेहिं
खणमित्तेण वि विहडइ जलभरिओ आमघडउव्व॥

भावार्थ– देखो यह देह स्नान तथा सुगंध वस्तुनि करि संवारया हुवा भी तथा अनेक प्रकार भोजनादि भक्ष्य-निकरि पाल्या हुआ भी जलका भरया कचा घडाकी नाईं क्षणमात्रमें विघट जाय है। भावार्थ– ऐसे शरीरविषै स्थिर-बुद्धि करना बडी भूल है।

आगे लक्ष्मीका अथिरपणा दिखावै हैं—

जा सासया ण लच्छी चक्कहराण पि पुण्णवंताणं।
सा किं बंधेइ रई इयरजणाणं अपुण्णाणं॥ १०॥

भावार्थ– जो लक्ष्मी कहिये संपदा पुण्यकर्मके उदय सहित जे चक्रवर्ति तिनकै भी शाश्वती नाहीं तौ अन्य जे पुण्यउदयरहित तथा अल्प पुण्यसहित जे पुरुष हैं तिनसहित कैसे राग बांधै? अपितु नाहीं बांधै भावार्थ– या संपदाका अभिमानकरि यहु प्राणी प्रीति करै है सो वृथा है।

आगे याही अर्थको विशेष करि कहै हैं,—

कत्थवि ण रमइ लच्छी कुलीणधीरे वि पंडिए सूरे।

पुज्जो धम्मिट्ठो वि य सुरूवसुयणो महासत्ते ॥ ११ ॥

भावार्थ- यह लक्ष्मी संपदा कुलवान धैर्यवान पंडित सुभट पूज्य धर्मात्मा रूपवान सुजन महापराक्रमी इत्यादि काहू पुरुषनिविषैहू नाहीं राचै है भावार्थ- कोई जानैगा कि मैं बडा कुलका हू, मेरे बडाकी संपदा है, कहा जाती है तथा मैं धीरजवान हौं कैसे गमाऊंगा. तथा पंडित हौं, विद्यावान हौं, मेरी कौन ले है मोकू देहीगा तथा मैं सुभट हू कैसे काहूको लेने द्योंगा तथा मैं पूजनीक हू मेरी कौन ले है. तथा मैं धर्मात्मा हौं, धर्मतैं तो आवै, छती कहां जाय है तथा मैं बडा रूपवान हो, मेरा रूप देखि ही जगत प्रसन्न है, संपदा कहां जाय है तथा मैं सुजन हो परका उपकारी हौं, कहा जायगी, तथा मैं बडा पराक्रमी हौं, संपदा बढाऊंगा, छती कहा जानै द्योंगा, सो यह सर्व विचार मिथ्या है. यह संपदा देखते देखते विलय जाय है. काहूकी राखी रहती नाहीं ।

आगे कहै हैं जो लक्ष्मी पाई ताकों कहा करिये सोई कहिये हैं,—

ता भुंजिज्जउ लच्छी दिज्जउ दाणं दयापहाणेण ।
जा जलतरंगचवला दोतिण्णिदिणाणि चिट्ठेइ ॥१२॥

भावार्थ—यह लक्ष्मी जलतरंगसारखी चञ्चल है । जैते दो तीन दिन ताईं चेष्टा करै है, विद्यमान है, तैतैं भोगवो,

दयाप्रधान होय करि दान द्यो। भावार्थ—कोऊ कृपणबुद्धि था लक्ष्मीकूं संचय करि थिर राख्या चाहै ताकूं उपदेश है। जो यहु लक्ष्मी चंचल है, रहनेकी नाहीं, जेते थोरे दिन विद्यमान है, तेते प्रभुकी भक्तिनिमित्त तथा परोपकारनिमित्त दानकरि खरचो तथा भोगवो। इहां प्रश्न—जो भोगनेमें तो पाप निपजै है। भोगनेका उपदेश काहेकूं दिया? ताका समाधान-संचय राखनेमें प्रथम तो ममत्व बहुत होय तथा कोई कारणकरि विनशै तब विषाद बहुत होय। आसक्त पणेंते कषाय तीव्र परिणाम मलिन निरंतर रहै हैं। बहुरि भोगनेमें परिणाम उदार रहैं, मलिन न रहैं। उदारतासूं भोग सामग्रीविषै खरचै, तामैं जगत जश करै। तहां भी मन उज्ज्वल रहै है। कोई अन्य कारणकरि विनशै तो विषाद बहुत न होय इत्यादि भोगनेमें भी गुण होय है। कृपणकै तो कछु ही गुण नाहीं। केवल मनकी मलिनताको ही कारण है। बहुरि जो कोई सर्वथा त्याग ही करै तो ताकौं भोगने का उपदेश है नाहीं।

जो पुण लच्छिं सच्चदि ण य भुंजदि णेय देदि पत्तेसु
सो अप्पाण वंचदि मणुयत्तं णिप्फलं तस्स ॥१३॥

भावार्थ—बहुरि जो पुरुष लक्ष्मीको संचय करै है, पात्रनिके निमित्त न दे है, न भोगवै है, सो अपने आत्माको ठगै है। ता पुरुषका मनुष्यपना निष्फल है वृथा है। भा- पुरुषने लक्ष्मी पाप संचय ही किया। दान

भोगमें न खर्चा, तानें मनुष्यपणा पाय कहा किया, निष्फल ही खोया, आपा ठगाया ।

जो संचिऊण लच्छि धरणियले संठवेदि अइदूरे ।

सो पुरिसो तं लच्छि पाहाणसमाणियं कुणइ ॥ १४॥

भावार्थ—जो पुरुष अपनी लक्ष्मीको अति ऊंडी पृथिवी तलमें गाडै है, सो पुरुष उस लक्ष्मीको पाषाणसमान करै है । भावार्थ—जैसें हवेलीकी नीवमें पाषाण धरिये है । तैसें याने लक्ष्मी गाडी तब पाषाणतुल्य भई ।

अणवरयं जो संचदि लच्छि ण य देदि णेय भुंजेदि

अप्पणिया वि य लच्छी परलच्छिसमाणिया तस्स ॥

भावार्थ—जो पुरुष लक्ष्मीको निरन्तर संचय करै है, न दान करै है, न भोगवै है, सो पुरुष अपनी लक्ष्मीको परकी समान करै है । भावार्थ—लक्ष्मी पाय दान भोग न करै हैं, ताकै वह लक्ष्मी पैलेकी है । आप रखवाला ( चौकी-दार है ) है, लक्ष्मीको कोऊ अन्य ही भोगवैगा ।

लच्छीसंसत्तमणो जो अप्पाणं धरेदि कट्ठेण ।

सो राइदाइयाणं कज्जं साधेहि मूढप्पा ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो पुरुष लक्ष्मीविषै आसक्तचित्त हुवा संता अपने आत्माको कष्टसहित राखै है, सो मूढात्मा राजानिका तथा कुटुम्बीनिका कार्य साधै है । भावार्थ—

आसक्तचित्त होयकरि याके उपजावनेके अर्थि तथा रक्षाके अर्थ अनेक कष्ट सहै है, सो वा पुरुषके केवल कष्ट ही फल होय है। लक्ष्मी कों तो कुटुंब भोगवैगा, कै राजा लेगा।

जो वड्ढारइ लच्छि बहुविहबुद्धीहिं णेय तिप्पेदि।
सव्वारंभ कुव्वदि रत्तिदिणं तपि चिंतवदि ॥ १७ ॥
ण य भुंजदि वेलाए चिंतावत्थो ण सुयदि रयणीये।
सो दासत्त कुव्वदि विमोहिदो लच्छितरुणीए ॥१८॥

भावार्थ– जो पुरुष अनेक प्रकार कला चतुराई बुद्धि करि लक्ष्मीने बधावै है, तृप्त न होय है, याके वास्ते असि मसि कृष्यादिक सर्वारंभ करै है, रातिदिन याहीके आरम्भ को चितवे है, वेला भोजन न करै है, चितामें तिष्ठता हुवा रात्रि विषै सोवै नाहीं है सो पुरुष लक्ष्मीरूपी स्त्रीका मोह्या हुवा ताका किंकरपणा करै है, भावार्थ– जो स्त्रीका किंकर होय तानें लोकविषै 'मोहल्या' ऐसा निंद्यनाम कहै हैं, जो पुरुष निरन्तर लक्ष्मीके निमित्त ही प्रयास करै है सो लक्ष्मीरूपी स्त्रीका मोहल्या है।

आगें जो लक्ष्मीको धर्म कार्यमें लगावै ताकी प्रशसा करै हैं–

जो वड्ढमाण लच्छि अणवरयं देहिधम्मकज्जेसु।
सो पंडिएहिं थुव्वदि तस्स वि सहला हवे लच्छी ॥१९॥

भावार्थ–जो पुरुष पुण्यके उदय करि बधती जो लक्ष्मी

ताहि निरन्तर धर्म कार्यनिविषै दे है सो पुरुष पंडितनिकरि स्तुति करने योग्य है बहुरि ताहीकी लक्ष्मी सफल है भावार्थ–लक्ष्मी पूजा प्रतिष्ठा, यात्रा, पात्रदान, परका उपकार इत्यादि धर्मकार्यविषै खरची हुई ही सफल है, पंडितजन भी ताकी प्रशंसा करै है।

एवं जो जाणित्ता विहलियलोयाण धम्मजुत्ताणं।
णिरवेक्खो तं देहि हु तस्स हवे जीवियं सहलं॥२०॥

भाषार्थ–जो पुरुष पहिले कह्या ताकों जाणि धर्मयुक्त जे निर्धन लोक है, तिनकै अर्थि प्रति उपकारकी वांछासों रहित हूवा तिस लक्ष्मीको दे है, ताका जीवन सफल है। भावार्थ–अपना प्रयोजन साधनेके अर्थि तौ दान देनेवाले जगतमें बहुत है. बहुरि जे प्रतिउपकारकी वांछारहित धर्मात्मा तथा दुःखी दरिद्र पुरुषनिको धन दे हैं, ऐसे विरले हैं उनका जीवितव्य सफल है।

आगें मोहका माहात्म्य दिखावै है—

जलबुव्वयसारित्थं धणजुव्वणजीवियं पि पेच्छंता।
मण्णंति तो वि णिच्चं अइबलिओ मोहमाहप्पो॥२१॥

भाषार्थ–यह प्राणी धन यौवन जीवनको, जलके बुद्बुदासारिसे तुरत विलाय जाते देखते सते भी नित्य मानै है सो यह हू बडा अचिरज है यह मोहका माहात्म्य बडा बलवान है. भावार्थ–वस्तुका स्वरूप अन्यथा जनावनेको मदपी–

मना ज्वरादिक रोग नेत्रविकार अन्धकार इत्यादि अनेक कारण हैं, परन्तु यह मोह सर्वतैं बलवान है, जो अत्यन्त विनाशीक वस्तुकौ देखै है, सो तू नित्य ही मनावै है तथा मिथ्यात्व काम क्रोध शोक इत्यादिक है ते सब मोहहीके भेद हैं ए सर्व ही वस्तु स्वरूपविषै अन्यथा बुद्धि करावै हैं।

आगें या कथनको सकोचै हैं—

चइऊण महामोह विसऐ सुणिऊण भगुरे सव्वे ।
णिव्विसय कुणह मण जेण सुहं उत्तमं लहइ ॥२२॥

भाषार्थ-भो भव्य जीव हो ! तुम समस्त विषयनिकूं विनाशीक सुणकरि, महा मोह को छोडकरि, अपने मनकूं विषयनितैं रहित करिहू, जातैं उत्तम सुखकौ पावो. भावार्थ-पूर्वोक्त प्रकार ससार देह भोग लक्ष्मी इत्यादिक अथिर दिखाये तिनकू सुणिकरि अपना मनकू विषयनितैं छुडाय अथिर भावैगा सो भव्य जीव सिद्धपदके सुखकों पावैगा ।

—o—

## अथ अशरणानुप्रेक्षा लिख्यते

सत्थ भवे किं सरणं जत्थ सुरिंदाण दीसये विलओ ।
हरिहरबंभादीया कालेण कवलिया जत्थ ॥ २३ ॥

भाषार्थ-जिस ससारविषै देवनिके इन्द्रनिका विनाश देखिये है बहुरि जहा हरि कहिये नारायण, हर कहिये रुद्र, ब्रह्मा कहिये विधाता आदि शब्द कर बडे २ पदवीधारक

सर्वही कालकरि ग्रसे, तिस संसारविषै कहा शरणा होय ? किछू भी न होय. भावार्थ—शरणा ताकूं कहिये जहा अपनी रक्षा होय, सो ससारमें जिनका शरणा विचारिये ते ही काल-पाय नष्ट होय हैं तहा काहेका शरणा ?

आगें याका दृष्टान्त कहै हैं,—

सिंहस्स कमे पडिद सारंगं जह ण रक्खदे को वि ।
तह मिच्चुणा य गहियं जीवं पि ण रक्खदे को वि ॥

भावार्थ—जैसें वनविषै सिंहके पगतलें पड्या जो हिरण, ताहि कोऊ भी राखनेवाला नाहीं, तैसें या संसारमें काल-करि ग्रह्या जो प्राणी, ताहि कोउ भी राखि सकै नाहीं. भावार्थ—उद्यानमे सिंह मृगकू पगतलैं दे, तहा कौन राखै ? तैसें ही यह कालका दृष्टात जानना ।

आगें याही अर्थकू दृढ़ करे हैं,—

जइ देवो वि य रक्खइ मंतो तंतो य खेत्तपालो य ।
मियमाण पि मणुस्सं तो मणुया अक्खया होंति २५

भावार्थ—जो मरणकू प्राप्त होते मनुष्यकू कोई देव मन्त्र तन्त्र क्षेत्रपाल उपलक्षणतैं लोक जिनकूं रक्षक मानै, सो सर्वही राखनेवाले होंय तौ मनुष्य अक्षय होंय कोई भी मरै नाहीं. भावार्थ—लोक जीवनेके निमित्त देवपूजा मन्त्रतंत्र ओपधी आदि अनेक उपाय करै है परतु निश्चय विचारिये

सौं कोई जीवित दीसै नाही तथा हीं मोहकरि विश्वास उपजावै है। आगें याही अर्थको बहुरि दृढ करै हैं,—

अइबलिओ वि रउद्दो मरणविहीणो ण दीसए को वि।
रक्खिज्जंतो वि सया रक्खपयारेहिं विविहेहिं ॥२६॥

भाषार्थ—इस संसारविषै अति बलवान तथा अतिरौद्र भयानक बहुरि अनेक रक्षाके प्रकार तिनकरि निरन्तर रक्षा कीया हूआ भी मरणरहित कोई भी नाहीं दीखै है, भावार्थ—अनेक रक्षाके प्रकार गढ कोट सुभट शस्त्र आदि उपाय कीजिये परन्तु मरणतैं कोऊ बचै नाहीं। सर्व उपाय विफल जाय हैं।

आगें शरणा कल्पै ताकू अज्ञान बतावै हैं—

एव पेच्छंतो वि हु गहभूयपिसाय जोइणी जक्खं।
सरणं मण्णइ मूढो सुगाढमिच्छत्तभावादो॥ २७॥

भाषार्थ—ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार अशरण प्रत्यक्ष देखताभी मूढ जन तीव्रमिथ्यात्वभावतैं सूर्यादि ग्रह भूत व्यंतर पिशाच योगिनी चंडिकादिक यक्ष मणिभद्रादिक इनहिं शरणा मानै है। भावार्थ—यहु प्राणी प्रत्यक्ष जाणै है जो मरणतैं कोऊ भी राखणहारा नाहीं, तोऊ ग्रहादिकका शरण कल्पै है, सो यह तीव्रमिथ्यात्वका उदयका माहात्म्य है।

आगें मरण है सो आयुके क्षयतैं होय है यह कहै हैं—

आयुक्खयेण मरणं आउ दाऊण सक्कदे को वि।

तह्मा देविंदो वि य मरणाउ ण रक्खदे को वि २८

भाषार्थ–जातैं आयुकर्मके क्षयतैं मरण होय है बहुरि आयु कर्म कोईकू कोई देनेको समर्थ नाहीं, तातैं देवनका इन्द्र भी मरणतै नाहिं राख सकै है भावार्थ–मरणतैं आयु पूर्ण हुवा होय, बहुरि आयु कोई काहूको देने समर्थ नाहीं तब रक्षा करनेवाला कौन ? यह विचारो !

आगैं याही अर्थकूं दृढ करै हैं,—

अप्पाणं पि चवंतं जइ सक्कदि रक्खिदुं सुरिंदो वि।
तो किं छंडदि सग्गं सव्वुत्तमभोयसंजुत्तं ॥ २९ ॥

भाषार्थ– जो देवनका इन्द्रहू आपको चयता [ मरते हुये ] राखनेको समर्थ होता तो सर्वोत्तम भोगनिकरि सयुक्त जो स्वर्गका वास, ताकूं काहेको छोडता ? भावार्थ–सर्व भोगनिका निवास अपना वश चलते कौन छोडै ?

आगें परमार्थ शरणा दिखावै हैं—

दंसणणाणचरित्तं सरणं सेवेहि परमसद्धाए।
अण्णं किं पि ण सरणं संसारे संसरंताणं ॥ ३० ॥

भाषार्थ–हे भव्य ! तू परम श्रद्धाकरि दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप शरणा सेवन करि। या संसारविषै भ्रमते जीवनिकू अन्य किछू भी शरणा नाहीं है। भावार्थ–सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र अपना स्वरूप है सो ये ही परमार्थरूप [ वास्तवमें ] शरणा है। अन्य सर्व अशरणा हैं। निश्चय

श्रद्धानकरि यहु ही शरणा पकडो, ऐसा उपदेश है।
आगें इसहीको दृढ करै है,—

अप्पाणं पि य सरणं खमादिभावेहिं परिणद होदि
तिव्वकसायाविट्ठो अप्पाण हणदि अप्पेण ॥३१॥

भाषार्थ-जो आपकू क्षमादि दशलक्षणरूप परिणत करैं, सो शरणा है। बहुरि जो तीव्रकषाययुक्त होय है सो आपकरि आपकू हणै है। भावार्थ-परमारथ विचारिये तो, आपकू आपही राखनेवाला है, तथा आप ही घातनेवाला है। क्रोधादिरूप परिणाम करै है, तब शुद्ध चैतन्यका घात होय है। बहुरि क्षमादि परिणाम करै है, तब आपकी रक्षा होय है। इनही भावनिसों जन्ममरणतें रहित होय अविनाशी पद प्राप्त होय है।

दोहा।

वस्तुस्वभावविचारतैं, शरण आपकू आप।
व्यवहारे पण परमगुरु, अवरै सकल संताप ॥ २ ॥

इति अशरणानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ २ ॥

## अथ संसारानुप्रेक्षा लिख्यते।

प्रथमही दोय गाथानिकरि संसारका सामान्य स्वरूप कहै है,—

एक्क चयदि सरीरं अण्णं गिण्हेदि णवणवं जीवो।
पुणु पुणु अण्णं अण्णं गिण्हदि मुंचेदि बहुवारं ॥ ३२ ॥

एक्कं जं ससरणं णाणादेहेसु हवदि जीवस्स।
सो संसारो भण्णदि मिच्छकसायेहिं जुत्तस्स॥ ३३॥

भापार्थ--मिथ्यात्व कहिये सर्वथा एकान्तरूप वस्तुको श्रद्धना, बहुरि कषाय कहिये क्रोध मान माया लोभ इनकरि युक्त यह जीव, ताकै जो अनेक देहनिविषै ससरण कहिये भ्रमण होय, सो ससार कहिये। सो कैसैं? सो ही कहिये है। एक शरीरकू छोडै अन्य ग्रहण करै फेरि नवा ग्रहणकरि फेरि ताकू छोडि अन्य ग्रहण करै ऐसैं बहुतवार ग्रहण किया करै सो ही ससार है। भावार्थ-शरीरतैं अन्य शरीरकी प्राप्ति होवो करै सो ससार है।

आगें ऐसे ससारविषै सक्षेप करि चार गति हैं तथा अनेक प्रकार दुःख है। तहा प्रथम ही नरकगतिविषै दुःख है, ताकू छह गाथानिकरि कहै है—

पावोदयेण णरए जायदि जीवो सहेदि बहुदुक्खं।
पंचपयारं विविहं अणोवमं अण्णदुक्खेहिं॥ ३४॥

भापार्थ-यह जीव पापके उदयकरि नरकविषै उपजै है तहा अनेकभांतिके पंचप्रकारकरि उपमारहित ऐसे बहुत दुःख सहै है। भावार्थ-जो जीवनिकी हिंसा करै है, झूठ बोलै है, परधन हरै है, परनारि तकै है, बहुत आरम्भ करै है, परिग्रहविषै आशक्त होय है, बहुत क्रोधी, प्रचुर मानी, अति कपटी, अति कठोर भाषी, पापी, चुगल, कृपण,

देवशास्त्रगुरुका निंदक, अधम, दुर्बुद्धि, कृतघ्नी, बहु शोक दुःख करनेहीकी प्रकृति जाकी, ऐसा होय सो जीव, मरि करि नरकविषै उपजै है, अनेक प्रकार दुःखकू सहै है ।

आगें ऊपरि कहे जे पचप्रकार दुःख तिनकू कहै हैं,—

असुरोदीरियदुक्खं सारीरं माणसं तहा विविहं ।
खित्तुब्भवं च तिव्वं अण्णोण्णकयं च पचविहं ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—असुरकुमार देवनिकरि उपजाया दुःख, बहुरि शरीरहीकर निपज्या बहुरि मनकरि भया, तथा अनेक प्रकार क्षेत्रसों उपज्या, बहुरि परस्पर किया हुवा ऐसें पाच प्रकार दुःख हैं । भावार्थ—तीसरे नरकताई तो असुरकुमार देव कुतूहलमात्र जाय है, सो नारकीनकों देखि परस्पर लडावै हैं अनेकप्रकार दुःखी करै हैं बहुरि नारकीनका शरीरही पापके उदयतैं स्वयमेव अनेक रोगनिसहित बुरा घिनावना दुःखमयी होय है, बहुरि चित्त जिनके महाक्रूर दुःखरूप ही होय है बहुरि नरकक्षेत्र महाशीत उष्ण दुर्गन्ध अनेक उपद्रव सहित है, बहुरि परस्पर वैरके संस्कारतैं छेदन भेदन मारन ताडन कुंभीपाक आदि करै हैं वहाका दुःख उपमारहित है।

आगें याही दुःखका विशेष कहै हैं,—

छिज्जइ तिलतिलमित्तं भिंदिज्जइ तिलतिलंतरं सयलं ।
वज्जग्गिए कढिज्जइ णिहिप्पए पूयकुडम्हि ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जहां तिलतिलमात्र छेदिये है बहुरि शकल कहिये खड तिनकूभी तिलतिलमात्र भेदिये है. बहुरि वज्राग्निविषे पचाइये है. बहुरि राधके कुंडविषै क्षेपिये है।

इच्चेवमाइदुक्खं जं णरए सहदि एयसमयम्हि।
तं सयलं वण्णेदुं ण सक्कदे सहसजीहोपि ॥ ३७॥

भावार्थ—इति कहिये ऐसें एवमादि कहिये पूर्व गाथा में कहे तिनकू आदि दे करि जे दुःख, ते नरक विषै एक काल जीव सहै है, तिनको कहनेको जाके हजार जीभ होंय सो भी समर्थ न हो है. भावार्थ—या गाथामें नरकके दुःखनिका वचन अगोचरपणा कह्या है।

बहुरि कहै हैं नरकका क्षेत्र तथा नारकीनके परिणाम दुःखमयीही हैं।

सव्वं पि होदि णरये खित्तसहावेण दुक्खदं असुहं।
कुविदा वि सव्वकालं अण्णुण्णं होंति णेरइया ॥ ३८

भावार्थ—नरकविषे क्षेत्र स्वभाव करि सर्व ही कारण दुःखदायक हैं, अशुभ हैं. बहुरि नारकी जीव सदा काल परस्पर क्रोध रूप हैं. भावार्थ—क्षेत्र तो स्वभाव कर दुःखरूप है ही. बहुरि नारकी परस्पर क्रोधी हुवा सता वह वाकू मारै, वह वाकू मारै है. ऐसें निरंतर दुःखीही रहै हैं।

अण्णभवे जो सुयणो सो वि य णरये हणेइ अइकुविदो
एवं तिव्वविवागं बहुकालं विसहदे दुःखं ॥

भावार्थ–पूर्व भवविषै जो सज्जन कुटुंबका था, सोभी या नरकविषै क्रोधी हुवा घात करै है या प्रकार तीव्र है विपाक जाका ऐसा दुःख बहुत कालपर्यंत नारकी सहै है. भावार्थ–ऐसे दुःख सागरां पर्यन्त सहे है आयु पूरी किये विना तहांतैं निकसना न हो है।

आगैं तिर्यञ्चगतिसम्बन्धी दुःखनिको साढे च्यारि गाथानकरि कहै है,—

तत्तो णीसरिऊणं जायदि तिरएसु बहुवियप्पेसु ।
तत्थ वि पावदि दुःखु गब्भे वि य छेयणादीय ॥४०॥

भावार्थ–तिस नरकतैं निकसिकरि अनेक भेद भिन्न जे तिर्यंच, तिनविषै उपजै है तहां भी गर्भविषै दुःख पावै है. अपि शब्दतैं सम्मूर्छन होय छेदनादिकका दुःख पावै है।

तिरिएहिं खज्जमाणो दुट्ठमणुस्सेहिं हण्णमाणो वि ।
सव्वत्थ वि सतट्ठो भयदुक्खं विसहदे भीमं॥ ४१॥

भावार्थ– तिस तिर्यंचगतिविषै जीव सिंहव्याघ्रादिककरि भख्या हूवा तथा दुष्ट मनुष्य म्लेच्छ व्याध धीवरादिककरि मारया हूवा सर्व जायगा त्रास युक्त हूवा रौद्रभयानक दुःखकू विशेष करि सहै है।

अण्णुण्ण खज्जता तिरिया पावंति दारुण दुक्खं ।
माया वि जत्थ भक्खेदि अण्णो को तत्थ रक्खेदि॥

भापार्थ– जिस तिर्यंचगतिविषै जीव परस्पर खाया हुवा उत्कृष्ट दुख पावै है यह वाकू खाय, वह वाकू खाय, जहा जिसके गर्भमें उपज्या ऐसी माता भी पुत्रकूं भक्षण कर जाय तौ अन्य कौन रक्षा करै ?

तिव्वतिसाए तिसिदो तिव्वविभुक्खाइ भुक्खिदो संतो
तिव्वं पावदि दुक्खं उयरहुयासेहिं डज्झंतो ॥ ४३ ॥

भापार्थ–तिस तिर्यंचगतिविषैं जीव तीव्र तृषाकरि तिसाया तीव्र क्षुधाकर भूखासंता उदराग्निकरि जलता तीव्र दुःख पावै है।

आगें इसको संकोचै है,—

एवं बहुप्पयारं दुक्खं विसहेदि तिरियजोणीसु ।
तत्तो णीसरऊणं लद्धिअपुण्णो णरो होइ ॥ ४४ ॥

भापार्थ–ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार तिर्यंचयोनिविषैं जीव अनेक प्रकार दुखकूं पावै है ताहि सहै है, तिस तिर्यंचगतितैं नीसर मनुष्य होय तौ कैसा होय–लब्धि अपर्याप्त, जहा पर्याप्ति पूरे ही न होय।

अथ मनुष्यगतिविषै दुःख है तिनकूं बारह गाथानिकरि कहै हैं—

सो प्रथम ही गर्भविषै उपजै ताकी अवस्था कहै है—

अह गब्भे वि य जायदि तत्थ वि णिवडीकयंगपच्चंगो
विसहदि तिव्वं दुक्खं णिग्गममाणो वि जोणीदो

भापार्थ– अथवा गर्भविषै भी उपजै तो तहा भी मेले सकुचि रहे हैं हस्तपादादि अंग तथा अंगुली आदि प्रत्यंग जाके, ऐसा हूवा सता, दुःख सहै है, बहुरि योनितैं नीसरतां तीव्र दुःखकूं सहै है।

बहुरि कैसा होय सो कहै हैं,—

बालोपि पियरचत्तो परउच्छिट्ठेण वड्ढदे दुहिदो ।
एवं जायणसीलो गमेदि कालं महादुक्खं ॥ ४६॥

भापार्थ– गर्भतैं नीसरया पीछैबाल अवस्थामें ही माता पिता मर जाय तब पराई औठिकरि ( उच्छिष्टसे ) बध्या सता मागणेहीका स्वभाव जाका ऐसें दुःखी हुवा सता काल गमावै है।

बहुरि कहै हैं यह पापका फल है—

पावेण जणो एसो दुक्कम्मवसेन जायदे सव्वो ।
पुणरवि करेदि पावं ण य पुण्णं को वि अज्जेदि ॥ ४७॥

भापार्थ–यह लोक जन सर्व ही पापके उदयतैं असाता वेदनीय नीच गोत्र अशुभ नाम आयुः आदि दुष्कर्म ताके वशतैं ऐसे दुःख सहै है तोऊ फेरि पाप ही करै है पूजा दान व्रत तप ध्यानादि लक्षण पुण्यकूं नाहीं उपजावै हैं, यह बड़ा अज्ञान है।

विरलो अज्जदि पुण्णं सम्मादिट्ठी वएहिं संजुत्तो ।
उवसमभावे सहियो णिंदणगरहाहि संजुत्तो ॥ ४८॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि कहिये यथार्थ श्रद्धावान बहुरि मुनि श्रावकके व्रतनिकरि सहित, तथा उपशम भाव कहिये मंद कषायरूप परिणाम, तथा निंदन कहिये अपने दोष आपकी यादि करि पश्चात्ताप करना, गर्हण कहिये अपने दोष गुरुजनके निकट कहणा इनि दोऊनिकरि सयुक्त ऐसा जीव पुण्यप्रकृतिनकू उपजावै है, सो ऐसा विरला ही है।

आगें कहै हैं पुण्ययुक्तकै भी इष्टवियोगादि देखिये है।

पुण्णजुदस्स वि दीसइ इट्ठविओयं अणिट्ठसंजोयं।
भरहो वि साहिमाणो परिज्जिओ लहुयभायेण ॥ ४९ ॥

भावार्थ—पुण्यउदयसहित पुरुषकै भी इष्टवियोग अनिष्ट संयोग देखिये है. देखो अभिमान सहित भरत चक्रवर्ती भी छोटाभाई जो बाहुबली तासू हारयो भावार्थ—कोऊ जानैगा कि जिनिकै बडा पुण्यका उदय है तिनिकू तो सुख है सो संसारमें तो सुख काहूकू भी नाहीं. भरत चक्रवर्तीसारिखे भी अपमानादिकरि दुःखी ही भये तो औरनिकी कहा वात?

आगें याही अर्थको दृढ करै हैं—

सयलट्ठविसहजोओ वहुपुण्णस्स वि ण सव्वदो होदि।
तं पुण्णं पि ण कस्स वि सव्वं जे णिच्छिदं लहदि ५०

भावार्थ—या संसारमें समस्त जे पदार्थ, तेई भये विषय कहिये भोग्य वस्तु, तिनिका योग बडे पुण्यवानकू भी सर्वांगपणै नाहीं मिलै है, ऐसा पुण्य ही नाहीं है जाकरि सर्व

ही मनोवाछित मिलै भावार्थ–बडे पुण्यवानकै भी वांछित वस्तुमें किछु कमती रहै, सर्व मनोरथ तो काहूके पुरै नाहीं तब सर्व सुखी काहेतें होय ?

करस वि णत्थि कलत्त अहव कलत्त ण पुत्तसपत्ती
अह तेसि संपत्ती तह वि सरोओ हवे देहो ॥ ५१ ॥

भावार्थ–कोई मनुष्यकै तो स्त्री नाहीं है कोई कै जो स्त्री है तो पुत्रकी प्राप्ति नाहीं है कोई कै पुत्रकी प्राप्ति है तो शरीर रोगसहित है ।

अह णीरोओ देहो तो धणधण्णाण णेय सम्पत्ति ।
अह धणधण्ण होदि हु तो मरण झत्ति ढुक्केइ ॥ ५२ ॥

भावार्थ–जो कोईकै नीरोग देह भी हो तो धन धान्य की प्राप्ति नाहीं है, जो धन धान्यकी भी प्राप्ति हो जाय तौ शीघ्र मरण होय जाय है ।

करस वि दुट्ठकलित्त कस्स वि दुव्वसणवसणिओ पुत्तो
कस्स वि अरिसमबधू कस्स वि दुहिदा वि दुच्चरिया ॥

भावार्थ–या मनुष्यभवमें कोईकै तो स्त्री दुराचारिणी है कोईकै पुत्र जुवा आदिक व्यसनोंमें रत है, कोईकै शत्रु समान कलही भाई है कोईकै पुत्री दुराचारिणी है ।

कस्स वि मरदि सुपुत्तो कस्स वि महिला विणस्सदे इट्ठा
करस वि अग्गिपलित्तं गिह कुडव च डज्झेइ ५४

भावार्थ—कोईकै तो भला पुत्र मरि जाय है, कोईकै इष्ट स्त्री मरिजाय है, कोईकै घर कुटम्ब सर्व ही अग्नि करि बलि जाय है।

एवं मणुयगदीए णाणा दुक्खाइं विसहमाणो वि ।
ण वि धम्मे कुणदि मइं आरंभं णेय परिचियइ ॥५५॥

भावार्थ-ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार मनुष्य गतिविषैं नानाप्रकार दुःखनिकूं सहता भी यहु जीव धर्मविषैं बुद्धि नाहीं करै है पापारम्भकूं नाहीं छोडै है।

सधणो वि होदि णिधणो धणहीणो तह य ईसरो होदि
राया वि होदि भिच्चो भिच्चो वि य होदि णरणाहो ॥

भावार्थ—धनसहित तो निर्धन होय है तैसैं ही निर्धन होय सो ईश्वर हो जाय है बहुरि राजा होय सो तो किंकर होय जाय है और किंकर होय सो राजा होय जाय है।

सत्तू वि होदि मित्तो-मित्तो वि य जायदे तहा सत्तू।
कम्मविवायवसादो एसो संसारसब्भावो ॥५७॥

भावार्थ—कर्मके उदयके वशतैं वैरी होय सो तौ मित्र होय जाय है, बहुरि मित्र होय सो वैरी होय जाय है यहु संसारका स्वभाव है भावार्थ—पुण्यकर्मके उदयतैं वैरी भी मित्र होय जाय अर पापकर्मके उदयतैं मित्र भी शत्रु होय जाय संसारमें कर्म ही बलवान है।

आगें देवगतिका स्वरूप कहै हैं—

अह कहवि हवदि देवो तस्स य जायेदि माणसं दुक्खं
दट्ठूण महद्धीण देवाणं रिद्धिसपत्ती ॥ ५८ ॥

भावार्थ—अथवा बडा कष्ट करि देवपर्याय भी पावै तौ ताकै बडे ऋद्धिके धारक देवनिकी ऋद्धि सम्पदा देखिकरि मानसीक दुःख उपजै है।

इट्ठविओग दुक्ख होदि महद्धीण विसयतण्हादो ।
विसयवसादो सुक्ख जेसिं तेसिं कुतो तित्ती ॥ ५९॥

भावार्थ-महर्द्धिक देवनकै भी इष्ट ऋद्धि देवांगनादिका वियोग होय है, तासबधी दुःख होय हैं. जिनकै विषयनिके आधीन सुख है तिनकै काहतैं तृप्ति होय ? तृष्णा बधती ही रहै।

आगै शारीरिक दु.खतैं मानसीक दु'ख बडा है ऐसें कहै हैं।

सारीरियदुक्खादो माणसदुक्ख हवेइ अइपउर ।
माणसदुक्खजुदस्स हि विसया वि दुहावहा हुति ॥

भावार्थ—कोई जानैगा शरीरसबधी दु ख बडा है मानसिक दु.ख तुच्छ है, ताकूं कहै हैं, शारीरिक दुःखतैं मानसिक दुःख अति प्रचुर है बडा है देखो ! मानसीक दुःख सहित पुरुषकै अन्य विषय बहुत भी होंय तो दुःख उपजावन हारे दीसैं. भावार्थ—मनकी चिंता होय तब सर्व ही सामग्री दुःखरूप भासै ।

देवाणं पि य सुक्खं मणहरविसएहिं कीरदे जदि ही
विषयवसं जं सुक्खं दुक्खस्स वि कारणं तं पि ॥६१

भाषार्थ–प्रगटपणै जो देवनिकै मनोहर विषयनिकरि सुख विचारिये तौ सुख नाहीं है. जो विषयनिकै आधीन सुख है सो दुःखहीका कारण है. भावार्थ–अन्य निमित्ततैं सुख मानिये सो भ्रम है, जो वस्तु सुखका कारण मानिये है सो ही वस्तु कालान्तरमें दुःखकू कारण होय है।

आगैं ऐसैं विचार किये कहू भी सुख नहीं ऐसा कहै है.

एवं सुट्ठु–असारे संसारे दुक्खसायरे घोरे ।
किं कत्थ वि अत्थि सुहं वियारमाणं सुणिच्चयदो ॥

भाषार्थ–ऐसैं सर्व प्रकार असार जो यहु दुःखका सागर भयानक संसार, ताविषै निश्चयथकी विचार कीजिये किछू कहू सुख है ? अपि तु नाहीं है. भावार्थ–चारगतिरूपससार है तहां चारि ही गति दु;खरूप है, तब सुख कहा ?

आगैं कहै हैं जो यहु जीव पर्याय बुद्धि है जिस योनिमैं उपजै तहां ही सुख मानले है।

दुक्कियकम्मवसादो राया वि य असुइकीडओ होदि
तत्थेव य कुणइ रइं पेक्खह मोहस्स माहप्पं ॥६३॥

भावार्थ–जो प्राणी हो तुम देखो मोहका माहात्म्य, कि पापके वशतैं राजा भी मरकरि विष्ठाका कीडा जाय उपजै है सो तहां ही रति मानै है कीडा करै है।

आगें कहै हैं कि या प्राणीकै एक ही भवविषै अनेक सबंध होय है—

पुत्तो वि भाओ जाओ सो वि य भाओ वि देवरो होदि।
मायाहोइ सवत्ती जणणो वि य होइ भत्तारो ६४
एयम्मि भवे एदे सबंधी होंति एयजीविस्स ।
अण्ण भवे कि भण्णइ जीवाणं धम्मरहिदाण ६५

भावार्थ—एक जीवकै एक भवविषै एता सबन्ध होय है तो धर्मरहित जीवनिकै अन्य भव विषै कहा कहिये ? ते सबन्ध कौन कौन? सो कहिये है पुत्र तौ भाई हूवा बहुरि जो भाई था सो ही देवर भया बहुरि माता थी सो सौति भई बहुरि पिता था सो भरतार हुवा एता सम्बन्ध वसन्ततिलका वेश्याके अरु धनदेवके अरु कमलाके अरु वरुणकै हूवा तिनिकी कथा ग्रन्थान्तरतैं लिखिये है—

## एक भवमें अठारह नातेकी कथा।

मालवदेश उज्जयनीविषै राजा विश्वसेन तहां सुदत्त नाम श्रेष्ठी वसै सो सोलह कोटि द्रव्यको धनी सो वसन्ततिलकानाम वेश्यासू आशक्त होय ताहि घरमें घाली सो गर्भवती भई तब रोगसहित देह भई तब घरमेंसू काढि दई. वसन्ततिलका आपके घरहीमें पुत्र पुत्रीको जुगल जायो। सो वेश्या खेद खिन्न हो, तिनि दोऊ बालकनिकू जुदे जुदे रत्न कम्बलमें लपेटि पुत्रीको तो दक्षिण दरवाजै क्षेपी सो तहां प्रयागनिवासी बिणजारेने लेकर अपनी स्त्रीको सौंपी.

कमला नाम धरयो। बहुरि पुत्रको उत्तर दिशाके दरवाजे खेप्यो तहां साकेतपुरके एक सुभद्रनाम विणजारैने अपनी स्त्री सुव्रताको सौंप्यो, धनदेव ताको नाम धरयो. बहुरि पूर्वोपार्जित कर्मके वशतैं धनदेव अर कमलाके साथ विवाह हूवो स्त्री भरतार भया पीछें धनदेव विणज निमित्त उज्जयिनी नगरी गया. तहां वसन्ततिलका वेश्यासूं लुब्ध हूवा तव ताके संयोगतैं वसन्ततिलकाके पुत्र हूवा, 'वरुण' नाम धरया बहुरि एक दिवस कमला मुनिनैं सम्बन्ध पूछ्या. मुनिनैं याका सर्व सम्बन्ध कह्या।

## इनका पूर्वभववर्णन

इसी उज्जयिनी नगरीविषै सोमशर्मा नामा ब्राह्मण, ताकै काश्यपी नामा स्त्री, तिनकै अग्निभूत सोमभूत नाम दोय पुत्र हुए. ते दोऊ कहींतैं पढकर आवते हुते. मार्गमें जिनदत्तमुनिको ताकी माता जो जिनमती नामा अर्जिका सो शरीर समाधान पूछती देखी बहुरि जिनभद्रनामा मुनिकूं सुभद्रा नाम आर्यिका पुत्रकी बहू थी सो शरीर समाधान पूछती देखी। तहां दोऊ भाईने हास्य करी कि तरणकै तौ वृद्ध स्त्री अरु वृद्धकै तरुणी स्त्री-विधाता अछया विपरीत रच्या. सो हास्यके पापतैं सोमशर्मा तो वसन्ततिलका हुई बहुरि अग्निभूति सोमभूति दोनू भाई मरकरि वसन्ततिलकाके पुत्र पुत्री युगल भये। तिनके कमला अरु धनदेव नाम पाया. बहुरि काश्यपी ब्राह्मणी वसन्ततिलकाकै धनदेवके संयोगतैं वरुण

नाम पुत्र हुवा ऐसैं सर्व सम्बन्ध सुणकरि कमलाकों जाति स्मरण हूवा, तब उज्जयिनी नगरीविषै वसन्ततिलकाके घर गई. तहा वरुण पालणै झूलै था, ताकू कहती भई कि हे बालक ! तेरे साथ मेरे छै नाते हैं सो सुणि—

१। मेरा भरतार जो धनदेव ताके सयोगतैं तू हुवा सो मेरा भी तू ( सोतेला ) पुत्र है।

२। बहुरि धनदेव मेरा सगा भाई है, ताका तू पुत्र, तातैं मेरा भतीजा भी है

३। तेरी माता वस ततिलका, सो ही मेरी माता है यातैं मेरा भाई भी है

४। तू मेरे भरतार धनदेवका छोटा भाई है, तातैं मेरा देवर भी है.

५। धनदेव, मेरी माता वसन्ततिलकाका भरतार है, तातैं धनदेव मेरा पिता भया ताका तू छोटा भाई है, तातैं काका ( चाचा ) भी है.

६। मैं वसन्ततिलकाकी सौकि ( सौतिन ) तातैं धनदेव मेरा पुत्र ( सोतीला पुत्र ] ताका तू पुत्र तातैं मेरा पोता भी है.

या प्रकार वरुणके साथ छह नाता कहती हुती सो वस न्ततिलका तहा आई और कमलाकू बोली कि तू कौन है जो मेरे पुत्रसू या प्रकार ६ नाता सुनावै है ? तब कमला बोली तेरे साथ भी मेरे छै नाते हैं सो सुणि—

१। प्रथम तो तू मेरी माता है क्योंकि मैं धनदेवके साथ तेरे ही उदरसे युगल उपजी हू.

२। धनदेव मेरा भाई, उसकी तू स्त्री, तातैं मेरी भावज [ भौजाई ] है.

३। तू मेरी माता, ताका भरतार धनदेव मेरा पिता भया ताकी तू माता, तातैं मेरी दादी है।

४। मेरा भरतार धनदेव, ताकी तू स्त्री, तातैं मेरी शौकी ( सौतिन ) भी है।

५। धनदेव तेरा पुत्र सो मेरा भी पुत्र ( सौतीला पुत्र ) ताकी तू स्त्री, तातैं तू मेरी पुत्रवधू भी है।

६। मैं धनदेवकी स्त्री, तू धनदेवकी माता, तातैं तू मेरी सास भी है याप्रकार वेश्या ६ नाते सुनकर चिन्तामें विचारतीरही, सो ही तहा धनदेव आया. ताकू देखकर कमला बोली कि तुमारे साथ भी हमारे ६ नाते हैं सो सुणो.

१। प्रथम तो तू और मैं इसी वेश्याके उदरसूं युगल उपज्या सो मेरा भाई है

२। पीछें तेरा मेरा विवाह हो गया सो तू मेरा पति है.

३। वसन्ततिलका मेरी माता ताका तू भरतार तातें मेरा पिता भी है।

४। वरुण तेरा छोटा भाई सो मेरा काका भया ताका तू पिता तातैं काकाका पिता होनेतैं मेरा तू दादा भी भया

५। मैं वसन्त तिलकाकी सौकी-अर तू मेरी सौकीका पुत्र तातैं मेरा भी तू पुत्र है।

६। तू मेरा भरतार तातैं तेरी माता वेश्या मेरी सास भई, बहुरि सासके तुम भरतार, तातें मेरे ससुर भी भये.

* या प्रकार एक ही भवमें एक ही प्राणीके अठारह नाते भये, ताका उदाहरण कहा यह संसारकी विचित्र विडंबना है यामें कछु भी आश्चर्य नहीं है।

आगें पांच प्रकार संसारके नाम कहै हैं,—

**संसारो पंचविहो दव्वे खत्ते तहेव काले य।**
**भवभमणो य चउत्थो पंचमओ भावसंसारो ॥ ६६॥**

भावार्थ-संसार कहिये परिभ्रमण सो पांच प्रकार है द्रव्ये कहिये पुद्गल द्रव्यविषै ग्रहणत्यजनरूप परिभ्रमण बहुरि क्षेत्रे कहिये आकाशके प्रदेशनिविषै स्पर्शनेरूप परिभ्रमण. बहुरि काले कहिये कालके समयनिविषै उपजने विनसनेरूप परिभ्रमण बहुरि तैसें ही भव कहिये नारकादि भवका ग्रहण त्यजनरूप परिभ्रमण बहुरि भाव कहिये अपने कषाययोगनिका स्थानकरूप जे भेद तिनका पलटनेरूप परिभ्रमण ऐसे पंच प्रकार संसार जानना॥ ६६ ॥ आगें इनिका स्वरूप कहै हैं। प्रथम ही द्रव्य परिवर्तनकूं कहै है।

---

* यह अठारहनातेकी कथा ग्रन्थान्तरसे लिखा गई है यथा—

बालय हि सुणि सुवयण तुज्झ सरिसा हि अट्ठ दहणत्ता।
पुत्तु भतिज्जउ भायउ देवरु पत्तिय हु पौत्तज्ज ॥ १ ॥
तुहु पियरो मुहुपियरो पियामहो तहय हवइ भत्तारो।
भायउ तहावि पुत्तो ससुरो हवइ बालयो मज्झ ॥ २ ॥
तुहु जणणी हुइ भज्जा पियामही तह य मायरी सवई।
हवइ बहू तह सासू ए कहिया अट्ठदहणत्ता ॥ ३ ॥

बंधदि मुंचदि जीवो पडिसमयं कम्मपुग्गला विविहा
णोकम्मपुग्गला वि य मिच्छत्तकसायसंजुत्तो ॥६७॥

भाषार्थ—यह जीव या लोक विषैं तिष्ठते जे अनेक प्रकार पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्मरूप तथा औदारिकादि शरीर नोकर्मरूपकरि समयसमयप्रति मिथ्यात्वकषायनिकरि संयुक्त हूवा संता बांधै है तथा छोडै है भावार्थ—मिथ्यात्व कषायके वश करि ज्ञानावरणादि कर्मका समयप्रबद्ध अभव्यराशितैं अनन्तगुणा सिद्धराशिके अनन्तवें भाग पुद्गलपरमाणुनिका स्कन्धरूप कार्माणवर्गणाकू समयसमयप्रति ग्रहण करै है बहुरि पूर्वें ग्रहे थे ते सत्तामें हैं, तिनमेंसौं येते ही समयसमय झरैं हैं। बहुरि तैसें ही औदारिकादि शरीरनिका समयप्रबद्ध शरीरग्रहणके समयतैं लगाय आयुकी स्थितिपर्यन्त ग्रहण करै है वा छोडै है, सो अनादि कालतैं लेकरि अनन्तवार ग्रहण करना वा छोडना हो है तहां एक परिवर्तनका प्रारम्भविषै प्रथमसमयमें समयप्रबद्धविषै जेते पुद्गल परमाणु जैसे स्निग्ध रूक्ष वर्ण गन्ध रूप रस तीव्र मंद मध्यम भाव करि ग्रहे होंय तेते ही तैसें ही कोई समयविषै फेरि ग्रहणमें आवैं तब एक कर्म परावर्त्तन तथा नोकर्मपरावर्त्तन होय, बीचिमें अनन्तवार और भांतिके परमाणु ग्रहण होंय ते न गिणिये, जैसेकै तैसे फेर ग्रहणकू अनन्ता काल बीतै, ताकू एक द्रव्यपरावर्त्तन कहिये ऐसें या जीवनै या लोकविषै अनन्ता परावर्त्तन किये।

आगें क्षेत्रपरिवर्तन कहै हैं—

सो को वि णत्थि देसो लोयायासस्स णिरवसेसस्स ।
जत्थ ण सव्वो जीवो जादो मरिदो य बहुवार ॥

भावार्थ—या लोकाकाशप्रदेशनिमें ऐसा कोई भी प्रदेश नाहीं है जामें यह सर्वही ससारी जीव बहुतवार उपज्या तथा मरया नाहीं है। भावार्थ—सर्व लोकाकाशका प्रदेशनिविषै यहु जीव अनन्तवार उपज्या अनन्तवार मरया । ऐसा प्रदेश रह्या ही नाहीं जामें नाहीं उपज्या मरया। इहां ऐसा जानना जो लोकाकाशके प्रदेश असख्याता हैं। ताके मध्यके आठ प्रदेशकूं बीचि दे, सूक्ष्मनिगोदलब्धिअपर्याप्तिक जघन्य अवगाहनाका धारी उपजै है सो बाकी अवगाहना भी असख्यात प्रदेश है सो जेते प्रदेश तेती बार तो वाही अवगाहना तहां ही पावै। बीचिमें और जायगा अन्य अवगाहनातैं उपजै सो गिनतीमें नाहीं। पीछैं एक एक प्रदेश क्रमकरि वधती अवगाहना पावै सो गिणतीमें, सो ऐसें उत्कृष्ट अवगाहना महामच्छकी ताईं पूरण करै। तैसें ही क्रम करि लोकाकाशके प्रदेशनिकूं परसै तब एक क्षेत्रपरावर्तन होय ॥ ६८ ॥ आगें काल परिवर्तनकूं कहै हैं—

उपसप्पिणिअवसप्पिणिपढमसमयादिचरमसमयंत ।
जीवो कमेण जम्मदि मरदि य सव्वेसु कालेसु ६९

भावार्थ—उत्सर्पिणी बहुरि अवसर्पिणी कालके पहिले

समयतैं लगाय अन्तके समयपर्यंत यहु जीव अनुक्रमतैं सर्व कालविषै उपजै तथा मरै है, भावार्थ—कोई जीव उत्सर्पिणी जो दशकोडाकोडी सागरका काल ताका प्रथम समयविषै जन्म पावै, पीछै दूसरे उत्सर्पिणीके दूसरे समयनिषै जन्मै, ऐसे ही तीसरेके तीसरे समयविषै जन्मैं, ऐसे ही अनुक्रमतैं अन्तके समयपर्यंत जन्मैं, बीचिबीचिमैं अन्यसमयनिविषै विना अनुकम जन्मै सो गिणतीमैं नाहीं ऐसें ही अवसर्पिणीके दश कोडाकोडी सागरके समयपूरण करै तथा ऐसें ही मरण करै सो यह अनंत काल होय ताकूं एक कालपरावर्त्तन कहिये।

आगें भवपरिवर्त्तनकूं कहै हैं—

**णेरइयादिगदीणं अवरट्ठिदिदो वरट्ठिदी जाव।**
**सव्वट्ठिदिसु वि जम्मदि जीवो गेवेज्जपज्जतं ॥ ७० ॥**

भाषार्थ—संसारी जीव नरक आदि च्यारि गतिकी जघन्य स्थितितैं लगाय उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त सर्व स्थितिविषै ग्रैवेयकपर्यन्त जन्मै। भावार्थ—नरकगतिकी जघन्यस्थिति दश हजार वर्षकी है सो याके जेते समय हैं तेतीवार तौ जघन्यस्थितिकी आयु ले जन्मै, पीछैं एक समय अधिक आयु ले कर जन्मै। पीछैं दोय समय अधिक आयु ले जन्मै ऐसें ही अनुक्रमतैं तेतीस सागरपर्यन्त आयु पूरण करै, बीचिबीचिमैं घाटि बाधि आयु ले जन्मै तो गिणतीमैं नाहीं ऐसें ही तिर्यंच गतिकी जघन्य आयु अन्तरमुहूर्त्त, ताके जेते समय हैं तेतीवार जघन्य आयुका धारक होय पीछैं एक समयाधिक-

क्रमतैं तीन पल्य पूरण करै, बीचमें घाटि बाधि पावै ते गि
णतीमें नाहीं, ऐसें ही मनुष्यकी जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट
तीनपल्य पूरण करै ऐसें ही देव गतिकी जघन्य दश हजार
वर्षतैं लगाय ग्रैवेयकके उत्कृष्ट इकतीस सागरताईं समयाधि
कक्रमतैं पूरण करै ग्रैवेयकके आगे उपजनेवाला एक दोय
भव ले मोक्ष ही जाय, तातैं न गिणया ऐसें या भवपराव-
र्त्तनका अनन्त काल है ॥ ७० ॥

आगें भावपरिवर्त्तनकूं कहै हैं,—

परिणमदि सण्णिजीवो विविहकसाएहिं ट्ठिदिणिमित्तेहिं
अणुभागणिमित्तेहिं य वट्टंतो भावसंसारो ॥७१॥

भाषार्थ—भावसंसारविषै वर्त्तता जीव अनेक प्रकार क
र्मकी स्थितिबंधकूं कारण बहुरि अनुभागबंधकूं कारण जे
अनेक प्रकार कषाय तिनिकरि सैनी पचेंद्रिय जीव परिणमैं
है भावार्थ—कर्मकी एक स्थितिबंधकूं कारण कषायनिके
स्थानक असंख्यात लोकप्रमाण हैं, तामैं एक स्थितिबंधस्था
नमें अनुभागबंधनकूं कारण कषायनिके स्थान असंख्यात
लोकप्रमाण हैं, बहुरि योग्यस्थान हैं ते जगत्श्रेणीके अस
ंख्यातवें भाग हैं, सो यह जीव तिनिकूं परिवर्त्तन करै है,
सो कैसें ? कोई सैनी मिथ्यादृष्टी पर्याप्तकजीव स्वयोग्य सर्व
जघन्य ज्ञानावरण प्रकृतिकी स्थिति अन्त कोटाकोटीसागर
प्रमाण बांधै, ताके कषायनिके स्थान असंख्यात लोकमात्र
हैं तामें सर्व जघन्यस्थान एकरूप परिणमै, तामें तिस एक

स्थानमें अनुभागबंधकू कारण स्थान ऐसे असख्यातलोकप्रमाण हैं तिनमेंसों एक सर्वजघन्यरूप परिणमै तहा तिस योग्य सर्वजघन्य ही योगस्थानरूप परिणमै, तब जगत्श्रेणी के असख्यातवें भाग योगस्थान अनुक्रमतें पूरण करै. वीचिमें अन्य योगस्थानरूप परिणमें सो गिणतीमें नाहीं ऐसे योगस्थान पूरण भये अनुभागका स्थान दूसरारूपपरिणमै तहा भी तैसें ही योगस्थान सर्व पूरण करै। बहुरि तीसरा अनुभागस्थान होय तहा भी तैसे ही योगस्थान भुगतै. ऐसें असख्यातलोकप्रमाण अनुभागस्थान अनुक्रमतैं पूरण करै तब दूसरा कषायस्थान लेणा तहा भी तैसें ही क्रमतें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थान तथा जगत्श्रेणीके असख्यातवें भाग योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं भुगतै तब तीसरा कषायस्थान लेणा. ऐसें ही चतुर्थादि असख्यात लोकप्रमाण कषायस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं पूरण करै, तब एकसमय अधिक जघन्यस्थिति स्थान लेणा, तामैं भी कषायस्थान अनुभागस्थान योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतें भुगतै. ऐसें दोय समय अधिक जघन्यस्थितितैं लगाय तीसकोड़ाकोडीसागर पर्यन्त ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति पूरण करै. ऐसे ही सर्वमूलकर्मप्रकृति तथा उत्तरप्रकृतिनका क्रम जानना. ऐसैं परिणमतै अनंत काल वीतै, तिनिकू मेला कीये एक भावपरिवर्त्तन होय ऐसें अनंत परावर्तन यह जीव भोगता आया है॥

आगें पंचपरावर्त्तनका कथनकूं सकोचै हैं—

एवं अणाइकालं पंचपयारे भमेइ संसारे।

क्रमतैं तीन पल्य पूरण करै. वीचमें घाटि बाधि पावै ते गि
णतीमें नाहीं ऐसें ही मनुष्यकी जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट
तीनपल्य पूरण करै ऐसें ही देव गतिकी जघन्य दश हजार
वर्षतैं लगाय ग्रैवेयकके उत्कृष्ट इकतीस सागरताईं समयाधि
क्रमतैं पूरण करै ग्रैवेयकके आगे उपजनेवाला एक दोय
भव ले मोक्ष ही जाय, तातैं न गिण्या ऐसें या भवपराव-
र्त्तनका अनन्त काल है ॥ ७० ॥

आगें भावपरिवर्त्तनकूं कहै हैं,—

**परिणमदि सण्णिजीवो विविहकसाएहिं ट्ठिदिणिमित्तेहिं**
**अणुभागणिमित्तेहिं य वट्टंतो भावससारो ॥७१॥**

भाषार्थ—भावसंसारविषै वर्त्तता जीव अनेक प्रकार क
र्मकी स्थितिबंधकूं कारण बहुरि अनुभागबंधकूं कारण जे
अनेक प्रकार कषाय तिनिकरि सैनी पचेंद्रिय जीव परिणमैं
है. भावार्थ—कर्मकी एक स्थितिबन्धकूं कारण कषायनिके
स्थानक असंख्यात लोकप्रमाण हैं, तामैं एक स्थितिबंधस्था
नमें अनुभागबन्धकूं कारण कषायनिके स्थान असंख्यात
लोकप्रमाण हैं बहुरि योगस्थान हैं ते जगत्श्रेणीके अस
ख्यातवें भाग हैं. सो यह जीव तिनिकूं परिवर्त्तन करै है
सो कैसें ? कोई सैनी मिथ्यादृष्टी पर्याप्तकजीव स्वयोग्य सर्व
जघन्य ज्ञानावरण प्रकृतिकी स्थिति अंतःकोटाकोटीसागर
प्रमाण बांधै, ताके कषायनिके स्थान असंख्यात लोकमात्र
हैं. तामैं सर्व जघन्यस्थान एकरूप परिणमै, तामैं तिस एक

स्थानमें अनुभागबंधके कारण स्थान ऐसे असंख्यातलोकप्रमाण हैं तिनमेंसों एक सर्वजघन्यरूप परिणमैं तहा तिस योग्य सर्वजघन्य ही योगस्थानरूप परिणमै, तब जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग योगस्थान अनुक्रमतें पूरण करै. बीचिमें अन्य योगस्थानरूप परिणमें सो गिणतीमें नाहीं ऐसे योगस्थान पूरण भये अनुभागका स्थान दूसरारूप परिणमै तहा भी तैसें ही योगस्थान सर्व पूरण करै। बहुरि तीसरा अनुभागस्थान होय तहा भी तेते ही योगस्थान भुगतै. ऐसें असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागस्थान अनुक्रमतें पूरण करै तब दूसरा कषायस्थान लेणा तहा भी तैसें ही क्रमतें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थान तथा जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतै भुगतै तब तीसरा कषायस्थान लेणा. ऐसें ही चतुर्थादि असंख्यात लोकप्रमाण कषायस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं पूरण करै, तब एकसमय अधिक जघन्यस्थिति स्थान लेणा, तामैं भी कषायस्थान अनुभागस्थान योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं भुगतै. ऐसें दोय समय अधिक जघन्यस्थितितैं लगाय तीसकोड़ाकोडीसागर पर्यन्त ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति पूरण करै. ऐसे ही सर्वमूलकर्मप्रकृति तथा उत्तरप्रकृतिनका क्रम जानना. ऐसें परिणमतें अनंत काल वीतै, तिनिकू मेला कीये एक भावपरिवर्त्तन होय ऐसें भ्रमत परावर्तन यह जीव भोगता आया है॥

आगें पंचपरावर्त्तनका कथनकू संकोचै हैं—

एवं अणाइकालं पंचपयारे भमेइ संसारे।

णाणादुक्खणिहाणे जीवो मिच्छत्तदोसेण ॥ ७२॥

भावार्थ-ऐसें पाच प्रकार ससारविषै यह जीव अनादि कालतैं मिथ्यात्व दोषकरि भ्रमै है, कैसा है ससार, अनेक प्रकारके दु:खनिका निधान है।

आगें ससारतैं छूटनेका उपदेश करै है—

इय संसार जाणिय मोह सव्वायरेण चइऊण।
तं झायह ससहावं ससरणं जेण णासेइ ॥ ७३ ॥

भावार्थ-ऐसें पूर्वोक्त प्रकार ससारकू जाणि सर्व प्रकार उद्यम करि मोहकू छोडि करि हे भव्य हो! तिस आत्मस्वभावकू ध्यावो जाकरि ससारका भ्रमणका नाश होय।

दोहा।

पचपरावर्त्त नमयी, दु खरूप ससार।
मिथ्याकम उदै यहै, भरमै जाव अपार ॥ ३ ॥

इति ससारानुप्रेक्षा समाप्त ॥ ३ ॥

## अथ एकत्वानुप्रेक्षा लिख्यते

इक्को जीवो जायदि इक्को गब्भम्मि गिह्णदे देहं।
इक्को बाल जुवाणो इक्को वुड्ढो जरागहिओ ॥७४॥

भावार्थ— जीव है सो एक ही उपजै है सो ही एक गर्भविषै देहकू ग्रहण करै है. सो ही एक बालक होय है. सो ही एक जवान होय है. सो ही एक वृद्ध जराकरि गृहीत होय है भावार्थ-एक ही जीव नाना पर्यायनिकू धारै है।

इक्को रोई सोई इक्को तप्पेइ माणसे दुक्खे ।
इक्को मरदि वराओ णरयदुहं सहदि इक्को वि ७५

भाषार्थ–एक ही जीव रोगी होय है, सो ही एक जीव शोकसहित होय है. सो ही एक जीव मानसिक दुःखकरि तप्तायमान होय है सो ही एक जीव मरै है. सो ही एक जीव दीन होय नरकके दुःख सहै है. भावार्थ–जीव अकेला ही अनेक अनेक अवस्थाकू धारै है ।

इक्को संचदि पुण्णं इक्को भुंजेदि विविहसुरसोक्खं
इक्को खवेदि कम्मं इक्को वि य पावए मोक्खं॥७६॥

भाषार्थ–एक ही जीव पुण्यका संचय करै है सो ही एक जीव देवगतिके सुख भोगवै है सो ही एक जीव कर्मकी निर्जरा करै है. सो ही एक जीव मोक्षकू पावै है भावार्थ–सो ही जीव पुण्य उपजाय स्वर्ग जाय है सो ही जीव कर्मनाशकर मोक्ष जाय है ।

सुयणो पिच्छंतो वि हु ण दुक्खलेसंपि सक्कदे गहिदुं ।
एवं जाणंतो वि हु तोवि ममत्त ण छंडेइ ॥ ७७ ॥

भाषार्थ–स्वजन कहिये कुटुंब है सो भी या जीवमें दुःख आवै ताकू देखता संता भी दुःखका लेश भी ग्रहण करणेकू असमर्थ होय है. ऐसे जनता भी प्रगटपणै या कुटबवैं ममत्व नाही छोडै है. भावार्थ– दुःख आपका आप ही भो-

गवै है कोई बचाय सकै नाहीं, या जीवकै ऐसा अज्ञान है जो दुःख सहता भी परके ममत्वकू नाहीं छोड़ै है ॥ ७७ ॥

आगें कहै हैं या जीवकै निश्चयतें धर्म ही स्वजन है।

जीवस्स णिच्चयादो धम्मो दहलक्खणो हवे सुयणो
सो णेइ देवलोए सो चिय दुक्खक्खयं कुणइ ॥ ७८

भावार्थ—या जीवकै अपना हितू निश्चयतें एक उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म ही है काहेतें ? जातें सो धर्म ही देवलोककू प्राप्त करै है बहुरि सो धर्म ही सर्व दुःखका नाशरूप मोक्षकू करै है भावार्थ—धर्मसिवाय और कोऊ हितू नाहीं ॥ ७८ ॥

आगें कहै हैं ऐसा एकला जीवकू शरीरतें भिन्न जानहु।

सव्वायरेण जाणह इक्कं जीवं सरीरदो भिण्णं ।
जम्हि दु मुणिदे जीवो होइ असेसं खणे हेयं ॥७९॥

भावार्थ—भो भव्य हो ! तुम जीवकू शरीरतें भिन्न सर्वप्रकार उद्यम करि जानहु ज के जाने अवशेष सर्व परद्रव्य क्षणमात्रमें त्यजने योग्य होय हैं, भावार्थ—जब अपना स्वरूपकू जानै, तब परद्रव्य हेय ही भासै, तातैं अपना स्वरूपहीके जाननेका महान उपदेश है ॥ ७९ ॥

दोहा।

एक जीव परजाय बहु, धारै स्वपर निदान।
पर तजि आपा जानिकै, करौ भव्य कल्याण ॥ ४ ॥

इति एकत्वानुप्रेक्षा समाप्त ॥ ४ ॥

## अथ अन्यत्वानुप्रेक्षा लिख्यते.

अण्णं देहं गिह्णदि जणणी अण्णा य होदि कम्मादो ।
अण्णं होदि कलत्तं अण्णो वि य जायदे पुत्तो ॥ ८० ॥

भावार्थ–यह जीव संसारविषै देह ग्रहण करै है सो आपतैं अन्य है बहुरि माता है सो भी अन्य है. बहुरि स्त्री है सो भी अन्य है बहुरि पुत्र है सो भी अन्य उपजै है. यह सर्व कर्मसंयोगतैं होय हैं ॥ ८० ॥

एवं बाहिरदव्वं जाणदि रूवा हुं अप्पणो भिण्णं ।
जाणं तो वि हु जीवो तत्थेव य रच्चदे मूढो ॥८१॥

भावार्थ–ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार सर्व बाह्यवस्तुकूं आत्मस्वरूपतैं न्यारा जानै है तोऊ प्रगटपणैं जाणता सता भी यह मूढ मोही तिन परद्रव्यनिविषै ही राग करै है सो यह बडी मूर्खता है ॥ ८१ ॥

जो जाणिऊण देहं जीवसरूपादु तच्चदो भिण्णं ।
अप्पाणं पि य सेवदि कज्जकरं तस्स अण्णत्तं ॥ ८२ ॥

भावार्थ–जो जीव अपने स्वरूपतैं देहकूं परमार्थतैं भिन्न जानिकरि आत्मस्वरूपकूं सेवै है, ध्यावै है ताकै अन्यत्वभावना कार्यकारी है. भावार्थ–जो देहादिक परद्रव्यकूं न्यारे, जानि अपने स्वरूपका सेवन करै है ताकूं न्याराभावना (अन्यत्वभावना ) कार्यकारी है।

---

१ रुवादु इत्यादि पाठ ।

भावार्थ—जो भव्य परदेह जो स्त्री आदिककी देह तातैं विरक्त हुवा सता निज देहविषै अनुराग नाहीं करै है ताकै अशुचि भावना सार्थिक होय है भावार्थ—केवल विचारही-तैं वैराग्य प्रगट होय ताकै भावना सत्यार्थ कहिये।

दोहा

स्वपर देहकूं अशुचि लखि, तजै तास अनुराग।
ताकै साची भावना, सो कहिये बड़भाग॥ ६॥

इति अशुचित्वानुप्रेक्षा समाप्ता॥ ६॥

## अथ आस्रवानुप्रेक्षा लिख्यते।

मणवयणकायजोया जीवपयेसाणफंदणविसेसा।
मोहोदएण जुत्ता विजुदा वि य आसवा होंति॥८८॥

भावार्थ—मन वचन काययोग हैं ते ही आस्रव हैं। कैसें है? जीवके प्रदेशनिका जो स्पंदन कहिये चलणा कंपना तिसके विशेष है ते ही योग हैं, बहुरि कैसें हैं ते? मोहक-र्मका उदय जे मिथ्यात्व कषाय तिन कर्म सहित हैं बहुरि मोहके उदयकरि रहित भी हैं. भावार्थ—मन वचन कायके निमित्त पाय जीवके प्रदेशनिका चलाचल होना सो योग है तिनहीकूं आस्रव कहिये ते गुणस्थानकी परिपाटीविषै सू-क्ष्मसांपराय दशमां गुणस्थानताई तो मोहके उदयरूप यथा-संभव मिथ्यात्व कषायनिकरि सहित होय हैं ताकूं सांपरायि-क आस्रव कहिये बहुरि ऊपरि तेरहवां गुणस्थानताई मोहके

उदय करि रहित है ताकू ईर्यापथ आस्रव कहिये जो पुद्गल वर्गणा कर्मरूप परिणमै ताकू द्रव्यास्रव कहिये जीवके प्रदेश चचल होय ताकू भावास्रव कहिये ।

आगें मोहके उदयसहित आस्रव हैं ऐसा विशेषकरि कहै हैं—

मोहविभागवसादो जे परिणामा हवंति जीवस्स ।
ते आसवा मुणिज्जसु मिच्छत्ताई अणेयविहा ॥८९॥

भावार्थ—मोहकर्मके उदयतैं जे परिणाम या जीवकै होय हैं ते ही आस्रव हैं, हे भव्य तू प्रगटपणै ऐसे जाणि. ते परिणाम मिथ्यात्वनै आदि लेकर अनेक प्रकार है. भावार्थ—कर्मबन्धके कारण आस्रव हैं ते मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग ऐसें पाच प्रकार है. तिनमें स्थिति अनुभागरूप बधका कारण मिथ्यात्वादिक च्यारि ही है सो ए मोहकर्मके उदयतें होय हैं. बहुरि योग हैं ते समयमात्र बधकू करै हैं. कछू स्थिति अनुभागकू करै नाहीं तातैं बधका कारणमें प्रधान नाहीं ।

आगें पुण्यपापके भेदकरि आस्रव दोय प्रकार कहै हैं—

कम्मं पुण्णं पावं हेऊं तेसिं च होंति सच्छिदरा ।
मंदकसाया सच्छा तिव्वकसाया असच्छा हु ॥ ९० ॥

भावार्थ—कर्म है सो पुण्य तथा पाप ऐसे दोय प्रकार हैं. ताकू कारण भी दो प्रकार है. प्रशस्त अर इतर कहिये

अप्रशस्त तहां मंद कषाय परिणाम ते तौ प्रशस्त हैं शुभ हैं बहुरि तीव्रकषाय परिणाम ते अप्रशस्त अशुभ हैं ऐसें प्रगट जानहु भावार्थ—सातावेदिनी शुभ आयुः उच्चगोत्र शुभनाम ये प्रकृतियें तो पुण्यरूप हैं अवशेष चारघातियाकर्म, असातावेदनी, नरकायु नीचगोत्र अशुभनाम ए प्रकृतियें पापरूप हैं तिनकूं कारण आस्रव भी दोय प्रकार हैं तहां मंदकषायरूप परिणाम तौ पुण्यास्रव हैं और तीव्र कषायरूप परिणाम पापास्रव हैं।

आगें मंद तीव्रकषायकूं प्रगट दृष्टान्त करि कहै हैं

सव्वत्थ वि पियवयणं दुव्वयणे दुज्जणे वि खमकरणं।
सव्वेसिं गुणगहणं मंदकसायाण दिट्ठंता ॥ ९१ ॥

भावार्थ—सर्व जायगा शत्रु तथा मित्र आदिविषै तो प्यारा हितरूप वचन और दुर्वचन सुणिकरि दुर्जनविषै भी क्षमा करणा, बहुरि सर्व जीवनिके गुण ही ग्रहण करना, एते मंदकषायनिके उदाहरण हैं।

अप्पपसंसणकरणं पुज्जेसु वि दोसगहणसीलत्तं।
वेरधरणं च सुइरं तिव्वकसायाण लिंगाणि ॥ ९२॥

भावार्थ—अपनी प्रशंसा करणा पूज्य पुरुषनिका भी दोष ग्रहण करनेका स्वभाव तथा घणें कालताईं वैर धारण ए तीव्रकषायनिके चिन्ह हैं।

आगें कहै हैं ऐसें जीवकें आस्रवका चितवन निष्फल है।

एवं जाणंतो वि हु परिचयणीये वि जो ण परिहरइ।

तस्सासवाणुपिक्खा सव्वा वि णिरत्थया होदि ॥

भावार्थ-ऐसे प्रगटपणे जानता सन्ता भी जो त्यजनेयोग्य परिणामनिकू नाहीं छोडै है ताकै सारा आस्रवका चितवन निरर्थक है कार्यकारी नाहीं भावार्थ—आस्रवानुप्रेक्षाका चितवन करि प्रथम तौ तीव्रकषाय छोडणा, पीछैं शुद्ध आत्मस्वरूपका ध्यान करणा, सर्व कषाय छोडना, तब यहु चिंतवन सफल है. केवल वार्त्ता करणामात्र ही तौ सफल है नाहीं।

एदे मोहजभावा जो परिवज्जेइ उवसमे लीणो।
हेयमिदि मण्णमाणो आसवअणुपेहणं तस्स ॥ ९४॥

भावार्थ-जो पुरुष एते पूर्वोक्त मोहके उदयतैं भये जे मिथ्यात्वादिक परिणाम तिनिकूं छोडै है, कैसा हूवा संता उपशम परिणाम जो वीतराग भाव ताविषैं लीन हूवा संता तथा इनि मिथ्यात्वादिक भावनिकू हेय कहिये त्यागनेयोग्य हैं, ऐसें जानता संता ताकैं आस्रवानुप्रेक्षा हो है।

दोहा.

आस्रव पंचप्रकारकू, चिंतवै तजै विकार।
ते पावैं निजरूपकू, यहै भावनासार ॥ ७॥

इति आस्रवानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ७ ॥

## अथ संवरानुप्रेक्षा लिख्यते ।

सम्मत्तं देसवय महव्वयं तह जओ कसायाणं ।
एदे संवरणामा जोगा भावो तहच्चेव ॥ ९५ ॥

भावार्थ–सम्यक्त्व देशव्रत महाव्रत तथा कषायनिका जीतना तथा योगनिका अभाव एते संवरके नाम हैं. भावार्थ-पूर्वै आस्रव, मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योगरूप पंच प्रकार कहा था, तिनका अनुक्रमतैं रोकना सो ही संवर है सो कैसें ? मिथ्यात्वका अभाव तौ चतुर्थगुणस्थानविषै भया तहां अविरतका संवर भया अविरतका अभाव एक देश तौ देशविरतिविषै भया, अर सर्वदेश प्रमत्तगुणस्थानविषै भया तहां अविरतका संवर भया. बहुरि अप्रमत्त गुणस्थानविषै प्रमादका अभाव भया तहां ताका संवर भया. अयोगिजिनविषै योगनिका अभाव भया, तहां तिनिका संवर भया । ऐसें संवरका क्रम है ।

आगें इसीको विशेषकरि कहैं हैं,—

गुत्ती समिदी धम्मो अणुवेक्खा तह परीसहजओ वि ।
उक्किट्ठं चारित्तं संवरहेदू विसेसेण ॥ ९६ ॥

भावार्थ–कायमनोवचनगुप्ति, ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपणा प्रतिष्ठापना एवं पंचसमिति, उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म, अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा, क्षुधा आदि बाईस परीषहका जीतना, सामायिक आदि उत्कृष्ट पंचप्रकार चारित्र एते विशेषकर संवरके कारण हैं ।

आगें इनिको स्पष्ट करि कहै हैं,—

गुत्ती जोगणिरोहो समिदीयपमायवज्जणं चेव ।
धम्मो दयापहाणो सुतच्चचिता अणुप्पेहा ॥ ९७ ॥

भापार्थ–योगनिका निरोध सो तो गुप्ति है, प्रमादका वर्जना यत्नतैं प्रवर्तना सो समिति है जामें दयाप्रधान होय सो धर्म है, भले तत्त्व कहिये जीवादिक तत्त्व तथा निज-स्वरूपका चिंतवन सो अनुप्रेक्षा है।

सो वि परीसहविजओ छुहाइपीडाण अइरउद्दाणं ।
सवणाणं च मुणीणं उवसमभावेण ज सहणं ॥ ९८ ॥

भापार्थ– जो अति रौद्र भयानक क्षुधा आदि पीडा तिनका उपशमभाव कहिये वीतरागभाव करि सहना सो ज्ञानी जे महामुनि तिनिकै परीसहनिका जीतना कहिये है।

अप्पसरूवं वत्थु चत्त रायादिएहिं दोसेहिं ।
सज्झाणम्मि णिलीणं तं जाणसु उत्तम चरण ॥९९॥

भापार्थ–जो आत्मस्वरूप वस्तु है ताका रागादि दोप-निकरि रहित धर्म्य शुक्ल ध्यानविषै लीन होना ताहि भो भव्य ! तू उत्तम चारित्र जाणि ।

आगें कहै हैं जो ऐसे संवरको आचरै नाहीं है सो संसारमें भ्रमै है,—

एदे संवरहेदु वियारमाणो वि जो ण आयरइ ।

## अथ संवरानुप्रेक्षा लिख्यते ।

सम्मत्त देसवयं महव्वय तह जओ कसायाणं ।
एदे सवरणामा जोगा भावो तहच्चेव ॥ ९५ ॥

भाषार्थ-सम्यक्त्व देशव्रत महाव्रत तथा कषायनिका जीतना तथा योगनिका अभाव एते संवरके नाम हैं. भावार्थ-पूर्वे आस्रव, मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योगरूप पंच प्रकार कह्या था, तिनका अनुक्रमतें रोकना सो ही संवर है. सो कैसें ? मिथ्यात्वका अभाव तौ चतुर्थगुणस्थानविषै भया तहां अविरतका संवर भया अविरतका अभाव एक देश तौ देशविरतिविषै भया, अर सर्वदेश प्रमत्तगुणस्थानविषै भया तहां अविरतका संवर भया. बहुरि अप्रमत्त गुणस्थानविषै प्रमादका अभाव भया तहां ताका संवर भया. अयोगिजिनविषै योगनिका अभाव भया, तहां तिनिका संवर भया । ऐसें संवरका क्रम है ।

आगें इसीको विशेषकरि कहैं हैं,—

गुत्ती समिदी धम्मो अणुवेक्खा तह परीसहजओ वि ।
उक्किट्ठं चारित्तं संवरहेदू विसेसेण ॥ ९६ ॥

भाषार्थ-कायमनोवचनगुप्ति, ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपणा प्रतिष्ठापना एवं पंचसमिति, उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म, अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा, क्षुधा आदि बाईस परीषहका जीतना, सामायिक आदि उत्कृष्ट पंचप्रकार चारित्र एते विशेषकर संवरके कारण हैं ।

आगे इनिको स्पष्ट करि कहैं हैं,—

गुत्ती जोगणिरोहो समिदीयपमायवज्जणं चेव ।
धम्मो दयापहाणो सुतच्चचिंता अणुप्पेहा ॥ ९७ ॥

भावार्थ—योगनिका निरोध सो तो गुप्ति है, प्रमादका वर्जना यत्नतैं प्रवर्त्तना सो समिति है जामें दयाप्रधान होय सो धर्म है, भले तत्त्व कहिये जीवादिक तत्त्व तथा निज-स्वरूपका चिंतवन सो अनुप्रेक्षा है ।

सो वि परीसहविजओ छुहाइपीडाण अइरउद्दाणं ।
सवणाणं च मुणीणं उवसमभावेण जं सहणं ॥ ९८ ॥

भावार्थ— जो अति रौद्र भयानक क्षुधा आदि पीडा तिनका उपशमभाव कहिये वीतरागभाव करि सहना सो ज्ञानी जे महामुनि तिनिकै परीसहनिका जीतना कहिये है ।

अप्पसरूवं वत्थुं चत्तं रायादिएहि दोसेहिं ।
सज्झाणम्मि णिलीणं तं जाणसु उत्तम चरणं ॥ ९९ ॥

भावार्थ—जो आत्मस्वरूप वस्तु है ताका रागादि दोष-निकरि रहित धर्म्य शुक्ल ध्यानविषै लीन होना ताहि मो भव्य ! तू उत्तम चारित्र जाणि ।

आगे कहै हैं जो ऐसे संवरको आचरै नाहीं है सो संसारमें भ्रमै है,—

एदे संवरहेदुं वियारमाणो वि जो ण आयरइ ।

सो भमइ चिर काल संसार दुक्खसत्तो ॥ १०० ॥

भाषार्थ–जो पुरुष पूर्वोक्तप्रकार संवरके कारणनिकूं विचारतासता भी आचरै नाहीं है सो दुःखनिकरि तप्यायमान हूवा सता घणा काल संसारमें भ्रमण करै है।

आगे कहै है जो कैसे पुरुषके संवर हो है—

जो पुण विसयविरत्तो अप्पाणं सव्वदा वि संवरई।
मणहरविसयेहिंतो (?)तस्स फुड संवरो होदि ॥१०१॥

भाषार्थ–जो मुनि इन्द्रियनिके विषयनितैं विरक्त हूवा सता मनकूं प्यारे जे विषय तिनितैं आत्माको सदाकाल निश्चयतैं संवररूप करै है ताके प्रगटपणै संवर होय है भावार्थ इन्द्रिय मनकूं विषयनितैं रोकै अपने शुद्ध स्वरूपविषैं रमावै ताकै संवर होय।

दोहा

गुप्ति समिति वृष भावना, जयन परीसहकार।
चारित धारै संग तजि, सो मुनि संवरधार ॥ ८॥

इति संवरानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ८ ॥

## अथ निर्जरानुप्रेक्षा लिख्यते।

वारसविहेण तवसा णियाणरहियस्स णिज्जरा होदि।
वेरग्गभावणादो णिरहंकारस्स णाणिस्स ॥ १०२ ॥

भावार्थ–जो ज्ञानी होय ताकै बारह प्रकार तपकरि कर्मनिकी निर्जरा होय है कैसे ज्ञानीकै होय ? जो निदान कहिये इन्द्रियविषयनिकी इच्छा ताकरि रहित होय. बहुरि अहंकार अभिमानकरि रहित होय. बहुरि काहेतैं निर्जरा होय ? वैराग्यभावना जो संसार देहभोगतैं विरक्त परिणाम तातैं होय. भावार्थ–तपकरि निर्जरा होय सो ज्ञानसहित तप करे ताकै होय. अज्ञानसहित विपर्यय तप करै तामैं हिंसादिक होय, ऐसे तपतैं उलटा कर्मका बंध होय है. बहुरि तपकरि मदकरै परकूं न्यून गिणै, कोई पूजादिक न करै, तासूं क्रोध करै ऐसे तपतैं बंध ही होय. गर्वरहित तपतैं निर्जरा होय बहुरि तपकरि या लोक परलोकविषै ख्याति लाभ पूजा इन्द्रियनिके विषय भोग चाहै, ताकै बंध ही होय. निदानरहित तपतैं निर्जरा होय बहुरि संसार देहभोगविषै आसक्त होइ तप करै, ताका आशय शुद्ध होय नाहीं, ताकै निर्जरा न होय. वैराग्यभावनाहीतैं निर्जरा होय है ऐसा जानना।

आगै निर्जरा कहा कहिये सो कहै हैं,—

सव्वेसिं कम्माणं सत्तिविवाओ हवेइ अणुभाओ ।
तदणंतरं तु सडणं कम्माण णिज्जरा जाण ॥ १०३ ॥

भावार्थ–समस्त जे ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म तिनकी शक्ति कहिये फल देनेकी सामर्थ्य, ताका विपाक कहिये पकना, उदय होना, ताकूं अनुभाग कहिये, सो उदय आयकै अनंतर ही ताका सडन कहिये झडना क्षरना होय ताकूं

कमकी निर्जरा है भव्य तू जाणि भावार्थ—कर्म उदय होय खर जाय ताकू निर्जरा कहिये, सो यह निर्जरा दो प्रकार है सो ही कहै हैं—

सा पुण दुविहा णेया सकालपत्ता तवेण कयमाणा।
चादुगदीण पढमा वयजुत्ताणं हवे विदिया ॥१०४॥

भावार्थ—सो पूर्वोक्त निर्जरा दोय प्रकार है. एक तौ स्वकालप्राप्त, एक तपकरि, करी हुई होय तामें पहिली स्वकालप्राप्त निर्जरा तौ चारही गतिके जीवनिकै होय है. बहुरि व्रतकरि युक्त है तिनकै दूसरी तपकरि करी हुई होय है भावार्थ—निर्जरा दोय प्रकार है, तहां जो कर्मस्थिति पूरी करि उदय होय रस देकरि खिरै सो तो सविपाक कहिये. यह निर्जरा तो सर्व ही जीवनिकै होय है बहुरि तपकरि कर्म विना स्थिति पूरी भये ही पकै, खरि जाय, ताकू अविपाक ऐसा भी नाम कहिये है, सो यह व्रतधारीनिकै होय है।

आगैं निर्जरा बधती काहेतैं होय सो कहै हैं—

उवसमभावतवाण जह जह वड्ढी हवेइ साहूण।
तह तह णिज्जर वड्ढी विसेसदो धम्मसुक्कादो १०५

भावार्थ—मुनिनिकै जैसें २ उपशमभाव तथा तपकी बधवारी होय तैसें २ निर्जराकी बधवारी होय है बहुरि धर्मध्यान शुक्लध्यानके विशेषतैं बधवारी होय है।

आगें इस वृद्धिके स्थान कहते हैं—

मिच्छादो सद्दिट्ठी असंखगुणिकम्मणिज्जरा होदि।
तत्तो अणुवयधारी तत्तो य महव्वई णाणी ॥ १०६॥
पढमकसायचउण्हं विजोजओ तह य खवयसीलो य
दंसणमोहतियस्स य तत्तो उपसमगचत्तारि ॥१०७॥
खवगो य खीणमोहो सजोइणाहो तहा अजोईया।
एदे उवरिं उवरिं असंखगुणकम्मणिज्जरया ॥१०८॥

भावार्थ–प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिविर्षे करणत्रयवर्ती विशुद्ध परिणामयुक्त मिथ्यादृष्टिकै जो निर्जरा होय है तातै असयत सम्यग्दृष्टिकै असख्यातगुणी निर्जरा होय है. यातैं देशव्रती श्रावककै असख्यात गुणी होय है. यातैं महाव्रती मुनिनिकै असख्यात गुणी होय है यातै अनतानुबंधी कषायका विसंयोजन कहिये अप्रत्याख्यानादिकरूप परिणमावना ताकै असख्यात गुणी होय है. यातै दर्शनमोहका क्षय करनेवालेकै असख्यातगुणी होय है यातैं उपशम श्रेणीवाले तीन गुणस्थानविषै असंख्यात गुणी होय है. यातैं उपशात मोह ग्यारहमां गुणस्थानवालेकै असख्यातगुणी होय है. यातैं क्षपकश्रेणीवाले तीन गुणस्थानविषै असख्यात गुणी होय है. यातै क्षीणमोह बारहमा गुणस्थानविषै असख्यातगुणी होय है. यातैं सयोग केवलीकै असख्यातगुणी होयहै यातै अयोगकेवलीकै असंख्यातगुणी होय है. ऊपरि ऊपरि

कर्मकी निर्जरा ह भव्य तू जाणि भावार्थ–कर्म उदय होय खर जाय ताकू निर्जरा कहिये, सो यह निर्जरा दो प्रकार है सो ही कहै हैं—

सा पुण दुविहा णेया सकालपत्ता तवेण कयमाणा।
चादुगदीणं पढमा वयजुत्ताणं हवे विदिया ॥१०४॥

भावार्थ–सो पूर्वोक्त निर्जरा दोय प्रकार है एक तौ स्वकालप्राप्त, एक तपकरि, करी हुई होय तामें पहिली स्व कालप्राप्त निर्जरा तौ चारही गतिके जीवनिकै होय है बहुरि व्रतकरि युक्त हैं तिनकै दूसरी तपकरि करी हुई होय है भावार्थ–निर्जरा दोय प्रकार है, तहां जो कर्मस्थिति पूरी करि उदय होय रस देकरि खिरै सो तौ सविपाक कहिये. यह निर्जरा तो सर्व ही जीवनिकै होय है बहुरि तपकरि कर्म विना स्थिति पूरी भये ही पकै, खरि जाय, ताकू अविपाक ऐसा भी नाम कहिये है, सो यह व्रतधारीनिकै होय है।

आगें निर्जरा वधती काहेतें होय सो कहै हैं—

उवसमभावतवाण जह जह वड्ढी हवेइ साहूण।
तह तह णिज्जर वड्ढी विसेसदो धम्मसुक्कादो १०५

भावार्थ–मुनिनिकै जैसें २ उपशमभाव तथा तपकी वधवारी होय तैसें २ निर्जराकी वधवारी होय है बहुरि धर्मध्यान शुक्लध्यानके विशेषतं वधवारी होय है।

आगें इस वृद्धिके स्थान कहते हैं—

मिच्छादो सद्दिट्ठी असंखगुणिकम्मणिज्जरा होदि।
तत्तो अणुवयधारी तत्तो य महव्वई णाणी ॥ १०६॥
पढमकसायचउण्हं विजोजओ तह य खवयसीलो य
दंसणमोहतियस्स य तत्तो उपसमगचत्तारि ॥१०७॥
खवगो य खीणमोहो सजोइणाहो तहा अजोईया।
एदे उवरिं उवरिं असंखगुणकम्मणिज्जरया ॥१०८॥

भावार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिविषैं करणत्रयवर्ती विशुद्ध परिणामयुक्त मिथ्यादृष्टिकै जो निर्जरा होय है तातैं असयत सम्यग्दृष्टिकै असख्यातगुणी निर्जरा होय है. यातैं देशव्रती श्रावककै असख्यात गुणी होय है. यातैं महाव्रती मुनिनिकै असख्यात गुणी होय है. यातैं अनंतानुबंधी कषायका विसंयोजन कहिये अप्रत्याख्यानादिकरूप परिणमावना ताकै असख्यात गुणी होय है. यातैं दर्शनमोहका क्षय करनेवालेकै असख्यातगुणी होय है यातैं उपशम श्रेणीवाले तीन गुणस्थानविषैं असंख्यात गुणी होय है यातैं उपशात मोह ग्यारहमां गुणस्थानवालेकै असख्यातगुणी होय है. यातैं क्षपकश्रेणीवाले तीन गुणस्थानविषै असख्यात गुणी होय है. यातैं क्षीणमोह बारहमां गुणस्थानविषै असख्यात गुणी होय है. यातैं सयोग केवलीकै असख्यातगुणी होय है. यातैं अयोगकेवलीकै असंख्यातगुणी होय है. ऊपरि ऊपरि

असख्यात गुणकार है याहीतैं याकूं गुणश्रेणी निर्जरा कहिये हैं।

आगैं गुणकाररहित अविकरूप निर्जरा जातैं होय सो कहै हैं—

जो वि सहदि दुव्वयण साहम्मियहीलण च उवसग्गं
जिणऊण कसायरिउ तस्स हवे णिज्जरा विउला १०९

भावार्थ—जो मुनि दुर्वचन सहै तथा साधर्मी जे अन्य-मुनि आदिक तिनकरि कीया अनादर सहै तथा देवादिक-निकरि कीया उपसर्ग सहै कपायरूप वैरीनिकूं जीतकरि ऐसैं करै ताकै विपुल कहिये विस्ताररूप वडी निर्जरा होय. भावार्थ—कोई कुवचन कहै तौ तासूं कपाय न करै तथा आ-पकूं अतीचारादिक लागै तब आचार्यादि कठोर वचनकहि प्रायश्चित्त दें निरादर करैं ताकूं निकपायपणै सहै. तथा कोई उपसर्ग करै तासूं कपाय न करैं ताकै वडी निर्जरा होय है।

रिणमोयणुव्व मण्णइ जो उवसग्गं परीसहं तिव्वं।
पावफल मे एदे मया वि य सचिद पुव्वं ॥ ११० ॥

भावार्थ—जो मुनि उपसर्ग तथा तीव्र परिषहकूं ऐसा मानै जो मैं पूर्वजन्ममैं पापका सचै किया था ताका यह फल है सो भोगना यामैं व्याकुल न होना जैसे काहूका करज काढ्या होय सो पैलो मागै, तब देना यामैं व्याकुलता कहा? ऐसैं मानै ताकै निर्जरा बहुत होय है।

जो चिंतेइ सरीरं ममत्तजणयं विणस्सरं असुइं।
दंसणणाणचरित्तं सुहजणयं णिम्मलं णिच्चं॥ १११॥

भापार्थ—जो मुनि या शरीरकूं ममत्व मोहका उपजावनहारा तथा विनाशीक तथा अपवित्र मानै, ताकै निर्जरा बहुत होय. भावार्थ—शरीरकूं मोहका कारन अथिर अशुचि मानैं तब याका सोच न रहै. अपना स्वरूपमैं लागै, तब निर्जरा होय ही होय।

अप्पाणं जो णिंदइ गुणवंताणं करेदि बहुमाणं।
मणइंदियाण विजई स सरूवपरायणो होदि ११२

भापार्थ—जो साधु अपने स्वरूपविषै तत्पर होय करि अपने किये दुष्कृतकी निंदा करै बहुरि गुणवान पुरुषनिका प्रत्यक्ष परोक्ष बडा आदर करै बहुरि अपना मन इंद्रियनिका जीतनहारा वश करनहारा होय ताकै निर्जरा बहुत होय भावार्थ—मिथ्यात्वादि दोषनिका निरादर करै तब ये काहेकूं रहैं झडिही पडैं॥

तस्स य सहलो जम्मो तस्स वि पावस्स णिज्जरा होदि
तस्स वि पुण्णं वड्ढइ तस्स य सोक्खं परो होदि ११३

भापार्थ—जो साधु ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार निर्जराके कारणनिविषै प्रवर्तै है, ताहीका जन्म सफल है. बहुरि तिसहीकै पाप कर्मकी निर्जरा होय है, पुण्यकर्मका अनुभाग बधै है. भावार्थ—जो निर्जराका कारणनिविषै प्रवर्तै,

नाश होय, पुण्यकी वृद्धि होय स्वर्गादिकके सुख भोग मोक्ष कू प्राप्त होय।

आगें उत्कृष्ट निर्जरा कहकरि निर्जराका कथनकू पूरण करै हैं—

जो समसुक्खणिलीणो वारं वार सरेइ अप्पाणं।
इंदियकसायविजई तस्स हवे णिज्जरा परमा॥ ११४॥

भावार्थ-जो मुनि, वीतराग भावरूप सुख, याहीका नाम परम चारित्र है सो याविषै तौ लीन कहिये तन्मय होय बारवार आतमाकू सुमिरै ध्यावै बहुरि इन्द्रियनिका जीतन द्वारा होय, ताकै उत्कृष्ट निर्जरा होय है भावार्थ-इन्द्रियनिका कषायनिका निग्रहकरि परम वीतराग भावरूप आतम-ध्यानविषै लीन होय ताकै उत्कृष्ट निर्जरा होय।

### दोहा

पूरव बांधे कर्म जे, क्षरैं तपोबल पाय।
सो निर्जरा कहाय है, धारै ते शिव जाय॥ ६॥

इति निर्जरानुप्रेक्षा समाप्ता॥ ९॥

## अथ लोकानुप्रेक्षा लिख्यते

आगें लोकानुप्रेक्षाका वर्णन करिये है तामें प्रथमही लोकका आकारादिक कहैंगे तहां किछू गणित प्रयोजनकारी जाणि सक्षेपताकरि कहिये है। भावार्थ-गणितकौ अन्य ग्रंथनिके अनुसार लिखिये है, तहां प्रथम तौ परिकर्माष्टक है

तामें सकलन कहिये जोड देना जैसे आठ वा सातका जोड दिया पंधरा होय बहुरि व्यवकलन कहिये बाकी काढना जैसे आठमें तीन घटाये पाच रहै. बहुरि गुणकार जैसे आठकों सातकरि गुणे छप्पन होय. बहुरि आठकूं दोयका भाग दिये च्यारि पाये बहुरि वर्ग कहिये दोयराशि बराबरकी गुणिये जेते होय तेते ताकु वर्ग कहिये. जैसें आठका वर्ग चौसठि. बहुरि वर्गमूल जैसे चौसठिका वर्गमूल आठ बहुरि घन कहिये तीन राशि बराबरकी गुणे जो होय सो जैसें, आठका घन पाचसैंबारा । बहुरि घनमूल जैसें पाचसौ बाराका घनमूल आठ ऐसैं परिकर्माष्टक जानना.

बहुरि त्रैराशिक है. जहा एक प्रमाणराशि, एक फलराशि ,एक इच्छा राशि जैसें दोय रुपयोंकी जिनस सोलह सेर आवै तो आठरुपयोंकी केती आवे. ऐसैं प्रमाणराशि दोय, फलराशि सोलह, इच्छाराशि आठ तहा फलराशिकूं इच्छाकरि गुणें एकसौ अठाईस होय. ताकू प्रमाणराशि दोयका भाग दिये चौसठि सेर आवैं. ऐसैं जानना बहुरि क्षेत्रफलविषैं जहां बरोबरिके खंड करिये ताकूं क्षेत्रफल कहिये जैसें खेतमैं डोरी मापिये तब कचवासी विसवासी बीघा करियें ताकूं क्षेत्रफल मद्या है. जैसें अस्सीहाथकी डोरी होय ताकै बीस गट्ठा कहिये च्यारि हाथका एक गट्ठा, ऐसैं खेतमैं एक डोरी लाबा चौडा खेत होय ताकै च्यारि हाथके लांबे चौंडे खंड कीजिये, तब बीसकूं बीस गुणा किये च्यारिसैं भये

सोई कचवासी भई याकै बीस विसवे भये ताका एक बीघा भया ऐसैं ही जहा चौखूटा तिखूटा गोल आदि खेत होय, ताका बराबरिका खडकरि मापि क्षेत्रफल ल्याइये है तैसैं ही लोकका क्षेत्रकू योजनादिककी सख्याकरि जैसा क्षेत्र होय तैसा विधानकरि क्षेत्रफल ल्यावनेका विधान गणित शास्त्रतैं जानना. इहा लोकके क्षेत्रविषै तथा द्रव्यनिकी गणनाविषै अलौकिक गणित इक्कईस हैं तथा उपमागणित आठ हैं. तहा सख्यातके तीन भेद—जघन्य मध्यम उत्कृष्ट असख्यातके नव भेद, तामें परीतासख्यात जघन्य मध्य, उत्कृष्ट, युक्तासख्यात—जघन्य मध्य उत्कृष्ट असख्यातासख्यात जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट ऐसैं नौ भये बहुरि अनन्तके नवभेद, परीतानन्त, युक्तानत, अनतानत, ताके जघन्य मध्य उत्कृष्ट करि नव ऐसें इक्कईस। तहा जघन्य परीत असख्यात ल्यावनेके अर्थ लाख लाख योजनके जम्बूद्वीपप्रमाण व्यासवाले हजार हजार योजन ऊडे च्यारि कुड करिये एकका नाम अनवस्था, दूजा शलाका, तीजा प्रतिशलाका, चौथा महाशलाका तिनमैंसू अनवस्था कुडकू सिरस्यूतैं सिधाऊ भरिये तिसमें छियालीस अक प्रमाण सिरस्यू मावै तिनकू सकल्प मात्र ले चालिये एक द्वीपमैं एक समुद्रमैं ऐसैं गेरते जाइये तहा वे सिरस्यू बीतैं तिस द्वीप वा समुद्रकी सूची प्रमाण अनवस्थाकुड कीजे. तामें सिरस्यू भरिये बहुरि शलाका कुडमें एक सिरस्यू अन्य ल्याय गेरिये बहुरि

तैसैं ही तिस दूजे अनवस्था कुण्डकी एक सिरस्यू एक द्वीपमें एक समुद्रमें गेरते जाइये ऐसैं करतें तिस अनवस्था कुण्डकी सिरस्यू जहां वीतें, तहां तिस द्वीप वा समुद्रकी सूची प्रमाण फेर अनवस्था कुंडकरि तैसैं ही सिरस्यू भरिये बहुरि एक सिरस्यू शलाका कुण्डमें अन्य ल्याय गेरिये ऐसैं करतें छियालीस अंक प्रमाण अनवस्था कुण्ड होय चुकैं, तब एक शलाका कुण्ड भरै, तब एक सिरस्यू प्रतिशलाका कुण्डमें गेरिये. तैसैंही अनवस्था होता जाय, शलाका होता जाय ऐसैं करतें छियालीस अंक प्रमाण शलाका कुंडभरि चुकै, तब एक प्रतिशलाका भरै, ऐसैं ही अनवस्था कुंड होता जाय शलाका भरते जांय प्रति शलाका भरते जाय, तब छिआलीस अंक प्रमाण प्रतिशलाका कुंड भरि चुकैं तब एक महाशलाका कुंड भरै ऐसैं करतें छिआलीस अकनिके घन प्रमाण अनवस्था कुण्ड भये. तिनिमैं अतका अनवस्था जिस द्वीप तथा समुद्रकी सूची प्रमाण बण्या तामें जेती सिरस्यू मावै तेता प्रमाण जघन्य परीतासख्यातका है, यामें एक सिरस्यू घटाये उत्कृष्टसंख्यात कहिये. दोय सिरस्यू प्रमाण जघन्य सख्यात कहिये, बीचके सर्व मध्य सख्यातके भेद हैं. बहुरि तिस जघन्य परीतासख्यातकी सिरस्यूकी राशिकू एक एक बखेरि एक एक पर तिसही राशिकू धारि परस्पर गुणता अतमें जो राशि निपजै, ताकूं जघन्य युक्तासख्यात कहिये. यामें एक रूप घटाये उत्कृष्टपरीतासंख्यात कहिये.

-नाना भेद जानने. बहुरि जघन्य युक्तासंख्यातकूं जघन्य-युक्तासंख्यातकरि एकवार परस्पर गुणनेतें जो परिमाण आवै, सो जघन्य असंख्यातासंख्यात जानने यामें एक घटाये उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होय है. मध्य युक्त असंख्यात बीचके नाना भेद जानने।

अब इस जघन्य असंख्यातासंख्यातप्रमाण तीन राशि करनी. एक शलाका एक विरलन एक देय तहां विरलन राशिकूं वखेरि एक एक जुदा जुदा करना, एक एकके ऊपरि एक एक देय राशि धरना तिनकूं परस्पर गुणिये अर सर्व गुणकार होय चुकै तब एक रूप शलाका राशिमेंसू घटावना. बहुरि जो राशि भया तिस प्रमाण विरलन देय राशि करना, तहां विरलनकूं वखेरि एक एककूं जुदा करि एक एक परि देय राशि देना, तिनकूं परस्पर गुणन करना जो राशि निपजै तब एक शलाकाराशिमेंसू फेरि घटावना बहुरि जो राशि निपज्या ताकै परिमाण विरलन देय राशि करना। विरलनकूं वखेरि देयकूं एक एक पर स्थापि परस्पर गुणन करना, एकरूप शलाकामेंसू घटावना ऐसें विरलन देय राशिकरि गुणाकार करता जाना, शलाकामेंसू घटाता जाना. जब शलाका राशि निःशेष हो जाय तब जो किछू परिमाण आया सो मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद है. बहुरि तितने तितने परिमाण शलाका, विरलन, देय, तीन राशि फेरि करना। तिनकू पूर्ववत् करतैं शलाका राशि निःशेष होय जाय, तब

जो महाराशि परिमाण आया सो भी मध्य असंख्यातासंख्या-तका भेद है. बहुरि तिस राशि परिमाणके फेरि शलाका विरलन देय राशि करना तिनकू पूर्वोक्त विधानकरि गुणा-नेतैं जो महाराशि भया सो यह भी मध्य असख्यातासख्या-तका भेद भया. अर शलाकात्रयनिष्ठापन एक वार भया. बहुरि इस राशिमैं असख्यातासख्यात प्रमाण छह राशि और मिलावणी। लोकप्रमाण धर्म्म द्रव्यके प्रदेश, अधर्म्म द्र-व्यके प्रदेश, एक जीवके प्रदेश, लोकाकाशके प्रदेश बहुरि तिस लोकतैं असंख्यातगुणे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवनिका परिमाण, बहुरि तिसतैं असख्यातगुणे सप्रति-ष्ठित प्रत्येकवनस्पति जीवोंका परिमाण ये छह राशि मि लाय पूर्वोक्त प्रकार शलाका विरलन देयराशिके विधानकरि शलाकात्रयनिष्ठापन करना, तब जो महाराशि निपज्या सो भी मध्य असख्यातासख्यातका भेद है. तामैं च्यारि राशि और मिलावने—कल्प काल वीस कोडाकोडी सागरके समय बहुरि स्थितिबंधकू कारण कषायनिके स्थान, अनुभाग ब-धकू कारण कषायनिके स्थान, योगनिके अविभाग प्रति-च्छेद, ऐसी च्यारि राशि मिलाय अर पूर्वोक्त विधानकरि शलाकात्रय निष्ठापन करना ऐसैं करतैं जो परिमाण होय सो जघन्यपरीतानन्तराशि भया यामैंसूं एक रूप घटाये उ-त्कृष्ट असख्यातासख्यात होय है वीचिमैं मध्यके नाना भेद हैं. बहुरि जघन्य परीतानन्त राशि विरलनकरि एक एक

धरि एक एक जघन्य परीतानन्त स्थापनकरि परस्पर गुणें जो परिमाण होय सो जघन्ययुक्तानन्त जानना तामें एक घटाये उत्कृष्ट परीतानन्त है मध्य परीतानन्तके बीचिमें नाना भेद हैं. बहुरि जघन्य युक्तानन्तकू जघन्य युक्तानन्तकरि एकवार परस्पर गुणे जघन्य अनंतानंत है. यामेंसू एक घटाये उत्कृष्ट युक्तानन्त होय है मध्य युक्तानन्तके बीचमें नाना भेद हैं. अब उत्कृष्ट अनन्तानन्तकू ल्यावनेका उपाय कहै हैं तहां जघन्य अनंतानंत परिमाण शलाका विरलन देय इन तीन राशिकरि अनुक्रमतें पहलें कह्या तैसें शलाकात्रयनिष्ठापन करै तब मध्य अनंतानंतका भेद रूप राशि में निपजै है ताविषै छह राशि मिलावै सिद्धराशि, निगोदराशि, प्रत्येक वनस्पतिसहित निगोदराशि, पुद्गलराशि, कालके समय, आकाशके प्रदेश ये छह राशिमध्य अनन्तानंतके भेदरूप मिलाय शलाकात्रयनिष्ठापन पूर्ववत् विधानकरि करना तब मध्य अनन्तानन्तका भेदरूप राशि निपजै, ताविषै फेरि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके अगुरुलघु गुणके अविभागप्रतिच्छेद मिलाय जो महाराशि परिमाण राशि भया. ताकू फेरि पूर्वोक्त विधानकरि शलाकात्रय निष्ठापन करिये तब जो कोई मध्य अनन्तानन्तका भेदरूप राशि भया, ताकू केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदनका समूह परिमाणविषै घटाय फेरि मिलाइये तब केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेद रूप उत्कृष्ट अनंतानंत परिमाण राशि होय है . बहुरि उपमा

प्रमाण आठ प्रकार करि कह्या है. पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगतप्रतर, जगतघन तहां पल्य तीन प्रकार है— व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य, अद्धापल्य. तहां व्यवहारपल्य तौ रोमनिकी सख्या मात्रही है. बहुरि उद्धारपल्यकरि द्वीपसमुद्रनिकी संख्या गणिये है. बहुरि अद्धापल्यकरि कर्मनिकी स्थिति देवादिककी आयुस्थिति गणिये है. अब इनका परिमाण जाननेकू परिभाषा कहै हैं. तहां अनन्त पुद्गलके परमाणुनिका स्कन्ध तौ एक अवसन्ना सन्न नाम है तातैं आठ आठ गुणा क्रमकरि बारह स्थानक जानने. सन्नासन, त्रुटरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तमभोगभूमिका वालका अग्रभाग, मध्यम भोगभूमिका, जघन्य भोगभूमिका, कर्मभूमिका, लीख, सरसूं, यव, अंगुल ए बारह हैं. सो ऐसैं अंगुल भया सो उत्सेध अंगुल है सो याकरि नारकी तिर्यंच देव मनुष्यनिके शरीरका प्रमाण वर्णन कीजिये है, अर देवनिके नगर मंदिर वर्णन कीजिये है. बहुरि उत्सेध अंगुलतैं पांचसै गुणा प्रमाणांगुल है यातैं द्वीप समुद्र पर्वत आदिकनिका परिमाण वर्णन है. बहुरि आत्मांगुल जहां जैसा मनुष्यनिका होय तिस परिमाण जानना बहुरि छह अंगुलका पाद होय, दोय पादका एक विलस्त होय, दोय विलस्तका एक हाथ होय, दोय हाथका एक भीष होय, दोय भीषका एक धनुष होय, दोय हजार धनुषका एक कोश होय, च्यारि कोशका एक योजन होय, सो यहां प्रमाणांगुलकरि निपज्या ऐसा एक योजन प्रमाण

उडा चौडा एक खाडा करना, ताकूं उत्तम भोगभूमिविषै उपज्या जो जनमतैं लगाय सात दिन ताईका मीढाका बालका अग्रभाग तिनिकरि भूमि समान अत्यन्त गाढा भरना, तामें रोम पैंतालीस अकनि परिमाण मावै, तिनकूं एक एक रोम खडक सौ सौ बरस गये काढे. जिते वरस होंय सो व्यवहार पल्य है. तिनि वर्षनिके असख्यात समय होय हैं. व हुरि तिनि रोमके एक एकके असख्यात कोडि वर्षके समय होंय, तेते तेते खड कीजिये सो उद्धार पल्यके रोम खड होंय, तेते समय उद्धार पल्यके हैं।

वहुरि इन उद्धार पल्यके एक एक रोम खडके असख्यात वर्षके जेते समय होय तितने खड कीये अद्धापल्यके रोमखण्ड होय हैं ताके समय भी इतने ही हैं वहुरि दश कोडाकोडी पल्यका एक सागर होय है वहुरि एक प्रमाणागुल प्रमाण लवा एकप्रदेश प्रमाण चौडा उचा क्षेत्रकूं सूच्यगुल कहिये है. याके प्रदेश अद्धापल्यके अर्द्ध छेदनिका विरलनकरि एक एक अद्धापल्य तिनपरि स्थापि परस्पर गुणिये जो परिमाण आवै तेते याके प्रदेश हैं वहुरि याका वर्गकूं प्रतरागुल कहिये. वहुरि सूच्यगुलके घनकूं घनागुल कहिये एक अगुल चौडा तेताही लावा अर ऊचा ताकूं घन अगुल कहिये. वहुरि सात राजू लांबा एक प्रदेश प्रमाण चौडा ऊचा क्षेत्रकूं जगतश्रेणी कहिये याकी उत्पत्ति ऐसैं जो अद्धापल्यके अर्द्ध छेदनिका असख्यातवा भागका प्रमाणक विरलनकरि एक एक परि घनागुल देय परस्पर गुणे जो राशि निपजै सो

जगतश्रेणी है बहुरि जगतश्रेणीका वर्ग सो जगतप्रतर कहिये बहुरि जगतश्रेणीका घन सो जगतघन कहिये. सात राजु चौडा लांवा ऊंचाकूं जगतघन कहिये यह लोकके प्रदेशनि का प्रमाण है. सो भी मध्य असंख्यातका भेद है ऐसें ए गणित संक्षेप करि कही. बहुरि गणितका कथन विशेषकरि गोम्मटसार त्रिलोकसारतें जानना. द्रव्यमें तो सूक्ष्म पुद्गल परमाणु, क्षेत्रमें आकाशके प्रदेश; कालमें समय, भावमें अविभागप्रतिच्छेद, इन च्यारूंहीकूं परस्पर प्रमाण संज्ञा है. सो घाटिसूं घाटि तौ ये हैं अर वाधिसूं वाधि द्रव्यमें तौ महास्कन्ध, क्षेत्रमें आकाश, कालमें तीनूं काल, भावमें केवल ज्ञान, ऐसा जानना. बहुरि कालमें एक आवलीके जघन्य युक्तासंख्यात समय हैं. अर असंख्यात आवलीका मुहूर्त है. तीस मुहूर्तका दिनराति है. तीस दिन रात्रिका एक मास है बारह मासका एक वर्ष है इत्यादि जानना।

आगें प्रथम ही लोकाकाशका स्वरूप कहे हैं—

सव्वायासमणंतं तस्स य बहुमज्झिसंठियो लोओ।
सो केण वि णेय कओ ण य धारिओ हरिहरादीहि ॥

भावार्थ—आकाश द्रव्य है ताका क्षेत्र प्रदेश अनन्त है. ताका बहुमध्यदेश कहिये बीचही बीचका क्षेत्र, ताविषै तिष्ठै ऐसा लोक है सो काहू करि कीया नाहीं है तथा कोई हरिहरादिकरि धारया, वा राख्या नाहीं है भावार्थ—केई अन्य मतमें कहै हैं जो लोककी रचना ब्रह्मा करै है नारायण रक्षा

करै है शिव संहार करै है, तथा काछिवा तथा शेष नाग धारया है तथा प्रलय होय है, तब सर्वशून्य होय जाय है, ब्रह्मकी सत्ता मात्र रह जाय है बहुरि ब्रह्मकी सत्तामेंसू सृष्टिकी रचना होय है. इत्यादि अनेक कल्पित कहै हैं ताका निषेध इस सूत्रतैं जानना लोक काहू करि कीया नाहीं. काहू करि धारया नाहीं काहू करि विनसै नाहीं. जैसा है तैसा ही सर्वज्ञने देख्या है सो वस्तु स्वरूप है।

आगें इस लोकविषै कहा है सो कहैं हैं—

अण्णोण्णपवेसेण य दव्वाणं अत्थण भवे लोओ।
दव्वाण णिच्चत्तो लोयस्स वि मुणह णिच्चत्त ११६

भावार्थ—जीवादिक द्रव्यनिका परस्पर एक क्षेत्रावगाहरूप प्रवेश कहिये मिलापरूप अवस्थान सो लोक है, जे द्रव्य हैं ते नित्य हैं याहीतैं लोक भी नित्य है ऐसा जानहु. भावार्थ—षड्द्रव्यनिका समुदाय सो लोक है ते द्रव्य नित्य हैं, तातैं लोक भी नित्य ही है।

आगें कोई तर्क करै जो नित्य है तो उपजै विनसै कौन है, ताका समाधानका सूत्र कहैं हैं—

परिणामसहावादो पडिसमय परिणमंति दव्वाणि।
तेसिं परिणामादो लोयस्स वि मुणह परिणामं॥

भावार्थ—या लोकमें छह द्रव्य हैं ते परिणामस्वभाव हैं सो समय समय परिणमै हैं तिनके परिणमें लोकके भी

परिणाम जानहु भावार्थ-द्रव्य हैं ते परिणामी हैं. लोक है सो द्रव्यनिका समुदाय है यातैं द्रव्यनिके परिणाम है सो लोककै भी परिणाम आया. कोई पूछै परिणाम कहा ? ताका उत्तर-परिणाम नाम पर्यायका है जो एक अवस्था रूप द्रव्य था सो पलटि दूजी अवस्थारूप होना. जैसें माटी पिंडअवस्थारूप थी सो पलटि करि घट बण्या ऐसैं परिणामको स्वरूप जानना. सो लोकका आकार तौ नित्य है अर द्रव्यनिकी पर्याय पलटै है या अपेक्षा परिणाम कहिये है।

आगें या लोकका आकार तौ नित्य है ऐसा धारि व्यासादि कहैं हैं—

सत्तेक्कु पंच इक्का मूले मज्झे तहेव बंभते ।
लोयते रज्जुओ पुव्वावरदो य वित्थारो ॥ ११८ ॥

भावार्थ-लोकका पूर्व पश्चिम दिशाविषै मूल कहिये नीचैं तौ सात राजू विस्तार है. बहुरि मध्य कहिये बीचि एक राजूका विस्तार है बहुरि ऊपरि ब्रह्म स्वर्गके अंत पांच राजूका विस्तार है बहुरि लोकका अन्तविषैं एक राजूका विस्तार है. भावार्थ-लोक नीचले भागविषै पूर्व पश्चिमदिशाविषै सात राजू चौडा है. तहांतैं अनुक्रमतैं घटता घटता मध्य लोक एक राजू रह्या. पीछैं ऊपरि अनुक्रमतैं बधता २ ब्रह्मस्वर्गताईं पाच राजू चौडा भया. पीछैं घटतै घटतै अंतमें एक राजू रह्या. ऐसैं होतैं डयोढ मृदंग ऊभी धरिये तैसा आकार भया।

आगें दक्षिण उत्तर विस्तार वा ऊँचाईकूं कहै हैं—

**दक्खिणउत्तरदो पुण सत्त वि रज्जू हवेदि सव्वत्थ।**
**उड्ढो चउदसरज्जू सत्त वि रज्जूघणो लोओ ११९**

भापार्थ—लोक है सो दक्षिण उत्तर दिशाकूं सर्व ऊचाई पर्यंत सात राजू विस्तार है ऊंचा चौदह राजू है। बहुरि सात राजूका घनप्रमाण है भावार्थ—दक्षिण उत्तरकूं सर्वत्र सात राजू चौडा है ऊचा चौदै राजू है ऐसा लोकका घन फल करिये तब तीनसै तियालिस (३४३) राजू होय है समान क्षेत्रखंड करि एक राजू चौडा लांबा ऊचा खंड करिये ताकूं घनफल कहिये।

आगें ऊचाईके भेद कहै है,—

**मेरुस्स हिट्ठभाये सत्त वि रज्जू हवे अहोलोओ।**
**उड्ढम्हि उड्ढलोओ मेरुसमो मज्झिमो लोओ॥१२०॥**

भापार्थ—मेरुके नीचे भागविषै सात राजू अधोलोक है ऊपरि सात राजू ऊर्ध्वलोक है मेरुसमान मध्य लोक है भावार्थ—मेरुके नीचें सात राजू अधोलोक, ऊपर सात राजू ऊर्ध्व लोक, बीचमें मेरुसमान लाख योजनका मध्यलोक है ऐसें तीन लोकका विभाग जानना।

आगें लोक शब्दका अर्थ कहै हैं,—

**दमति जत्थ अत्था जीवादीया स भण्णदे लोओ।**
**तस्स सिहरम्मि सिद्धा अंतविहीणा विरायंति ॥१२१**

भापार्थ—जहाँ जीव आदिक पदार्थ देखिये हैं सो लो
कहिये । ताके शिखर ऊपरि अनन्ते सिद्ध विराजै हैं भा
वार्थ—'लोक' दर्शने नामा व्याकरणमें धातु है ताकै आश्र
यार्थविषै अकार प्रत्ययतैं लोक शब्द निपजै है, तातैं जामें
जीवादिक द्रव्य देखिये, ताकू लोक कहिये बहुरि ताके
ऊपरि अन्तविषै कर्म रहित शुद्धजीव अनन्त गुणनिकरि
सहित अविनाशी अनंत विराजै हैं ।

आगें या लोकविषै जीव आदि छह द्रव्य हैं तिनका
वर्णन करै हैं, तहा प्रथम ही जीव द्रव्यकूं कहै हैं ।

एइंदियेहिं भरिदो पंचपयारेहिं सव्वदो लोओ ।
तसनाडीए वि तसा ण वाहिरा होंति सव्वत्थ १२२

भापार्थ—यह लोक पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति ऐसैं
पचप्रकार कायके धारक जे एकेंद्रिय जीव तिनकरि सर्वत्र
भरया है बहुरि त्रस जीव त्रस नाडीविषै ही हैं वाहिर नाहीं
हैं । भावार्थ—जीव द्रव्य उपयोग लक्षणवाला समान परिणा-
मकी अपेक्षा सामान्य करि एक है, तथापि वस्तु भिन्नप्रदेश-
करि अपने २ स्वरूपकू लीये न्यारे न्यारे अनन्ते हैं, तिनमें
जे एकेंद्रिय हैं ते तौ सर्व लोकमें है बहुरि वेन्द्रिय तेन्द्रिय
चतुरिंद्रिय पचेंद्रिय ऐसे त्रस हैं ते त्रस नाडी विषैही हैं ।

आगें वादर सूक्ष्मादि भेद कहै हैं,—

...ण्णा वि अपुण्णा वि य थूला जीवा हवंति

छविहा सुहमा जीवा लोयायासे वि सव्वत्थ १२३॥

भावार्थ-जे जीव आधारसहित हैं, ते तौ स्थूल कहिये बादर हैं ते पर्याप्त हैं बहुरि अपर्याप्त भी है। बहुरि जे लोकाकाशविषै सर्वत्र अन्य आधाररहित हैं ते जीव सूक्ष्म हैं ते छह प्रकार हैं।

आगें बादर सूक्ष्म कून कून हैं सो कहै है,—

पुढवीजलग्गिवाऊ चत्तारि वि होंति बायरा सुहमा।
साहारणपत्तेया वणप्फदी पंचमा दुविहा ॥ १२४॥

भावार्थ-पृथ्वी जल अग्नि वायु ये च्यारि तौ बादर भी हैं तथा सूक्ष्म भी हैं बहुरि पाचई वनस्पति है सो प्रत्येक साधारण भेद करि दोय प्रकार है।

आगें साधारण प्रत्येककै सूक्ष्मपणाकू कहै हैं,--

साहारणा वि दुविहा अणाइकाला य साइकाला य।
ते वि य बादरसुहमा सेसा पुण बायरा सव्वे १२५॥

भावार्थ-साधारण जीव दोय प्रकार हैं अनादिकाला कहिये नित्य निगोद सादिकाला कहिये इतर निगोद ते दोऊ हू बादर भी हैं सूक्ष्म भी हैं बहुरि शेष कहिये प्रत्येक वनस्पती वा त्रस ते सर्व बादर ही हैं। भावार्थ-पूर्वें कह्या जो सूक्ष्म छह प्रकार हैं ते पृथ्वी जल तेज वायु तौ पहली गाथा में कहे बहुरि नित्य निगोद इतर निगोद ए दोय ऐसैं छह

प्रकार तौ सूक्ष्म जानने बहुरि छह प्रकार तो ए रहे अर अवशेष ते सर्व वादर जानने।

आगें साधारणका स्वरूप कहै हैं,—

साहारणाणि जेसिं आहारुस्सासकायआऊणि ।
ते साहारणजीवा णंताणंतप्पमाणाणं ॥ १२६ ॥

भावार्थ—जिन अनन्तानन्त प्रमाण जीवनके आहार उच्छ्वास काय आयु साधारण कहिये समान हैं, ते साधारण जीव हैं। उक्तं च गोमट्टसारे—

"जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं
चंकमइ जत्थ एक्को चंकमणं तत्थ णंताणं"

भावार्थ—जहां एक साधारण जीव निगोदिया उपजै तहां ताकी साथ ही अनन्तानन्त उपजैं अर एक निगोद जीव मरै ताके साथ ही अनन्तानन्तसमान आयुवाला मरै है भावार्थ—एक जीव आहार करै तेई अनन्तानन्त जीवनिका आहार, एक जीव स्वासोस्वास ले सो ही अनन्तानन्त जीवनिका स्वासोस्वास, एक जीवका शरीर सोई अनन्तानन्तका शरीर, एक जीवका आयु सोही अनन्तानन्तका आयु ऐसें समान है तातैं साधारण नाम जानना।

आगें सूक्ष्म वादरका स्वरूप कहै हैं,—

ण य जेसिं पडिखलणं पुढवीतोएहिं अग्गिवाएहिं
ते जाण सुहुमकाया इयरा पुण थूलकाया य १२

भावार्थ—जिन जीवनिका पृथ्वी जल अग्नि पवन इन करि रुकना न होय ते जीव सूक्ष्म जानहु. बहुरि जे इन करि रुकैं ते बादर जानहु ।

आगें प्रत्येकरु वा त्रसरु कहे हैं,—

पत्तेया वि य दुविहा णिगोदसहिदा तहेव रहिया य ।
दुविहा होंति तसा वि य वितिचउरक्खा तहेव पंचक्खा

भावार्थ—प्रत्येक वनस्पती भी दोय प्रकार है ते निगोदसहित हैं तैसें ही निगोदरहित हैं बहुरि त्रस भी दोय प्रकार हैं बेन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय ऐसें तो विकलत्रय बहुरि तैसें ही पचेन्द्रिय हैं. भावार्थ—जिस वनस्पतीके आश्रय निगोद पाइये सो तो साधारण है, याकू सप्रतिष्ठित भी कहिये बहुरि जिसकै आश्रय निगोद नाहीं ताकू प्रत्येक ही कहिये याहीको अप्रतिष्ठित भी कहिये है बहुरि बेन्द्रिय आदिककू त्रस कहिये है *

---

* मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंदबीज बीजरुहा ।
सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥ १ ॥

जो वनस्पति मूल अग्र पर्व कंद स्कंध बीजसे पैदा होती हैं तथा जो सम्मूर्च्छन हैं वे वनस्पतियां सप्रतिष्ठित हैं तथा अप्रतिष्ठित भी हैं। भावार्थ—बहुत सी वनस्पतियां मूलसे पैदा होती हैं जैसे अदरक, हल्दी आदि । कई वनस्पति अग्र भागसे उत्पन्न होती हैं जैसे गुलाब ।

आगे पचेंद्रियनिके भेद कहैं है।

**पंचक्खा विय तिविहा जलथलआयासगामिणो तिरिया**
**पत्तेयं ते दुविहा मणेण जुत्ता अजुत्ता य ॥ १२९ ॥**

---

किसी वनस्पतिकी उत्पत्ति पर्व ( पगोली ) से होती है जैसे ईख बेंत आदि। कोई वनस्पति कन्दसे उपजती हैं जैसे सूरण आदि। कई वनस्पति स्कन्धसे होती हैं जैसे ढाक। बहुत सी वनस्पति बीज से होती हैं जैसे चना गेहू आदि। कई वनस्पति पृथ्वी जल आदिके सम्बन्धसे पैदा हो जाती हैं वे सम्मूर्च्छन हैं जैसे घास आदि। ये सभी वनस्पति सप्रतिष्ठित तथा अप्रतिष्ठित दोनों प्रकारकी हैं ॥ १ ॥

> गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं।
> साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥ २ ॥

जिन वनस्पतियोंके शिरा ( तोरई आदि में ) संधि ( खापोंके चिन्ह खरबूजे आदि में ) पर्व ( पगोली गन्ने आदि में ) प्रगट न हो और जिनमें तन्तु पैदा न हुआ हो ( भिंडी आदिमें ) तथा जो काटने पर फिर बढ जाय वे सप्रतिष्ठित वनस्पति है इनसे उलटी अप्रतिष्ठित समझनी चाहिये ॥ २ ॥

> मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलबीजे।
> समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥ ३ ॥

जिन वनस्पतियोंका मूल ( हल्दी, अदरक आदि )

भावार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच हैं ते जलचर थलचर नभचर ऐसैं तीन प्रकार हैं बहुरि प्रत्येक मनकरि युक्त सैनी भी हैं तथा मनरहित असैनी भी हैं।

बहुरि इनके भेद कहे हैं,—

ते वि पुणो वि य दुविहा गब्भजजम्मा तहेव सम्मुच्छा
भोगभुवा गब्भभुवा थलयरणहगामिणो सण्णी १३०

भावार्थ—ते छह प्रकार कहे जे तिर्यंच ते गर्भज भी हैं बहुरि सम्मूर्च्छन भी हैं बहुरि इनविषै जे भोगभूमिके तिर्यंच हैं ते थलचर नभचर ही हैं जलचर नाहीं हैं बहुरि ते सैनी ही हैं असैनी नाही हैं।

आगें अठयाणवे जीव समासनिकूं तथा तिर्यंचके पिच्यासी भेदनिकूं कहे हैं—

---

कन्द (सूरण आदि) छाल, नई कोंपल, टहनी, फूल, फल, तथा बीज तोडने पर बराबर टूट जाय वे समतिष्ठित प्रत्येक हैं तथा जो बराबर न टूटें वे अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं ॥ ३ ॥

कंदस्स व मूलस्स व सालाखंधस्स वा वि बहुलतरी।
छल्ली सा णंतजिया पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥ ४ ॥

जिन वनस्पतियोंके कन्द, मूल, टहनी, स्कंधकी छाल मोटी है उन्हें समतिष्ठित प्रत्येक ( अनत जीवोंका स्थान ) जानना चाहिये और जिनकी छाल पतली हो उन्हें अप्रतिष्ठित प्रत्येक मानना चाहिये ॥ ४ ॥

अट्ठ वि गब्भज दुविहा तिविहा सम्मुच्छिणो वि तेवीसा
इदि पणसीदी भेया सव्वेसिं होंति तिरियाणं १३१

भावार्थ—सर्व ही तिर्यंचनिके पिच्यासी भेद हैं. तहां गर्भजके आठ ते तो पर्य्याप्त अपर्य्याप्तकरि सोलह भये. बहुरि सम्मूर्छनके तेईस भेद, ते पर्य्याप्त अपर्य्याप्त लब्ध्यपर्याप्तकरि गुणहत्तरि भये ऐसैं पिच्यासी है. भावार्थ—पूर्वै कहे जे कर्मभूमिके गर्भज जलचर थलचर नभचर ते सैनी असैनी करि छह भेद, बहुरि भोगभूमिके थलचर नभचर सैनी ये आठही पर्य्याप्त अपर्य्याप्त भेदकरि सोलह, बहुरि सम्मूर्छनके पृथ्वी अप् तेज वायु नित्य निगोदके सूक्ष्म बादरकरि बारह बहुरि वनस्पती समतिष्ठित अप्रतिष्ठित ऐसैं चौदह तौ एकेन्द्रिय भेद बहुरि विकलत्रय तीन, बहुरि पचेन्द्रिय कर्मभूमिके जलचर थलचर नभचर सैनी असैनी करि छह भेद, ऐसैं सब मिलि तेईस ताकै पर्य्याप्त अपर्य्याप्त लब्ध्यपर्य्याप्तकरि गुणहत्तरि ऐसैं पच्यासी होय है ॥ १३१ ॥

आगें मनुष्यनिके भेद कहै हैं—

अज्जव मिलेच्छखंडे भोगभूमीसु वि कुभोगभूमीसु
मणुआ हवंति दुविहा णिव्वित्तिअपुण्णगा पुण्णा ॥

भावार्थ—मनुष्य आर्यखंडविषै म्लेछखंड विषैं तथा भोगभूमिविषैं तथा कुभोगभूमिविषै हैं ते च्यारि ही पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्तकरि आठ भेद भये ॥ १३२ ॥

सम्मुच्छणा मणुस्सा अज्जवखडेसु होंति णियमेण
ते पुण लद्धिअपुण्णा णारय देवा वि ते दुविहा १३३

भावार्थ–सम्मूर्च्छन मनुष्य आर्यखंडविषै ही नियम करि होय हैं. ते लब्ध्यपर्याप्तक ही हैं बहुरि नारक तथा देव ते पर्याप्त तथा निर्वृत्यपर्याप्तके भेद करि च्यारि भेद हैं. ऐसैं तिर्यचके भेद पिच्यासी, मनुष्यके नव नारक देवके च्यारि, सर्व मिलि अठयाणवे भेद भये बहुतनिको समानता करि मेले करि कहिये सक्षेप करि सग्रह करि कहिये ताकू समास कहिये है सो यहा बहुत जीवनिका सक्षेप करि कहना सो जीवसमास जानना ऐसैं जीव समास कहे।

आगैं पर्याप्तिका वर्णन करै है,—

आहारसरीरिंदियणिस्सासुस्सासहासमणसाण ।
परिणइ वावारेसु य जाओ छच्चेव सत्तीओ ॥ १३४ ॥

भावार्थ–जो आहार शरीर इन्द्रिय स्वासोस्वांस भाषा मन इनका परिणमनकी प्रवृत्तिविषैं सामर्थ्य सो छह प्रकार है भावार्थ–आत्माकै यथायोग्य कर्मका उदय होतैं आहारादिक ग्रहणकी शक्तिका होना सो शक्तिरूप पर्याप्ति कहिये सो छह प्रकार है।

आगैं शक्तिका कार्य कहै हैं।

तस्सेव कारणाणं पुग्गलखधाण जा हु णिप्पत्ती ।
सा पज्जत्ती भण्णदि छब्भेया जिणवरिंदेहिं ॥ १३५ ॥

भावार्थ—तिस शक्ति प्रवृत्तिकी पूर्णताकूं कारण जे पुद्गलके स्कंध तिनकी प्रगटपणां निष्पत्ति कहिये पूर्णता होना ताकूं पर्याप्ति ऐसा जिनेन्द्रदेवने कह्या है।

आगें पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तके कालकूं कहै हैं,—

पज्जत्तिं गिह्णंतो मणुपज्जत्तिं ण जाव समणोदि ।
तां णिव्वत्तिअपुण्णो मणुपुण्णो भण्णदे पुण्णो ॥१३६॥

भावार्थ—यह जीव पर्याप्तिकूं ग्रहण करता संता जेतें मनःपर्याप्तिकूं पूर्ण न करै तेतें निर्वृत्यपर्याप्त कहिये बहुरि जब मनःपर्याप्ति पूर्ण होय तब पर्याप्त कहिये. भावार्थ—इहां सैनी पचेन्द्रिय जीवकी अपेक्षा मनमें धारि ऐसैं कथन किया है अन्य ग्रन्थनिमें जेतें शरीर पर्याप्ति पूर्ण न होय तेतें निर्वृत्यपर्याप्त है. ऐसैं कथन सर्व जीवनिका कह्या है।

आगें लब्ध्यपर्याप्तका स्वरूप कहै हैं,—

उस्सासट्ठारसमे भागे जो मरदि ण य समाणोदि ।
एका वि य पज्जत्ती लद्धिअपुण्णो हवे सो दु ॥१३७॥

भावार्थ—जो जीव स्वासके अठारवें भागमें मरै एक भी पर्याप्ति पूर्ण न करै सो जीव लब्ध्यपर्याप्तिक कहिये।

---

१ पज्जत्तस्स य उदये णिय णिय पज्जत्ति णिट्ठिदो होदि ।
जाव सरीरमपुण्णं णिव्वत्तियपुण्णगो ताव ॥ १ ॥
तिण्णसया छत्तीसा छावट्ठीसहस्सगाणि मरणाणि ।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ २ ॥
सीदीसट्ठातालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे ।

आगें एकेंद्रियादि जीवनिकैं पर्याप्तिनिकी सख्या कहै हैं,

लद्धिअपुण्णो पुण्ण पज्जत्ती एयक्खवियलसण्णीण।
चदु पण छक्क कमसो पज्जत्तीए वियाणेह॥ १३८॥

भावार्थ—एकेन्द्रियकै च्यारि विकलत्रयकै पाच, सैनी पचेन्द्रियकै छह ऐसें क्रमतें पर्याप्ति जाणू बहुरि लब्ध्यपर्याप्तक है सो अपर्याप्तक है याकै पर्याप्ति नाहीं भावार्थ–एकेन्द्रियादिककै क्रमतें पर्याप्ति कहे इहा असैनीका नाम लीया नहीं तहा तो सैनाकै छह असैनीकै पाच जानने बहुरि निर्वृत्यपर्याप्त ग्रहण काय हो है पूर्ण होसी ही तातें जो सख्या कही है सो ही है बहुरि लब्ध्यपर्याप्त यद्यपि ग्रहण कीया है तथापि पूर्ण होय नवया नाहीं, तातें ताकू अपूर्ण ही कहया ऐसा सूचे है ऐसें पर्याप्तिका वर्णन कीया।

आगें प्राणनिका वर्णन करै हैं तहा प्रथमही प्राणनिका स्वरूप वा सख्या कहै हैं—

मणवयणकायइंदियणिस्सासुस्सासआउउदयाणं।
जेसिं जोए जम्मदि मरदि विओगम्मि ते वि दह पाणा

छावट्ठि च सहस्सा सए च बत्तीसमेयखळे॥ ३॥
पुढविदगागणिमारुदसाहारणथूलसुहुमपत्तेया।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्के बारख छक्क॥ ४॥

पर्याप्तिनामा नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति बनाता है। जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

प्राणधारण अर्थ है सो व्यवहार नयकरि दश प्राण है तिनमें यथायोग्य प्राणसहित जीवै ताकू जीवसज्ञा है।

आगे एकेंद्रियादि जीवनिकैं प्राणनिकी सख्या कहै हैं,

एयक्खे चदुपाणा वितिचउरिंदिय असण्णिसण्णीणं।
छह सत्त अट्ठ णवय दह पुण्णाणं कमे पाणा ॥ १४० ॥

भावार्थ-एकेंद्रियकै च्यारि प्राण है बेन्द्रिय, तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, असैनी पचेन्द्रिय, सैनी पचेन्द्रियनिकै, पर्याप्तिनिकै अनुक्रमतै छह सात आठ नव दश प्राण हैं ए प्राण पर्याप्त अवस्थाविषै कहे ॥ १४० ॥

आगे इनिही जीवनिकै अपर्याप्त अवस्थाविषै कहै है—

दुविहाणमपुण्णाण इगिविितिचउरक्ख अतिमदुगाणं
तिय चउ पण छह सत्त य कमेण पाणा मुणेयव्वा

भावार्थ-दोय प्रकारके अपर्याप्त जे एकेंद्रिय, द्वींद्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिंद्रिय असैनी तथा सैनी पचेंद्रियनिकै तीन च्यारि पाच छह सात ऐसैं अनुक्रमतै प्राण जानने भावार्थ-निर्वृत्यपर्याप्त लब्धपर्याप्त एकेंद्रियकै तीन, वेइन्द्रियके च्यारि तेइंद्रियकै पांच, चतुरिंद्रियकै छह, असैनी सैनी पचेंद्रियकै सात ऐसैं प्राण जानने।

आगे विकलत्रय जीवनिका ठिकाणा कहै हैं—

वितिचउरक्खा जीवा हवति णियमेणकम्मभूमीसु।

चरमे दीवे अद्धे चरमसमुद्दे वि सव्वेसु ॥ १४२ ॥

भावार्थ—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, जे विकलत्रय कहावैं ते जीव नियमकरि कर्मभूमिविषै ही होय हैं तथा अंतका आधा द्वीप तथा अंतका सारा समुद्रविषै होय हैं. भोगभूमिविषै न होय हैं भावार्थ—पच भरत-पच ऐरावत पच विदेह ए कर्मभूमिके क्षेत्र हैं तथा अंतका स्वयप्रभ द्वीपके बीचि स्वयप्रभ पर्वत है तातैं परैं आधा द्वीप तथा अंतका स्वयभूरमण सारा समुद्र एती जायगा विकलत्रय हैं और जायगा नाहीं ॥ १४२ ॥

आगैं अढाई द्वीपतैं बाह्य तिर्यंच हैं तिनकी व्यवस्था हैमवत पर्वत सारिखी है ऐसैं कहै हैं—

माणुसखित्तस्स बहिं चरमे दीवस्स अद्धयं जाव।
सव्वत्थे वि तिरिच्छा हिमवदतिरिएहिं सारित्था ॥

भावार्थ—मनुष्य क्षेत्रतैं बारैं मानुषोत्तर पर्वततैं परैं अंतका द्वीप जो स्वयप्रभ ताका आधाके उरै बीचिके सर्व द्वीप समुद्रके तिर्यंच हैं ते हैमवत क्षेत्रके तिर्यंचनि सारिखे हैं.

भावार्थ—हैमवतक्षेत्रमें जघन्य भोगभूमि है. सो मानुषोत्तर पर्वततैं परैं असंख्यात द्वीप समुद्र आधा स्वयप्रभ नामा अंतका द्वीपताईं समस्तमैं जघन्य भोगभूमिकी रचना है वहांके तिर्यंचनिकी आयु काय हैमवत क्षेत्रके तिर्यंचनिसारिखी है।

आगैं जलचर जीवनिका ठिकाणा कहै हैं—

लवणोए कालोए अतिमजलहिम्मि जलयरा सति।
सेससमुद्देसु पुणो ण जलयरा सति णियमेण॥१४४॥

भापार्थ–लवणोद समुद्रविषै बहुरि कालोद समुद्रविषै तथा अतका स्वयभूरमण समुद्रविषै जलचर जीव हैं बहुरि अवशेष बीचिके समुद्रनिविषै नियमकरि जलचर जीव नाहीं हैं।

आगें देवनिके ठिकाणे कहै हैं तहा प्रथम भवनवासी व्यतरनिके कहै हैं—

खरभायपकभाए भावणदेवाण होंति भवणाणि।
वितरदेवाण तहा दुह्न पि य तिरियलोए वि॥१४५॥

भापार्थ–खरभाग पकभागविषै भवनवासीनिके भवन है तथा व्यन्तर देवनिके निवास हैं बहुरि इन दोउनिके तिर्यग्लोकविषैं भी निवास है भावार्थ–पहली पृथ्वी रत्न प्रभा एक लाख अस्सी हजार योजनकी मोटी, ताके तीन भाग तामें खरभाग सोलह हजार योजनका, ताविषै असुरकुमार विना नवकुमार भवनवासीनिके भवन है, तथा राक्षसकुल विना सात कुल व्यतरनिके निवास हैं. बहुरि दूसरा पकभाग चौरासी हजार योजनका तामें असुरकुमार भवनवासी तथा राक्षसकुल व्यतर वसै हैं बहुरि तिर्यग्लोक जो मध्यलोक असख्याते द्वीप समुद्र तिनिमें भवनवासीनिके भी भवन हैं बहुरि व्यन्तरनिके भी निवास हैं।

आगें ज्योतिषी तथा कल्पवासी तथा नारकीनिकी वसती कहै हैं—

जोइसियाण विमाणा रज्जूमित्ते वि तिरियलोए वि ।
कप्पसुरा उड्ढाहि य अहलोए होंति णेरइया ॥१४६॥

भावार्थ–ज्योतिषी देवनिके विमान एक राजू प्रमाण तिर्यग्लोकविषै असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, तिनके ऊपरि तिष्ठै है, बहुरि कल्पवासी ऊर्ध्वलोकविषै हैं, बहुरि नारकी अधोलोकविषै हैं ।

आगें जीवनिकी संख्या कहै हैं, तहां तेजवातकायके जीवनिकी संख्या कहै है—

बादरपज्जत्तिजुदा घणआवलिया असंखभागो दु ।
किंचूणलोयमित्ता तेऊ वाऊ जहाकमसो ॥ १४७ ॥

भावार्थ–अग्निकाय वातकायके बादरपर्याप्तसहित जीव हैं ते घन आवलीके असंख्यातवें भाग तथा कुछ घाटि लोकके प्रदेशप्रमाण यथा अनुक्रम जाननें. भावार्थ–अग्निकायके घनआवलीके असंख्यातवें भाग, वातकायके कुछ एक घाटि लोकप्रदेशप्रमाण हैं ।

आगें पृथ्वी आदिकी संख्या कहै है—

पुढवीतोयसरीरा पत्तेया वि य पइट्ठिया इयरा ।
होंति असंखा सेढी पुण्णापुण्णा य तह य तसा १४८

भावार्थ–पृथ्वीकायिक अप्कायिक प्रत्येकवनस्पतिकायिक सप्रतिष्ठित वा अप्रतिष्ठित तथा त्रस ये सारे पर्याप्त अपर्याप्त जीव है ते जुदे जुदे असंख्यात जगतश्रेणीप्रमाण हैं.

वादरलद्धिअपुण्णा असखलोया हवति पत्तेया ।
तह य अपुण्णा सुहुमा पुण्णा वि य सखगुणगुणिया

भावार्थ–प्रत्येक वनस्पति तथा बादर लब्ध्यपर्याप्तक जीव हैं ते असख्यात लोकप्रमाण हैं ऐसैं ही सूक्ष्मअपर्याप्तक असख्यात लोकप्रमाण है बहुरि सूक्ष्मपर्याप्तक जीव हैं ते सख्यातगुणे हैं ।

सिद्धा सति अणता सिद्धाहिंतो अणतगुणगुणिया ।
होंति णिगोदा जीवा भाग अणता अभव्वा य १५०

भावार्थ–सिद्धजीव अनन्ते हैं बहुरि सिद्धनितैं अनन्त गुणें निगोद जीव है बहुरि सिद्धनिके अनन्तवे भाग अभव्य जीव हैं ।

सम्मुच्छिया हु मणुया सेढियसखिज्ज भागमित्ता हु
गब्भजमणुया सव्वे सखिज्जा होंति णियमेण १५१

भावार्थ–सम्मूर्छन मनुष्य हैं ते जगतश्रेणीके असख्यातवें भागमात्र है बहुरि गर्भज मनुष्य हैं ते नियमकरि सख्यात ही हैं ।

आगें सान्तर निरन्तरकू कहै हैं—

देवा वि णारया वि य लद्धियपुण्णा हु सतरा होंति
सम्मुच्छिया वि मणुया सेसा सव्वे णिरतरया ॥१५२॥

भावार्थ–देव तथा नारकी बहुरि लब्ध्यपर्याप्तक बहुरि सम्मू-

छेन मनुष्य एते तौ सान्तर कहिये अन्तरसहित है अवशेष सर्व जीव निरन्तर हैं भावार्थ–पर्यायसूं अन्य पर्याय पावै फेरि वाही पर्याय पावै जेते बीचमें अन्तर रहै ताकू सातर कहिये सो इहा नाना जीव अपेक्षा अन्तर कह्या है जो देव तथा नारकी तथा मनुष्य तथा लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी उत्पत्ति कोई कालमें न होय सो तौ अन्तर कहिये बहुरि अतर न पड़ै सो निरन्तर कहिये. सो वैक्रियकमिश्रकाययोगी जे देव नारकी तिनिका तौ बारह मुहूर्त्तका कह्या है. कोई ही न उपजै तो बारह मुहूर्त्त ताई न उपजै बहुरि सम्मूर्छन मनुष्य कोई ही न होय तौ पल्यके असख्यातवें भाग काल-ताई न होय. ऐसें अन्य अन्यनिमें कह्या है अवशेष सर्व जीव निरन्तर उपजै है।

आगें जीवनिकू सख्याकरि अल्प बहुत कहै हैं—

मणुयादो णेरइया णेरइयादो असंखगुणगुणिया।
सव्वे हवंति देवा पत्तेयवणप्फदी तत्तो॥ १५२॥

भावार्थ–मनुष्यनितै नारकी असख्यात गुणे हैं. नारकीनितैं सर्व देव असख्यात गुणे हैं, देवनितैं प्रत्येक वन-स्पति जीव असंख्यात गुणे हैं।

पंचक्खा चउरक्खा लद्धियपुण्णा तहेव तेयक्खा।
बेयक्खा वि य कमसो विसेससहिदा हु सव्व संखाए

भावार्थ–पचेन्द्रिय चौइन्द्रिय तेइन्द्रिय वेइंद्रिय ये लब्ध्य

पर्याप्तक जीव संख्या करि विशेषाधिक हैं. किछू अधिकक्रू विशेषाधिक कहिये सो ए अनुक्रमतैं बधते २ हैं।

चउरक्खा पचक्खा वेयक्खा तह य जाण तेयक्खा।
एदे पज्जत्तिजुदा अहिया अहिया कमेणेव ॥ १५५॥

भाषार्थ–चौइन्द्रिय पचेन्द्रिय वेइन्द्रिय तैसे ही तेइन्द्रिय ये पर्याप्तिसहित जीव अनुक्रमतैं अधिक अधिक जानहु।

परिवज्जिय सुहुमाणं सेसातिरिक्खाण पुण्णदेहाणं।
इक्को भागो होदि हु संखातीदा अपुण्णाण ॥१५६॥

भाषार्थ–सूक्ष्म जीवनिकू छोडि अवशेष पर्याप्ततिर्यंच हैं तिनके एक भाग तौ पर्याप्त है बहुरि बहुभाग असख्याते अपर्याप्त हैं भावार्थ–बादर जीवनिविषैं पर्याप्त थोरे हैं, अपर्याप्त बहुत हैं।

सुहुमापज्जत्ताणं एगो भागो हवेइ णियमेण।
संखिज्जा खलु भागा तेसिं पज्जत्तिदेहाण ॥१५७॥

भाषार्थ–सूक्ष्मपर्याप्त जीव सख्यात भाग हैं इनिमैं अपर्याप्तक एक भाग हैं. भावार्थ–सूक्ष्म जीवनिमैं पर्याप्त बहुत हैं अपर्याप्त थोर हैं।

संखिज्जगुणा देवा अंतिमपटला दु आणदं जाव।
तत्तो असखगुणिदा सोहम्म जाव पडिपडलं ॥१५८॥

भाषार्थ–देव हैं ते अतिम पटल जो अनुत्तर विमान

तातैं ले अर नीचै आनत स्वर्गका पटलपर्यंत सख्यातगुणे हैं. तापीछै नीचैं सौधर्मपर्यंत असंख्यातगुणे पटलपटलप्रति है।

सत्तमणारयहिंतो असंखगुणिदा हवंति णेरइया।
जावय पढमं णरय बहुदुक्खा होंति हेट्ठा॥१५९॥

भावार्थ—सातवा नरकतैं ले ऊपरि पहला नरकताई जीव असख्यात २ गुणे हैं. बहुरि प्रथम नरकतैं ले नीचैं २ बहुत दुःख हैं।

कप्पसुरा भावणया विंतरदेवा तहेव जोइसिया।
बे होंति असंखगुणा संखगुणा होंति जोइसिया॥

भावार्थ—कल्पवासी देवनितैं भवनवासी देव व्यंतरदेव ए दोय राशि तौ असंख्यात गुणी हैं। बहुरि ज्योतिषी देव व्यंतरनितैं सख्यातगुणे हैं ॥ १६० ॥

आगैं एकेंद्रियादिक जीवनिकी आयु कहै हैं—

पत्तेयाणं आऊ वाससहस्साणि दह हवे परमं।
अंतोमुहुत्तमाऊ साहारणसव्वसुहुमाणं ॥ १६१ ॥

भावार्थ— प्रत्येक वनस्पतिकी उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्षकी है बहुरि साधारणनित्य, इतरनिगोद सूक्ष्म बादर तथा सर्व ही सूक्ष्म पृथ्वी अप तेज वातकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु अंतर्मुहूर्तकी है ॥ १६१ ॥

आगैं बादर जीवनिकी आयु कहै हैं,—

बावीस सत्तसहसा पुढवीतोयाण आउसं होदि।
अग्गीणं तिण्णि दिणा तिण्णि सहस्साणि वाऊणं १६२

भावार्थ–पृथ्वीकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्षकी है अप्कायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्षकी है अग्निकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तीन दिनकी है वायुकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्षकी है ॥ १६२ ॥

आगें बेंन्द्रिय आदिककी आयु कहै हैं,–

वारसवास वियक्खे एगुणवण्णा दिणाणि तेयक्खे ।
चउरक्खे छम्मासा पचक्खे तिण्णि पल्लाणि ॥ १६३ ॥

भावार्थ–बेइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु बारह वर्षकी है तेइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु गुणचास दिनकी है चौइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु छह महीनाकी है. पचेन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु भोगभूमिकी अपेक्षा तीन पल्यकी है ॥

आगें सर्व ही तिर्यंच अर मनुष्यनिकी जघन्य आयु कहै हैं–

सव्वजहण्ण आऊ लद्धियपुण्णाण सव्वजीवाण ।
मज्झिमहीणमुहुत्तं पज्जत्तिजुदाण णिकिट्ठ ॥१६४॥

भावार्थ–लब्ध्यपर्याप्तक सर्व जीवनिकी जघन्य आयु मध्यमहीनमुहूर्त है सो यह क्षुद्रभवमात्र जाननी एक उस्वासके अठारहवें भाग मात्र है. बहुरि जिनकै लब्ध्यपर्याप्ति होय, ऐसे कर्मभूमिके तिर्यंच मनुष्य तिन सर्व ही पर्याप्त जीवनिकी जघन्य आयु भी मध्यहीनमुहूर्त है. सो यह पहलेतैं बडा मध्यअन्तर्मुहूर्त है ।

अब देवनारकीनिकी आयु कहै हैं,—

देवाण णारयाणं सायरसंखा हवंति तेतीसा ।
उक्किट्ठ च जहण्णं वासाणं दस सहस्साणि ॥

भावार्थ–देवनिकी तथा नारकी जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरकी है. बहुरि जघन्य आयु दस हजार वर्ष है भावार्थ–यह सामान्य देवनिकी अपेक्षा कही है विशेष लोक्यसार आदि ग्रथनितें जानणी ॥ १६५ ॥

आगें एकेन्द्रिय आदि जीवनिकी शरीरकी अवगाहना उत्कृष्ट जघन्य दश गाथानिमें कहै हैं,—

अंगुलअसखभागो एयक्खचउक्कदेहपरिमाण ।
जोयणसहस्समहियं पउमं उक्करसयं जाण ॥१६६॥

भावार्थ–एकेन्द्रिय चतुष्क कहिये पृथ्वी अप तेज वायु कायके जीवनिकी अवगाहना जघन्य तथा उत्कृष्ट घन अंगुलके असख्यातवें भाग है. इहा सूक्ष्म तथा बादर पर्याप्तक अपर्याप्तकका शरीर छोटा बडा है. तोऊ घनांगुलके असंख्यातवें भाग ही सामान्यकरि कह्या. विशेष गोम्मटसारतैं जानना. बहुरि अंगुल उत्सेधअंगुल आठ यव प्रमाण लेणी, प्रमाणांगुल न लेणी, बहुरि प्रत्येक वनस्पती कायविषैं उत्कृष्ट अवगाहनायुक्त कमल है ताकी अवगाहना किछू अधिक हजार योजन है ॥ १६६ ॥

बायसजोयण संखो कोसातियं गुब्भिया समुद्दिट्ठा ।

भमरो जोयणमेग सहस्स सम्मुच्छिदो मच्छो ॥१६७॥

भावार्थ-वेइन्द्रियविषै शंख बडा है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन लांबी है तेइंद्रियविषै गोभिका कहिये कानखिजूरा बडा है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोश लांबी है बहुरि चौइंद्रियविषै बडा भ्रमर है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन लांबी है बहुरि पचेंद्रियविषै बडा मच्छ है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन लांबी है. ए जीव अतका स्वयंभूरमण द्वीप तथा समुद्रमें जानने॥ १६७॥

अब नारकीनकी उत्कृष्ट अवगाहना कहै है,—

पंचसयाधणुछेहा सत्तमणरए हवंति णारइया ।
तत्तो उस्सेहेण य अद्धद्धा होंति उवरुवरिं ॥१६८॥

भावार्थ-सातवें नरकविषै नारकी जीवनिका देह पांचसै धनुष ऊंचा है तातै ऊपरि देहकी ऊंचाई आधी आधी है. छट्ठामें दासै पचास धनुष, पांचवामें एकसौ पचीस धनुष, चौथेमें साढावासठि धनुष, तीसरामें सवाइकतीस धनुष, दूसरामें पनरा धनुष आना दश, पहलामें सात धनुष तेरह आना, ऐसैं जानना इनमें पटल गुणचास हैं तिनविषैं न्यारी न्यारी विशेष अवगाहना त्रैलोक्यसारतैं जाननी ॥ १६८ ॥

अब देवनिकी अवगाहना कहै हैं,—

असुराण पणवीसं सेस णवभावणा य दहदंडं ।
तर [illegible] तहा जोइसिया सत्तधणुदेहा ॥ १६९॥

भावार्थ—भवनवासीनिविषै असुरकुमार हैं तिनकी देहकी ऊंचाई पचीस धनुष, बाकी नवनिकी दश धनुष, अर व्यंतरनिकी देहकी ऊंचाई दश धनुष है, अर ज्योतिषी देवनिकी देहकी ऊंचाई सात धनुष है ॥ १६९ ॥

अब स्वर्गके देवनिकी कहै है,—

दुगदुगचदुचदुदुगदुगकप्पसुराण सरीरपरिमाणं ।
सत्तछहपंचहत्था चउरा अद्धद्ध हीणा य ॥ १७० ॥
हिट्ठिममज्झिमउवरिमगेवज्जे तह विमाणचउदसए ।
अद्धजुदा बे हत्था हीणं अद्धद्धयं उवरिं ॥ १७१ ॥

भावार्थ—सौधर्म ईशान युगलके देवनिका देह सात हाथ ऊचा है. सानत्कुमार माहेन्द्र युगलके देवनिका देह छह हाथ ऊचा है. ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ठ इनि च्यारि स्वर्गके देवनिका देह पांच हाथ ऊचा है शुक्र महाशुक्र सतार सहस्रार इनि च्यारि स्वर्गके देवनिका देह च्यारि हाथ ऊचा है आनत प्राणत युगलके देवनिका देह साढा तीन हाथ ऊचा है आरण अच्युतविषै देवनिका देह तीन हाथ ऊचा है। अधोग्रैवेयकविषै देवनिका देह अढाई हाथ ऊचा है मध्यग्रैवेयकविषै देवनिका देह दोय हाथ ऊचा है। ऊपरिके ग्रैवेयकविषै देवनिका देह ड्योढ हाथ ऊचा है. नव अनुदिस पंच अनुत्तरविषै देवनिका देह एक हाथ ऊचा है ॥१७०–१७१॥

आगें भरत ऐरावत क्षेत्रविषै कालकी अपेक्षातैं मनुष्य-निका शरीरकी उचाई कहै है-

अवसप्पिणिए पढमे काले मणुया तिकोसउच्छेहा ।
छट्ठस्सवि अवसाणे हत्थपमाणा विवत्था य ॥१७२॥

भावार्थ-अवसर्पिणीका पहला कालविषै आदिमें मनुष्यनिका देह तीन कोश ऊचा है बहुरि छठाकालका अतमें मनुष्यनिका देह एक हाथ ऊचा है बहुरि छठा कालका जीव वस्त्रादिकरि रहित होय हैं ॥ १७२ ॥

आगें एकेन्द्रिय जीवनिका जघन्य देह कहै हैं,—

सव्वजहण्णो देहो लद्धियपुण्णाण सव्वजीवाणं ।
अंगुलअसंखभागो अणेयभेओ हवे सो वि ॥१७३॥

भावार्थ-लब्ध्यपर्याप्तक सर्व जीवनिका देह घनअगुलके असख्यातवें भाग है सो यह सर्व जघन्य है. सो यामें भी अनेक भेद हैं भावार्थ-एकेन्द्रिय जीवनिका जघन्य देह भी छोटा वडा है सो घनागुलके असख्यातवें भागमें भी अनेक भेद है सो गोम्मटसारविषै अवगाहनाके चौसठि भेदनिका वर्णन है तहातैं जानना ॥ १७३ ॥

आगें वेइन्द्रिय आदिकी जघन्य अवगाहना कहै हैं,—

वितिचउपचक्खाण जहण्णदेहो हवेइ पुण्णाण ।
अगुलअसखभाओ सखगुणो सो वि उवरुवरि १७४

भापार्थ—वेइंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय पंचेंद्रिय पर्याप्त जीवनिका जघन्य देह घन अंगुलके असंख्यातवें भाग है सो भी ऊपरि ऊपरि संख्यात गुणे है. भावार्थ—वेइंद्रियका देहतें सख्यातगुणा तेइंद्रियका देह है तेइंद्रियतें सख्यातगुणा चौइंद्रियका देह है तातें संख्यात गुणा पचेंद्रियका है ॥ १७४ ॥

आगें जघन्य अवगाहनाका धारक वेइंद्रिय आदि जीव कौन कौन हैं सो कहै है—

आणुधरीयं कुंथं मच्छाकाणा य सालिसिच्छो य।
पज्जत्ताण तसाणं जहण्णदेहो विणिद्दिट्ठो ॥१७५॥

भापार्थ—वेइंद्रियमें तौ अणुद्धरी जीव, तेइंद्रियमें कुंथु जीव, चौइंद्रियमें काणमक्षिका, पंचेंद्रियमें शालिसिक्थक नामा मच्छ इनि त्रस पर्याप्त जीवनिकै जघन्य देह कह्या है॥ १७५॥

आगें जीवका लोक प्रमाण अर देहप्रमाणपणा कहै है।

लोयपमाणो जीवो देहपमाणो वि अत्थिदे खेत्ते।
ओगाहणसत्तीदो सहरणाविसप्पधम्मादो ॥१७६॥

भापार्थ—जीव है सो लोक प्रमाण है वहुरि देहप्रमाण भी है जातें सकोच विस्तार धर्म यामें पाइये है ऐसी अवगाहनाकी शक्ति है. भावार्थ—लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं. सो जीवके भी एते ही प्रदेश हैं केवल समुद्घात करै तिस काल लोकपूरण होय. बहुरि संकोचविस्तारशक्ति यामें है

तातैं जैसी देह पावै तैसाही प्रमाण रहै है अर समुद्घात करै तब देहतै भी प्रदेश नीसरै हैं ॥ १७६ ॥

आगें कोई अन्यमती जीवकू सर्वथा सर्वगत ही कहै हैं तिनिका निषेध करै हैं,—

सव्वगओ जदि जीवो सव्वत्थ वि दुक्खसुक्खसंपत्ती
जाइज्ज ण सा दिट्ठी णियतणुमाणो तदो जीवो ॥

भावार्थ—जो जीव सर्वगत ही होय तौ सर्व क्षेत्रसंबंधी सुखदुःखकी प्राप्ति याकै भई सो तौ नाहीं देखिये है अपने शरीरमें ही सुखदुःखकी प्राप्ति देखिये है तातैं अपने शरीरप्रमाण ही जीव है ॥ १७७ ॥

जीवो णाणसहावो जह अग्गी उह्णओ सहावेण।
अत्यंतरभूदेण हि णाणेण ण सो हवे णाणी ॥१७८॥

भावार्थ—जैसैं अग्नि स्वभावकरि ही उष्ण है तैसैं जीव है सो ज्ञानस्वभाव है तातैं अर्थान्तरभूत कहिये आपतै प्रदेशरूप जुदा ज्ञानकरि ज्ञानी नाहीं है भावार्थ—नैयायिक आदि हैं ते जीवकै अर ज्ञानकै प्रदेशभेद मानिकरि कहै हैं जो आत्मातैं ज्ञान भिन्न है सो समवायतैं तथा संसर्गतैं एक भया है तातै ज्ञानी कहिये है जैसैं धनतैं धनी कहिये तैसैं सो यह मानना असत्य है आत्माकै अर ज्ञानकै अग्नि अर उष्णताकै जैसैं अभेदभाव है तैसैं तादात्म्यभाव है ॥ १७८ ॥

आगें भिन्नमाननेमें दूषण दिखावै हैं,—

जदि जीवादो भिण्णं सव्वपयारेण हवदि तं णाणं ।
गुणगुणिभावो य तदा दूरेण प्पणस्सदे दुह्णं ॥१७९॥

भाषार्थ— जो जीवतैं ज्ञान सर्वथा भिन्न ही मानिये तौ तिन दोऊनिकै गुणगुणिभाव दूरतैं ही नष्ट होय. भावार्थ—यह जीव द्रव्य है यह याका ज्ञान गुण है. ऐसा भाव न ठहरै ।

आगैं कोई पूछै जो गुण अर गुणीका भेद विना दोय नाम कैसै कहिये ताका समाधान करै हैं—

जीवस्स वि णाणस्स वि गुणगुणिभावेण कीरए भेओ ।
जं जाणदि तं णाणं एवं भेओ कहं होदि ॥ १८० ॥

भाषार्थ—जीवकै अर ज्ञानकै गुणगुणीभावकरि भेद कथंचित् कीजिये है. बहुरि जो जाणै सो ही आत्माका ज्ञान है ऐसे भेद कैसें होय. भावार्थ—सर्वथा भेद होय तौ जाणै सो ज्ञान है ऐसा अभेद कैसै कहिये तातें कथंचित् गुणगुणीभाव करि भेद कहिये है, प्रदेशभेद नाहीं ।

ऐसैं केई अन्यमती गुणगुणीमैं सर्वथा भेद मानि जीवकै अर ज्ञानकै सर्वथा अर्थान्तरभेद मानै हैं तिनिका मत निषेध्या ॥

आगैं चार्वाकमती ज्ञानकूं पृथ्वी आदिका विकार मानै है ताकू निषेधै हैं—

णाणं भूयवियारं जो मण्णदि सो वि भूदगहिदव्वो ।

जीवेण विणा णाण किं केणवि दीसए कत्य ॥१८१॥

भावार्थ-जो चार्वाकमती ज्ञानकूं पृथ्वी आदि जे पंच भूत तिनिका विकार मानै है सो चार्वाक, भूत कहिये पिशाच ताकरि गृह्या है गहिला है जातैं विना ज्ञानकें जीव पदार्थ कोईकरि कहू देखिये है ? कहू भी नाहीं देखिये है।

आगें याकूं दूषण बतावें हैं ॥ १८१ ॥

सच्चेयणपच्चक्खं जो जीवं णेय मण्णदे मूढो ।
सो जीवं ण मुणंतो जीवाभावं कहं कुणदि ॥१८२॥

भावार्थ-यह जीव सत्रूप अर चैतन्यरूप स्वसंवेदन प्रत्यक्ष प्रमाणकरि प्रसिद्ध है, ताहि चार्वाक नाहीं मानै है सो मूर्ख है जो जीवकूं नाहीं जाणै है नाहीं मानै है तौ जीवका अभाव कैसैं करै है, भावार्थ-जो जीवकूं जानै ही नाहीं सो अभाव भी न कहि सकै अभावका कहनेवाला भी तौ जीव ही है जातैं सद्भावविना अभाव कह्या न जाय १८२

आगें याहीकूं युक्तिकरि जीवका सद्भाव दिखावै हैं—

जदि ण य हवेदि जीओ तो को वेदेदि सुक्खदुक्खाणि
इंदियविसया सव्वे को वा जाणदि विसेसेण ॥१८३॥

भावार्थ-जो जीव नाहीं होय तो अपने सुखदुःखकूं कौन जानै तथा इन्द्रियनिके स्पर्श आदि विषय हैं तिनि सर्वनिकूं विशेषकरि कौन जानै भावार्थ-चार्वाक प्रत्यक्ष प्र

प्राण मानै है. सो अपने सुखदुःखकूं तथा इंद्रियनिके विषयनिकूं जानै सो प्रत्यक्ष, सो जीव विना प्रत्यक्षप्रमाण कौनकैं होय ? तातैं जीवका सद्भाव अवश्य सिद्ध होय है ॥१८३॥

आगें आत्माका सद्भाव जैसें वणै तैसें कहै हैं—

सकप्पमओ जीवो सुहदुक्खमयं हवेइ संकप्पो ।
तं चिय वेयदि जीवो देहे मिलिदो वि सव्वत्थ ॥

भावार्थ—जीव है सो सकल्पमयी है बहुरि संकल्प है सो दुःखसुखमय है तिस सुखदुःखमयी सकल्पकूं जाणैं सो जीव है जो देहविषै सर्वत्र मिलि रह्या है तोऊ जाननेवाला जीव है ॥ १८४ ॥

आगें जीव देहसूं मिल्या हूआ सर्व कार्यनिकूं करै है यह कहै हैं—

देहमिलिदो वि जीवो सव्वकम्माणि कुव्वदे जह्मा ।
तह्मा पयट्टमाणो एयत्त बुज्झदे दोह्लं ॥ १८५ ॥

भावार्थ—जातैं जीव है सो देहतैं मिल्या हूवा ही सर्व कर्म नोकर्मरूप सर्व कार्यनिकूं करै है तातैं तिनि कार्यनिविषै प्रवर्त्तता सता जो लोक ताकूं देहकै अर जीवकै एकपणा भासै है. भावार्थ—लोककूं देह अर जीव न्यारे तौ दीखै नाहीं दोऊ मिलेहूये दीखै हैं संयोगतें ही कार्यनिकी प्रवृत्ति दीखै है तातैं दोऊनिकौ एक ही मानै है ॥ १८५ ॥

आगें जीवकू देहतें भिन्न जाननेकू लक्षण दिखावै हैं—

देहमिलिदो वि पिच्छदि देहमिलिदो वि णिसुण्णदे सद्द ।
देहमिलिदो वि भुजदि देहमिलिदो वि गच्छेई ॥

भावार्थ—जीव है सो देहसूं मिल्या ही नेत्रनिकरि पदार्थनिकू देखै है, बहुरि देहसू मिल्या ही काननिकरि शब्दनिकों सुणै है, बहुरि देहसू मिल्या ही मुखतें खाय है, जीभतें स्वाद ले है बहुरि देहतें मिल्या ही पगनिकरी गमन करै है भावार्थ—देहमें जीव न होय तो जडरूप केवल देहहीकै देखना स्वाद लेना सुनना गमन करना ए क्रिया न होंय तातैं जानिये है देहमें न्यारा जीव है, सो ही ये क्रिया करै है ॥ १८६ ॥

आगें ऐसें जीवकू मिले ही मानता लोक भेदकू न जानै है,—

राओ ह भिच्चो ह सिट्ठी ह चेव दुब्बलो बलिओ ।
इदि एयत्ताविट्ठो दोह्ण भेय ण बुज्झेदि ॥ १८७ ॥

भावार्थ—देहकै अर जीवकै एकपणाकी मानिकरि सहित जो लोक है सो ऐसें मानै है जो मैं राजा हू मैं चाकर हू मै श्रेष्ठी हू मैं दुर्बल हू मै दरिद्र हू निवल हू बलवान हूं ऐसें मानता सता देह जीव दोऊनिकै भेद नाहीं जानै है१८७

आगें जीवकै कर्तापणा आदिकू च्यारि गाथानिकरि कहै हैं—

जीवो हवेइ कत्ता सव्व कम्माणि कुव्वदे जह्मा ।
कालाइलद्धिजुत्तो संसारं कुणदि मोक्खं च ॥१८८॥

भावार्थ–जातैं यह जीव सर्व जे कर्म नोकर्म तिनिकू करता सता आपका कर्त्तव्य मानै है तातैं कर्त्ता भी है सो आपकै संसारकू करै है. बहुरि काल आदि लब्धिकरि युक्त हुवा सता आपकै मोक्षकू भी आप ही करै है. भावार्थ–कोई जानैगा कि या जीवकै सुखदुःख आदि कार्यनिकू ईश्वर आदि अन्य करै है सो ऐसे नाही है आप ही कर्त्ता है. सर्व कार्यनिकू आप ही करै है. संसार भी आपही करै है काललब्धि आवै तब मोक्ष भी आप ही करै है सर्वकार्यनिप्रति द्रव्य क्षेत्र-काल भावरूप सामग्री निमित्त है ही ॥ १८८ ॥

जीवो वि हवइ भुत्ता कम्मफलं सो वि भुंजदे जह्मा
कम्मविवायं विविहं सो चिय भुंजेदि संसारे १८९॥

भावार्थ–जातैं जीव है सो कर्मका फल या संसारमें भोगवै है तातै भोक्ता भी यह ही है बहुरि सो कर्मका विपाक संसारविषै सुखदुःखरूप अनेक प्रकार है तिनकू भी भोगै है ॥ १८९ ॥

जीवो वि हवइ पाव अइतिव्वकसायपरिणदो णिच्चं।
जीवो हवेइ पुण्णं उवसमभावेण सजुत्तो ॥ १९० ॥

भावार्थ–यह जीव अति तीव्र कषायकरि संयुक्त होय-

तब यह ही जीव पापरूप होय है. बहुरि उपशम भाव जो मंद कषाय ताकरि संयुक्त होय तब यह ही जीव पुण्यरूप होय है. भावार्थ–क्रोध मान माया लोभका अतितीव्रपणातैं तौ पाप परिणाम होय है अर इनिका मंदपणातैं पुण्यपरिणाम होय है तिनि परिणामनिसहित पुण्यजीव पापजीव कहिये है एक ही जीव दोऊ परिणामयुक्त हुवा है पुण्यजीव पापजीव कहिये है सो सिद्धान्तकी अपेक्षा ऐसें ही है. जातैं सम्यक्त्व सहित जीव होय ताकै तौ तीव्र कषायनिकी जड़ कटनेतैं पुण्य जीव कहिये बहुरि मिथ्यादृष्टि जीवकै भेदज्ञानविना कषायनिकी जड़ कटै नाहीं तातैं बाह्यतैं कदाचित् उपशम परिणाम भी दीखै तौ ताकूं पापजीव ही कहिये ऐसा जानना ॥

रयणत्तयसजुत्तो जीवो वि हवेइ उत्तमं तित्थं ।
संसार तरइ जदो रयणत्तयदिव्वणावाए ॥ १९१ ॥

भावार्थ–जातैं यह जीव रत्नत्रयरूप सुंदर नावकरि संसारतैं तिरै है पार होय है तातैं यह ही जीव रत्नत्रयकरि संयुक्त भया संता उत्तम तीर्थ है, भावार्थ–तीर्थ नाम जो तिरै तथा जाकरि तिरिये सो है सो यह जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तेई भये रत्नत्रय, सोई भई नाव, ताकरि तरै है तथा अन्यकूं तिरनेकौ निमित्त होय है तातैं यह जीव ही तीर्थ है ॥

आगै अन्यप्रकार जीवका भेद कहै हैं––

जीवा हवंति तिविहा बहिरप्पा तह य अंतरप्पा य ।

परमप्पा वि य दुविहा अरहंता तह य सिद्धा य ॥

भावार्थ-जीव बहिरात्मा अन्तरात्मा परमात्मा ऐसैं तीन प्रकार हैं बहुरि परमात्मा भी अरहन्त तथा सिद्ध ऐसैं दोय प्रकार हैं ॥ १९२ ॥

अब इनिका स्वरूप कहै हैं तहां बहिरात्मा कैसा है सो कहै हैं—

मिच्छत्तपरिणदप्पा तिव्वकसाएण सुट्ठु आविट्ठो ।
जीवं देहं एक्कं मण्णंतो होदि बहिरप्पा ॥ १९३ ॥

भावार्थ-जो जीव मिथ्यात्व कर्मका उदयरूप परिणम्या होय बहुरि तीव्र कषाय अनन्तानुबन्धीकरि सुष्ठु कहिये अतिशयकरि युक्त होय इस निमित्तैं जीवकूं अर देहकूं एक मानता होय सो जीव बहिरात्मा कहिये भावार्थ-बाह्य पर द्रव्यको आत्मा मानै सो बहिरात्मा है. सो यह मानना मिथ्यात्व अनन्तानुबंधी कषायके उदयकरि होय है तातैं भेदज्ञानकरि रहित हूवा संता देहकू आदिदेकरि समस्त परद्रव्यविषै अहंकार ममकारकरि युक्त हूवा सन्ता बहिरात्मा कहावै है ॥ १९३ ॥

आगैं अंतरात्माका स्वरूप तीन गाथानिकरि कहै हैं—

जे जिणवयणे कुसलो भेदं जाणंति जीवदेहाणं ।
णिज्जियदुट्ठट्ठमया अंतरअप्पा य ते तिविहा

भाषार्थ-जे जीव जिनवचनविषै प्रवीण हैं बहुरि जीवकै अर देहकै भेद जाणैं हैं बहुरि जीते हैं आठ मद जिनने ते अंतरात्मा हैं ते उत्कृष्ट मध्यम जघन्य भेदकरि तीन प्रकार हैं। भावार्थ-जो जीव जिनवानीका भले प्रकार अभ्यासकरि जीव अर देहका स्वरूप भिन्न भिन्न जानै ते अंतरात्मा हैं तिनिकै जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य ये आठ मदके कारण हैं तिनिविषै अहंकार ममकार नाहीं उपजै है जातैं ये परद्रव्यके संयोगजनित हैं तातैं इनिविषै गर्व नाहीं करै हैं ते तीन प्रकार हैं ॥ १९४ ॥

अब इनि तीन प्रकारविषै उत्कृष्टकूं कहै हैं—

पंचमहव्वयजुत्ता धम्मे सुक्के वि संठिया णिच्चं ।
णिज्जियसयलपमाया उक्किट्ठा अंतरा होंति ॥१९५॥

भाषार्थ-जे जीव पांच महाव्रतकरि संयुक्त होंय बहुरि धर्म्यध्यान शुक्लध्यानविषै नित्यही तिष्ठे होंय बहुरि जीते हैं सकल निद्रा आदि प्रमाद जिनिनें ते उत्कृष्ट अन्तरात्मा हैं।

अब मध्यम अंतरात्माकूं कहै हैं—

सावयगुणेहिं जुत्ता पमत्तविरदा य मज्झिमा होंति।
जिणवयणे अणुरत्ता उवसमसीला महासत्ता ॥

भाषार्थ-जे जीव श्रावकके व्रतनिकरि संयुक्त होंय बहुरि प्रमत्त गुणस्थानवर्त्ती जे मुनि होंय ते मध्यम अन्तरा-

रमा हैं. कैसे हैं ते, जिनवरवचनविषै अनुरक्त हैं लीन हैं. आज्ञा सिवाय प्रवर्त्तन न करैं बहुरि उपशमभाव कहिये मन्द कषाय तिसरूप है स्वभाव जिनिका, बहुरि महापराक्रमी है परीषहादिकके सहनेमें दृढ हैं उपसर्ग आये प्रतिज्ञातैं टलैं नाहीं ऐसे हैं ॥ १९६ ॥

अब जघन्य अतरात्माकू कहै हैं—

अविरयसम्मादिट्ठी होंति जहण्णा जिणंदपयभत्ता।
अप्पाणं णिंदंता गुणगहणे सुट्ठुअणुरत्ता ॥१९७॥

भाषार्थ—जे जीव अविरत सम्यग्दृष्टी हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन तौ जिनके पाइये है अर चारित्रमोहके उदयकरि व्रत धारि सकें नाहीं ऐसे जघन्य अतरात्मा हैं ते कैसे हैं ? जिनेन्द्रके चरननिके भक्त हैं, जिनेन्द्र, तिनकी वाणी, तथा तिनिके अनुसार निर्ग्रन्थ गुरु तिनिकी भक्तिविषै तत्पर हैं. बहुरि अपने आत्माकू निरन्तर निंदते रहै है जातैं चारित्र मोहके उदयतें व्रत धारे जाय नाहीं, अर तिनकी भावना निरन्तर रहै तातैं अपने विभाव परिणामनिकी निन्दा करते ही रहै हैं बहुरि गुणनिके ग्रहणविषै भले प्रकार अनुरागी है जातैं जिनिमें सम्यग्दर्शन आदि गुण देखैं तिनितैं अत्यन्त अनुरागरूप प्रवर्तें है गुणनितैं अपना अर परका हित जान्या है, तातैं गुणनितैं अनुराग ही होय है. ऐसैं तीन प्रकार अन्तरात्मा कह्या सो गुणस्थाननिकी अपेक्षातैं जानना। भावार्थ—चौथा गुणस्थानवर्ती तौ जघन्य

छठा गुणस्थानवर्ती मध्यम अतरात्मा अर सातवां गुणस्थानतैं लगाय बारहमां गुणस्थानताई उत्कृष्ट अतरात्मा जानना ॥ १९७ ॥

अब परमात्माका स्वरूप कहै हैं,—

ससरीरा अरहंता केवलणाणेण मुणियसयलत्था ।
णाणसरीरा सिद्धा सव्वुत्तम सुक्खसपत्ता ॥ १९८ ॥

भाषार्थ—जे शरीरसहित ते अरहत हैं। कैसे हैं ? केवलज्ञानकरि जाने है सकलपदार्थ जिनूँ ते परमात्मा हैं बहुरि शरीरकरि रहित है ज्ञान ही है शरीर जिनकैं, ते सिद्ध हैं कैसे हैं ? सर्व उत्तम सुखकू प्राप्त भये हैं ते शरीररहित परमात्मा हैं. भावार्थ—तेरहमा चौदहमा गुणस्थानवर्ती अरहत शरीरसहित परमात्मा हैं अर सिद्ध परमेष्ठी शरीररहित परमात्मा हैं।

अब परा शब्दका अर्थकू कहै हैं,—

णिस्सेसकम्मणासे अप्पसहावेण जा समुप्पत्ती ।
कम्मजभावखए वि य सा वि य पत्ती परा होदि ॥१९९॥

भाषार्थ—जो समस्त कर्मका नाश होतेसतें अपने स्वभावकरि उपजै सो परा कहिये बहुरि कर्मतें उपजे जे औदयिक आदि भाव तिनका नाश होतें उपजै सो भी परा कहिये भावार्थ—परमात्मा शब्दका अर्थ ऐसा है जो परा कहिये उत्कृष्ट मा कहिये लक्ष्मी जाकैं होय ऐसा आत्माकू प-

रमात्मा कहिये है, सो समस्त कर्म्मनिका नाशकरि स्वभावरूप लक्ष्मीकू प्राप्त भये ऐसे सिद्ध, ते परमात्मा है. बहुरि घातिकर्मनिका नाशकरि अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीकू प्राप्त भये ऐसे अरहंत ते भी परमात्मा हैं, बहुरि ते ही औदयिक आदि भावनिका नाश करि भी परमात्मा भये कहिये।

आगें कोई जीवनिकू सर्वथा शुद्ध ही कहै हैं तिनके मतकू निषेधै है,—

जइ पुण सुद्धसहावा सव्वे जीवा अणाइकाले वि।
तो तवचरणविहाणं सव्वेसिं णिप्फलं होदि ॥ २०० ॥

भावार्थ—जो सर्व जीव अनादि कालविषै भी शुद्ध स्वभाव हैं तो सर्वहीकै तपश्चरणविधान है सो निष्फल होय है।

ता किह गिह्नदि देहं णाणाकम्माणि ता कहं कुडइ।
सुहिदा वि य दुहिदा वि य णाणारूवा कहं होंति २०१

भावार्थ—जो जीव सर्वथा शुद्ध है तो देहकू कैसैं ग्रहण करै है ? बहुरि नाना प्रकारके कर्मनिकू कैसैं करै है ? बहुरि कोई सुखी है कोई दुःखी है ऐसैं नानारूप कैसे होय है ? तातैं सर्वथा शुद्ध नाहीं है।

आगैं अशुद्धता शुद्धताका कारण कहै है,—

सव्वे कम्मणिबद्धा संसरमाणा अणाइकालह्मि।
पच्छा तोडिय बंधं सुद्धा सिद्धा धुवा होंति ॥ २०२

भावार्थ–जीव हैं ते सर्व ही अनादिकालतैं कर्मकरि बंधे हुये हैं तातैं संसारविषै भ्रमण करै है पीछैं कर्मनिके बंधनिकूं तोडि सिद्ध होय हैं, तब शुद्ध हैं अर निश्चल होय हैं।

आगैं जिस बंधकरि जीव बंधे हैं तिस बंधका स्वरूप कहैं हैं,—

जो अण्णोण्णपवेसो जीवपएसाण कम्मखंधाणं ।
सव्वबंधाण विलओ सो बंधो होदि जीवस्स ॥२०३॥

भावार्थ–जो जीवनिके प्रदेशनिका अर कर्मनिके बंधनिका परस्पर प्रवेश होना एक क्षेत्ररूप सम्बन्ध होना सो जीवकैं प्रदेशबन्ध है, सो यह ही प्रकृति स्थिति अनुभागरूप जे सर्व बंध तिनिका भी लय कहिये एकरूप होना है।

आगें सर्व द्रव्यनिविषैं जीव द्रव्य ही उत्तम परम तत्त्व है ऐसो कहैं हैं,—

उत्तमगुणाण धामं सव्वदव्वाण उत्तम दव्व ।
तच्चाण परमतच्चं जीवं जाणेहि णिच्छयदो ॥२०४॥

भावार्थ–जीव द्रव्य है सो उत्तम गुणनिका धाम है ज्ञान आदि उत्तम गुण याहीमें हैं बहुरि सर्व द्रव्यनिमें यह ही द्रव्य प्रधान है सर्व द्रव्यनिकूं जीव ही प्रकासै है बहुरि सर्व तत्त्वनिमें परम तत्त्व जीव ही है, अनन्तज्ञान सुख आदिका भोक्ता यह ही है ऐसैं हे भव्य ! तू निश्चयतैं जाणि।

आगें जीवहीकै उत्तम तत्त्वपणा कैसें है सो कहै हैं,—

अंतरतच्च जीवो बाहिरतच्चं हवंति सेसाणि ।
णाणविहीणं दव्वं हियाहिय णेय जाणादि ॥२०५॥

भावार्थ—जीव है सो तो अन्तरतत्त्व है बहुरि बाकी-के सर्व द्रव्य है ते बाह्यतत्त्व है. ते ज्ञानकरि रहित है सो जो ज्ञानकरि रहित है सो द्रव्य हेय उपादेय वस्तुकूं कैसें जानैं ? भावार्थ—जीवतत्त्वविना सर्व शून्य है तातैं सर्वका जाननेवाला तथा हेय उपादेयका जाननेवाला जीव ही परम तत्त्व है ॥ २०५ ॥

आगें जीव द्रव्यका स्वरूप कहकरि अब पुद्गल द्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

सव्वो लोयायासो पुग्गलदव्वेहिं सव्वदो भरिदो ।
सुहमेहि बायरेहिं य णाणाविहसत्तिजुत्तेहिं ॥२०६॥

भावार्थ—सर्व लोकाकाश है सो सूक्ष्म बादर जे पुद्गल द्रव्य तिनकरि सर्व प्रदेशनिविषैं भरया है. कैसे है पुद्गल द्रव्य ? नाना शक्तिकरि सहित हैं. भावार्थ—शरीर आदि अनेकप्रकार परिणमन शक्तिकरि युक्त जे सूक्ष्म बादर पुद्गल तिनिकरि सर्वलोकाकाश भरया है ॥ २०६ ॥

जे इंदिएहिं गिज्झं रूवरसगंधफासपरिणामं ।
तं चिय पुग्गलदव्वं अणंतगुणं जीवरासीदो ॥

भावार्थ-जो रूप रस गन्ध स्पर्श परिणाम स्वरूपकरि इन्द्रियनिके ग्रहण करने योग्य हैं ते सर्व पुद्गल द्रव्य हैं ते सख्याकरि जीवराशितैं अनन्तगुणे द्रव्य हैं ॥ २०७ ॥

अब पुद्गल द्रव्यके जीवका उपकारीपणाकू कहै हैं,–

जीवस्स वहुपयार उवयार कुणदि पुग्गल दव्वं ।
देहं च इंदियाणि य वाणी उस्सासणिस्सासं ।२०८।

भावार्थ-पुद्गल द्रव्य है सो जीवके बहुत प्रकार उपकार करै है देह करै है, इन्द्रिय करै है, बहुरि वचन करै है, उस्वास निस्वास करै है भावार्थ-ससारी जीवके देहादिक पुद्गल द्रव्यकरि रचित हैं इनकरि जीवका जीवतव्य है यह उपकार है ॥ २०८ ॥

अण्णं पि एवमाई उवयारं कुणदि जाव ससार ।
मोह अणाणमय पि य परिणामं कुणइ जीवस्स ॥

भावार्थ-पुद्गल द्रव्य है सो जीवके पूर्वोक्तकू आदिकरि अन्य भी उपकार करै है जेतैं या जीवकै ससार है तेतैं ऐसा ही परिणाम करै है मोहपरिणाम, पर द्रव्यनिविं ममत्व परिणाम, तथा अज्ञानमयी परिणाम, ऐसैं सुख दु.ख जीवित मरण आदि अनेक प्रकार करै है यहा उपकार शब्दका अर्थ किछू परिणाम विशेष करै सो सर्व ही लेणा॥ २०९ ॥

आगें जीव भी जीवकू उपकार करै है, ऐसा कहै हैं ।

जीवा वि दु जीवाण उवयारं कुणइ सव्वपच्चक्खं ।
तत्थ वि पहाणहेओ पुण्णं पावं च णियमेण ॥२१०॥

भावार्थ—जीव हैं ते भी जीवनिके परस्पर उपकार करैं हैं सो यह सर्वके प्रत्यक्ष ही है सिरदार चाकरके, चाकर सिरदारके, आचार्य शिष्यके, शिष्य आचार्यके, पितामाता पुत्रके, पुत्र पितामाताके, मित्र मित्रके, स्त्री भरतारके इत्यादि प्रत्यक्ष देखिये है. सो तहां परस्पर उपकारकेविषैं पुण्यपापकर्म्म नियमकरि प्रधान कारण है ॥ २१० ॥

आगें पुद्गलकैं बडी शक्ति है ऐसा कहै हैं,—

का वि अपुव्वा दीसदि पुग्गलदव्वस्स एरिसी सत्ती ।
केवलणाणसहाओ विणासिदो जाइ जीवस्स ॥२११॥

भावार्थ—पुद्गल द्रव्यकी कोई ऐसी अपूर्व शक्ति देखिये है जो जीवका केवलज्ञानस्वभाव है सो भी जिस शक्तिकरि विनश्या जाय है । भावार्थ—अनन्त शक्ति जीवकी है तामें केवलज्ञानशक्ति ऐसी है कि जाकी व्यक्ति (प्रकाश) होय तव सर्व पदार्थनिकूं एकै काल जानै । ऐसी व्यक्तिकूं पुद्गल नष्ट करै है, न होने दे है, सो यह अपूर्व शक्ति है । ऐसैं पुद्गलद्रव्यका निरूपण किया ।

अब धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

धम्ममधम्मं दव्वं गमणट्ठाणाण कारणं कमसो ।

जीवाण पुग्गलाणं विण्ण वि लोगप्पमाणाणि २१२

भावार्थ–जीव अर पुद्गल इनि दोऊ द्रव्यनिकूं गमन अवस्थानका सहकारी अनुक्रमतैं कारण हैं, ते धर्म अर अधर्म द्रव्य है। ते दोऊ ही लोकाकाश परिमाणप्रदेशकूं धरैं हैं। भावार्थ–जीव पुद्गलकूं गमनसहकारी कारण तो धर्मद्रव्य है अर स्थितिसहकारी कारण अधर्मद्रव्य है। ए दोऊ लोकाकाशप्रमाण हैं।

आगैं आकाशद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

सयलाणं दव्वाणं ज दादुं सक्कदे हि अवगासं।
त आयासं दुविहं लोयालोयाण भेयेण॥ २१३॥

भावार्थ–जो समस्त द्रव्यनिकौं अवकाश देनेकूं समर्थ है सो आकाश द्रव्य है। सो लोक अलोकके भेदकरि दोय प्रकार है। भावार्थ–जामैं सर्व द्रव्य वसैं ऐसैं अवगाहनगुणकूं धरै है सो यह आकाश द्रव्य है। सो जामैं पांच द्रव्य वसै हैं सो तौ लोकाकाश है अर जामैं अन्य द्रव्य नाहीं सो अलोकाकाश है, ऐसैं दोय भेद हैं।

आगैं आकाशविषैं सर्व द्रव्यनिकूं अवगाहन देनेकी शक्ति है तैसी अवकाश देनेकी शक्ति सर्व ही द्रव्यनिमैं, है ऐसैं कहै हैं,—

सव्वाणं दव्वाणं अवगाहणसत्ति अत्थि परमत्थं।
जह भसमपाणियाणं जीवपएसाण जाण बहुआण॥

भापार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै परस्पर अवगाहना देनेकी शक्ति है। यह निश्चयतें जाणहु। जैसें भस्मकै अर जलकै अवगाहन शक्ति है तैसें जीवके असख्यात प्रदेशनिकै जानूं। भावार्थ—जैसें जलकू पात्रविषै भरि तामें भस्म डारिये सो समावै। बहुरि तामें मिश्री डारिये सो भी समावै। बहुरि तामें सुई चोपिये सो भी समावै तैसें अवगाहनशक्ति जाननी. इहां कोई पूछै कि सर्व ही द्रव्यनिमें अवगाहन शक्ति है तो आकाशका असाधारण गुण कैसें है? ताका समाधान—जो परस्पर तो अवगाह सर्व ही देहै तथापि आकाशद्रव्य सर्वतैं बडा है। तातैं यामें सर्व ही समावै यह असाधारणता है।

जदि ण हवदि सा सत्ती सहावभूदा हि सव्वदव्वाणं
एक्केकास पएसे कह ता सव्वाणि वट्टंति ॥ २१५ ॥

भापार्थ—जो सर्व द्रव्यनिकै स्वभावभूत अवगाहनशक्ति न होय तो एक एक आकाशके प्रदेशविषै सर्व द्रव्य कैसें वर्त्तें। भावार्थ—एक आकाश प्रदेशविषैं अनन्त पुद्गलके परमाणु द्रव्य तिष्ठै हैं। एक जीवका प्रदेश एक धर्मद्रव्यका प्रदेश एक अधर्मद्रव्यका प्रदेश एक कालाणुद्रव्य ऐसें सर्व तिष्ठै है सो वह आकाशका प्रदेश एक पुद्गलके परमाणुकी बराबर है सो अवगाहनशक्ति न होय तो कैसें तिष्ठै?

आगें कालद्रव्यका स्वरूप कहै है,—

सव्वाणं दव्वाणं परिणामं जो करेदि सो कालो।
एक्केकासपएसे सो वट्टदि एक्किक्को

भावार्थ–जो सर्व द्रव्यनिकै परिणाम करै है सो काल द्रव्य है। सो एक एक आकाशके प्रदेशविषै एक एक कालाणुद्रव्य वर्त्त है। भावार्थ–सर्व द्रव्यनिके समय समय पर्याय उपजै है अर विनसै है सो ऐसे परिणमनकू निमित्त कालद्रव्य है। सो लोकाकाशके एक एक प्रदेशविषै एक २ कालाणु तिष्ठै है। सो यह निश्चय काल है॥ २१६॥

आगें कहै हैं कि परिणमनेकी शक्ति स्वभावभूत सर्वे द्रव्यनिमैं है, अन्य द्रव्य निमित्तमात्र हैं–

णियणियपरिणामाण णियणियदव्वं पि कारणं होदि।
अण्ण बाहिरदव्वं णिमित्तमत्तं वियाणेह॥ २१७॥

भावार्थ–सर्व द्रव्य अपने अपने परिणमनिके उपादान कारण है। अन्य बाह्य द्रव्य हैं सो अन्यके निमित्तमात्र जाणू। भावार्थ–जैसें घट आदिकू माटी उपादान कारण है अर चाक दण्डादि निमित्त कारण हैं। तैसें सर्व द्रव्य अपने पर्यायनिकू उपादान कारण हैं। कालद्रव्य निमित्त कारण है॥

आगें कहै हैं कि सर्वहि द्रव्यनिकै परस्पर उपकार है सो सहकारीकारणभावकरि है–

सव्वाण दव्वाण जो उवयारो हवेइ अण्णोण्णं।
सो चिय कारणभावो हवदि हु सहयारिभावेण॥

भावार्थ–सर्व ही द्रव्यनिकै जो परस्पर उपकार है सो सहकारीभावकरि कारणभाव हो है यह प्रगट है॥ २१८॥

आगें द्रव्यनिके स्वभावभूत नाना शक्ति हैं तार्कों कौन निषेधि सकै है ऐसै कहै हैं,—

कालाइलद्धिजुत्ता णाणासत्तीहिं संजुदा अत्था ।
परिणममाणा हि सय ण सक्कदे को वि वारेदुं ॥

भापार्थ-सर्व ही पदार्थ काल आदि लब्धिकरि सहित भये नाना शक्तिसंयुक्त हैं तैसें ही स्वय परिणमें है तिनकूं परिणमतें कोई निवारनेकू समर्थ नाहीं । भावार्थ-सर्व द्रव्य अपने अपने परिणामरूप द्रव्य क्षेत्र काल सामग्रीकूं पाय आप ही भावरूप परिणमै हैं । तिनकू कोई निवारि न सकै हैं ॥ २१९ ॥

आगें व्यवहारकालका निरूपण करै हैं,—

जीवाण पुग्गलाणं ते सुहुमा वादरा य पज्जाया ।
तीदाणागदभूदा सो ववहारो हवे कालो ॥ २२० ॥

भापार्थ-जीव द्रव्य अर पुद्गल द्रव्यके सूक्ष्म तथा बादर पर्याय हैं ते अतीत भये अनागत आगामी होंयगे, भूत कहिये वर्तमान हैं सो ऐसा व्यवहार काल होय है. भावार्थ-जो जीव पुद्गलके स्थूल सूक्ष्म पर्याय हैं ते अतीतभये तिनिकू अतीत नाम कह्या बहुरि जो आगामी होंयगे तिनिकू अनागत नाम कह्या बहुरि जो वर्तै हैं तिनिकू वर्तमान नाम कह्या. इनिकू जेतीवार लगै है तिसहीकू व्यवहार काल नाम करि कहिये हैं. सो जघन्य तौ पर्यायकी स्थिति एक समय

मात्र है बहुरि मध्य उत्कृष्ट अनेक प्रकार है तहां आकाशके एक प्रदेशतैं दूजे प्रदेशपर्यंत पुद्गलका परमाणु मन्दगतिकरि जाय तेता कालकूं समय कहिये. ऐसे जघन्ययुक्तासंख्यात समयकी एक आवली कहिये, संख्यात आवलीके समूहको एक उश्वास कहिये, सात उच्छ्वासका एक स्तोक कहिये, सात स्तोकका एक लव कहिये, साढा अडतीस लवकी एक घडी कहिये, दोय घडीका मुहूर्त कहिये। तीस मुहूर्तका रात दिन कहिए, पनरै अहोरात्रिका पक्ष कहिये, दोय पक्षका मास कहिये, दोय मासका ऋतु कहिये, तीन ऋतुका अयन कहिये, दोय अयनका वर्ष कहिये, इत्यादि पल्यसागर कल्प आदि व्यवहार काल अनेक प्रकार है ॥ २२० ॥

आगे अतीत अनागत वर्तमान पर्यायनिकी संख्या कहै है,—

तेसु अतीदा णंता अणंतगुणिदा य भाविपज्जाया।
एक्को वि वट्टमाणो एत्तियमित्तो वि सो कालो ॥२२१॥

भावार्थ-तिनि द्रव्यनिके पर्यायनिविषै अतीतपर्याय अनंत है बहुरि अनागत पर्याय तिनितैं अनन्तगुणा हैं वर्त्तमान पर्याय एक ही है सो जेता पर्याय है, तेता ही सो व्यवहार काल है ऐसैं द्रव्यनिका निरूपण कीया—

अब द्रव्यनिकै कार्यकारणभावका निरूपण करै है,—

पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दव्वं ।

उत्तरपरिणामजुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा ॥२२२॥

भावार्थ–पूर्व परिणाम सहित द्रव्य है सो कारणरूप है बहुरि उत्तर परिणामयुक्त द्रव्य है सो कार्यरूप नियमकरि है ॥ २२२ ॥

आगें वस्तुकै तीन कालविषै ही कार्यकारणभावका निश्चय करै हैं,—

कारणकज्जविसेसा तिस्सु वि कालेसु होंति वत्थूणं ।
एक्केक्कम्मि य समये पुव्वुत्तरभावमासिज्ज ॥२२३॥

भावार्थ–वस्तुनिकै पूर्व अर उत्तर परिणामकौं पायकरि तीनू ही कालविषै एक एक समयविषै कारण कार्यके विशेष होय हैं; भावार्थ–वर्त्तमान समयमें जो पर्याय है सो पूर्वसमय सहित वस्तुका कार्य है. तैसे ही सर्व पर्याय जाननी, ऐसैं समय २ कार्यकारणभावरूप है ॥ २२३ ॥

आगें वस्तु है सो अनंतधर्मस्वरूप है ऐसा निर्णय करै हैं–

संति अणंताणंता तीसु वि कालेसु सव्वदव्वाणि ।
सव्वं पि अणेयंत तत्तो भणिदं जिणिंदेहिं ॥२२४॥

भावार्थ–सर्व द्रव्य हैं ते तीनूं ही कालमें अनंतानंत हैं अनन्त पर्यायनिसहित हैं तातैं जिनेन्द्र देवने सर्व ही वस्तु अनेकांत कहिये अनंतधर्मस्वरूप कह्या है ॥ २२४ ॥

आगैं कहै है जो अनेकांतात्मक वस्तु है सो अर्थ क्रियाकारी है,—

जं वत्थु अणेयंत तं चिय कज्जं करेइ णियमेण ।
बहुधम्मजुदं अत्थं कज्जकरं दीसए लोए ॥२२५॥

भावार्थ—जो वस्तु अनेकांत है अनेक धर्मस्वरूप है सो ही नियमकरि कार्य करै है. लोकविषै बहुतधर्मकरियुक्त पदार्थ है सो ही कार्य करनेवाला देखिये है भावार्थ—लोक विषै नित्य अनित्य एक अनेक भेद इत्यादि अनेक धर्म युक्त वस्तु है सो कार्यकारी दीखै है जैसे माटीके घट आदि अनेक कार्य वणै हे सो सर्वथा माटी एक रूप तथा नित्यरूप तथा अनेक अनित्य रूप ही होय तो घट आदि कार्य बणै नाहीं, तैसैं ही सर्व वस्तु जानना ॥ २२५ ॥

आगैं सर्वथा एकान्त वस्तुकै कार्यकारीपणा नाहीं है ऐसैं कहै है,—

एयंतं पुणु दव्वं कज्जं ण करेदि लेसमित्तं पि ।
जं पुणु ण करेदि कज्जं तं वुच्चदि केरिसं दव्वं ॥२२६॥

भावार्थ—बहुरि एकांत स्वरूप द्रव्य है सो लेशमात्र भी कार्यकूं नाहीं करै है, बहुरि जो कार्य ही न करै सो कैसा द्रव्य है. वह तो—शून्यरूपसा है. भावार्थ—जो अर्थक्रियास्वरूप होय सो ही परमार्थरूप वस्तु कह्या है अर जो अर्थक्रियारूप नाहीं सो आकाशके फूलकी ज्यों शून्यरूप है ॥ २२६ ॥

आगैं सर्वथा नित्य एकांतविषैं अर्थक्रियाकारीपणाका अभाव दिखावै है,—

परिणामेण विहीणं णिच्चं दव्वं विणस्सदे णेयं ।
णो उप्पज्जदि य सया एवं कज्जं कहं कुणइ ॥२२७॥

भावार्थ–परिणामकरिहीण जो नित्य द्रव्य, सो विनसै नहीं, तब कार्य कैसैं करै ? अर जो उपजै विनशै तो नित्यपणा नाहीं ठहरै. ऐसैं कार्य न करै सो वस्तु नाहीं है २२७

आगें पुनः क्षणस्थायीकै कार्यका अभाव दिखावै हैं–

पज्जयमित्तं तच्चं विणस्सरं खणे खणे वि अण्णण्णं ।
अण्णइदव्वविहीणं ण य कज्जं किं पि साहेदि ॥२२८॥

भावार्थ– जो क्षणस्थायी पर्यायमात्र तत्त्व क्षणक्षणमें अन्य अन्य होय ऐसा विनश्वर मानिये तौ अन्वयीद्रव्यकरि रहित हूवा संता कार्य किछू भी नाहीं सावै है. क्षणस्थायी विनश्वरकै काहेका कार्य ॥ २२८ ॥

आगें अनेकान्तवस्तुकै कार्यकारणभाव बणै है सो दिखावै है,—

णवणवकज्जविसेसा तीसु वि कालेसु होंति वत्थूणं ।
एक्केक्कम्मि य समये पुव्वुत्तरभावमासिज्ज ॥२२९॥

भावार्थ–जीवादिक वस्तुनिकै तीनूंही कालविषैं एक एक समयविषै पूर्वउत्तरपरिणामका आश्रयकरि नवे नवे कार्यविशेष होय हैं नवे नवे पर्याय उपजै है ॥ २२९ ॥

आगें पूर्वोत्तरभावकै कारणकार्यभावकू दृढ करै हैं–

पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दव्वं ।

तौ नानारूप न ठहरे. बहुरि अविद्याकरि नाना दीखता माने तौ अविद्या उत्पन्न कौन भई कहिये ? जो ब्रह्मतें भई कहिये तौ ब्रह्मतें भिन्न भई कि अभिन्न भई, अथवा सतरूप है कि असत्रूप है कि एकरूप है कि अनेक रूप है ऐसें विचार कीये कहूं ठहरना नहीं तातैं वस्तुका स्वरूप अनेकांत ही सिद्ध होय है सो ही सत्यार्थ है ॥ २३४ ॥

आगें अणुमात्र तत्त्वकू माननेमें दूषण दिखावै है—

अणुपरिमाण तच्चं असविहीणं च मण्णदे जदि हि ।
तो संबंधाभावो तत्तो वि ण कज्जसंसिद्धि ॥२३५॥

भाषार्थ—जो एक वस्तु सर्वगत व्यापक न मानिये अर अंशकरि रहित अणुपरिणाम तत्त्व मानिये तौ दोय अंशके तथा पूर्वोत्तर अंशके सम्बन्धका अभावतें अणुमात्र वस्तुतैं कार्यकी सिद्धि नाहीं होय है भावार्थ—निरंश क्षणिक निरन्वयी वस्तुके अर्थक्रिया होय नाहीं, तातैं सांश नित्य अन्वयी वस्तु कथंचित् मानना योग्य है ॥ २३५ ॥

आगें द्रव्यके एकत्वपणा निश्चय करै हैं—

सव्वाण दव्वाणं दव्वसरूवेण होदि एयत्तं ।
णियणियगुणभेएण हि सव्वाणि वि होंति भिण्णाणि

भावार्थ—सर्व ही द्रव्यनिके द्रव्यस्वरूपकरि तौ एकत्वपणा है बहुरि अपने अपने गुणके भेदकरि सर्व द्रव्य भिन्न भिन्न हैं. भावार्थ—द्रव्यका लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप

सत् है सो इस स्वरूपकरि तो सर्वके एकपणा है. बहुरि अपने अपने गुण चेतनपणा जडपणा आदि भेदरूप है. तातैं गुणके भेदतैं सर्व द्रव्य न्यारे २ है तथा एक द्रव्यके त्रिकालवर्ती अनंतपर्याय हैं सो सर्व पर्यायनिविषैं द्रव्य स्वरूपकरि तो एकता ही है, जैसे चेतनके पर्याय सर्व ही चेतन स्वरूप है. बहुरि पर्याय अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न भी है भिन्न कालवर्त्ती भी है, तातैं भिन्न २ भी कहिये तिनके प्रदेश भेद भी नाहीं तातैं एक ही द्रव्यके अनेक पर्याय हो हैं यामें विरोध नाहीं ॥ २३६ ॥

आगें द्रव्यकै गुणपर्यायस्वभावपणा दिखावै हैं,—

जो अत्थो पडिसमयं उप्पादव्वयधुवत्तसब्भावो ।
गुणपज्जयपरिणामो सत्तो सो भण्णदे समये ॥२३७॥

भाषार्थ—जो अर्थ कहिये वस्तु है सो समय समय उत्पाद व्यय ध्रुवपणाके स्वभावरूप है सो गुणपर्यायपरिणामस्वरूप सत्त्व सिद्धांतविषैं कहै हैं भावार्थ—जे जीव आदि वस्तु हैं ते उपजना विनसना अर थिर रहना इन तीनूं भावमयी हैं. अर जो वस्तु गुणपर्याय परिणामस्वरूप है सो ही सत् है. जैसैं जीवद्रव्यका चेतनागुण है तिसका स्वभाव विभावरूप परिणमन है तैसैं समय समय परिणमैं है ते पर्याय है तैसैं ही पुद्गलका स्पर्श रस गन्धवर्ण गुण है ते स्वभावविभावरूप समय समय परिणमैं हैं ते पर्याय है. ऐसैं सर्व द्रव्य गुणपर्यायपरिणामस्वरूप प्रगटे हैं ।

आगें द्रव्यनिके व्यय उत्पाद कहा है सो कहै हैं,—

पडिसमय परिणामो पुव्वो णस्सेदि जायदे अण्णो ।
वत्थुविणासो पढमो उववादो भण्णदे बिदिओ ॥२३८॥

भावार्थ—जो वस्तुका परिणाम समयसमयप्रति पहलै तो विनसे है अर अन्य उपजै है सो पहला परिणामरूप वस्तुका तो नाश है, व्यय है अर अन्य दूसरा परिणाम उपज्या ताकू उत्पाद कहिये ऐसैं व्यय उत्पाद होय हैं।

आगें द्रव्यके ध्रुवपणाका निश्चय कहै है,—

णो उप्पजदि जीवो दव्वसरूवेण णेय णस्सेदि ।
तं चेव दव्वमित्तं णिच्चत्तं जाण जीवस्स ॥ २३९ ॥

भावार्थ—जीव द्रव्य है सो द्रव्यस्वरूपकरि नाशकू प्राप्त न होय है अर नाहीं उपजै है सो द्रव्यमात्रकरि जीवकै नित्यपणा जाणू भावार्थ—यह ही ध्रुवपणा है जो जीव सत्ता अर चेतनताकरि उपजै विनसै नाहीं, नवा जीव कोई नाहीं उपजै है विनसै भी नाहीं है ॥ २३९ ॥

आगें द्रव्यपर्यायका स्वरूप कहै है,—

अण्णइरूवं दव्वं विसेसरूवो हवेइ पज्जाओ ।
दव्वं पि विसेसेण हि उप्पज्जदि णस्सदे सततं ॥२४०॥

भावार्थ—जीवादिक वस्तु अन्वयरूपकरि द्रव्य है सो ही विशेषकरि पर्याय है बहुरि विशेषरूपकरि द्रव्य भी निरंतर उपजै विनसै है भावार्थ—अन्वयरूप पर्यायनिविषै सामान्य

भावकों द्रव्य कहिये घर विशेष भाव हैं ते पर्याय हैं. सो विशेषरूपकरि द्रव्य भी उत्पादव्ययस्वरूप कहिये. ऐसा नाहीं कि पर्याय द्रव्यतें जुदा ही उपजै विनसै है किंतु अभेद विवक्षातें द्रव्य ही उपजै विनसै है. भेदविवक्षातें जुदे भी कहिये.

आगें गुणका स्वरूप कहै हैं,—

सरिसो जो परिमाणो अणाइणिहणो हवे गुणो सो हि ।
सो सामण्णसरूवो उप्पज्जदि णस्सदे णेय ॥२४१॥

भाषार्थ—जो द्रव्यका परिणाम सदृश कहिये पूर्व उत्तर सर्व पर्यायनिविषै समान होय अनादिनिधन होय सो ही गुण है. सो सामान्यस्वरूपकरि उपजै विनसै नाहीं है. भावार्थ—जैसैं जीवद्रव्यका चैतन्य गुण सर्व पर्यायनिमें विद्यमान है अनादिनिधन है सो सामान्यस्वरूपकरि उपजै विनसै नाहीं है. विशेषरूपकरि पर्यायनिमें व्यक्तिरूप होय ही है, ऐसा गुण है तैसैं ही अपना अपना साधारण असाधारण गुण सर्व द्रव्यनिमें जानना ।

आगैं कहै है गुणाभास विशेषस्वरूपकरि उपजै विनसै है गुणपर्यायनिका एकपणा है सो ही द्रव्य है,—

सो वि विणस्सदि जायदि विसेसरूवेण सव्वदव्वेसु ।
दव्वगुणपज्जयाणं एयत्त वत्थु परमत्थं ॥२४२॥

भाषा—जो गुण है सो भी द्रव्यनिविषै विशेषरूपकरि

उपजै विनसै है ऐसें द्रव्यगुणपर्यायनिका एकत्वपणा है सो ही परमार्थभूत वस्तु है. भावार्थ-गुणका स्वरूप ऐसा नाहीं जो वस्तुतैं न्यारा ही है. नित्यरूप सदा रहै है गुण गुणीके कथंचित् अभेदपणा है, तातैं जे पर्याय उपजै विनसै हैं ते गुणगुणीके विकार हैं तातैं गुण उपजते विनसते भी कहिये ऐसा ही नित्यानित्यात्मक वस्तुका स्वरूप है. ऐसैं द्रव्यगुणपर्यायनिकी एकता सो ही परमार्थरूप वस्तु है २४२

आगें आशंका उपजै है जो द्रव्यनिविषै पर्याय विद्यमान उपजै है कि अविद्यमान उपजै है ? ऐसी आशंकाकूं दूर करैहैं,—

जदि दव्वे पज्जाया वि विज्जमाणा तिरोहिदा संति।
ता उप्पत्ती विहला पडपिहिदे देवदत्तिव्व ॥२४३॥

भावार्थ—जो द्रव्यविषै पर्याय है ते भी विद्यमान हैं अर तिरोहित कहिये ढके हैं ऐसा मानिये तौ उत्पत्ति कहना विफल है, जैसैं देवदत्त कपडासूं ढक्या था ताकूं उघाड्या तब कहै कि यह उपज्या सो ऐसा उपजना कहना तो परमार्थ नाहीं विफल है, तैसैं द्रव्यपर्याय ढकीको उघडीको उपजती कहना परमार्थ नाहीं, तातैं अविद्यमानपर्यायकी ही उत्पत्ति कहिये ॥ २४३ ॥

सव्वाण पज्जयाण अविज्जमाणाण होदि उप्पत्ती।
कालाईलद्धीए अणाइणिहणम्मि दव्वम्मि ॥२४४॥

भापार्थ—अनादि निधन द्रव्यनिविषै काल आदि लब्धि-करि सर्व पर्यायनिकी अविद्यमानकी ही उत्पत्ति है भावार्थ—अनादिनिधन द्रव्यविषै काल आदि लब्धिकरि पर्याय अविद्यमान कहिये अणछती उपजै हैं ऐसे नाहीं कि सर्व पर्याय एक ही समय विद्यमान है ते ढकते जाय है. समय समय क्रमतें नवे नवे ही उपजै है. द्रव्य त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायनिका समुदाय है, कालभेदकरि क्रमतें पर्याय होय हैं ॥

आगें द्रव्य पर्यायनिकै कथंचित् भेद कथंचित् अभेद दिखावै है,—

दव्वाणपज्जयाणं धम्मविवक्खाइ कीरए भेओ।
वत्थुसरूवेण पुणो ण हि भेओ सक्कदे काउं॥२४५॥

भापार्थ—द्रव्यकै अर पर्यायकै धर्मधर्मीकी विवक्षाकरि भेद कीजिये है बहुरि वस्तुस्वरूपकरि भेद करनेकूं नाहीं समर्थ हूजिये है भावार्थ—द्रव्यपर्यायकै धर्म धर्मीकी विवक्षाकरि भेद करिये है. द्रव्य धर्मी है पर्याय धर्म है बहुरि वस्तुकरि अभेद ही है केई नैयायिकादिक धर्मधर्मीकै सर्वथा भेद मानै हैं तिनका मत प्रमाणबाधित है ॥ २४५ ॥

आगें द्रव्यपर्यायकै सर्वथा भेद मानै हैं तिनकूं दूषण दिखावै है,—

जदि वत्थुदो विभेदो पज्जयदव्वाण मण्णसे मूढ।
तो णिरवेक्खा सिद्धी दोह्णं पि य पावदे णियमा॥२४६॥

भापार्थ–द्रव्य पर्यायकै भेद मानै ताकूं कहै हैं कि–हे मूढ ! जो तू द्रव्यकै अर पर्यायकै वस्तुतैं भी भेद मानै है तो द्रव्य अर पर्याय दोऊकै निरपेक्षासिद्धि नियमकरि प्राप्त होय है भावार्थ–द्रव्यपर्याय न्यारे न्यार वस्तु ठहरै हैं धर्मधर्मीरपणा नाहीं ठहरै है ॥ २४६ ॥

आगें विज्ञानको ही अद्वैत कहै हैं अर बाह्य पदार्थ नाहीं मानै है तिनकूं दूषण बतावै हैं,—

जदि सव्वमेव णाणं णाणारूवेहिं संठिदं एक्कं ।
तो ण वि किंपि वि णेयं णेयेण विणा कहं णाणं॥२४७॥

भापार्थ–जो सर्व वस्तु एक ज्ञान ही है सो ही नानारूपकरि स्थित है तिष्ठै है तो ऐसैं मानै ज्ञेय किछू भी न ठहरया, बहुरि ज्ञेय विना ज्ञान कैसैं ठहरै भावार्थ–विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धमती कहै हैं जो ज्ञानमात्र ही तत्त्व है सो ही नानारूप तिष्ठै है ताकूं कहिये जो ज्ञानमात्र ही है तो ज्ञेय किछू भी नाहीं अर ज्ञेय नाहीं तब ज्ञान कैसैं कहिये ? ज्ञेयकूं जाणै सो ज्ञान कहावै ज्ञेयविना ज्ञान नाहीं. ॥ २४७ ॥

घडपडजडदव्वाणि हि णेयसरूवाणि सुप्पसिद्धाणि ।
णाणं जाणेदि यदो अप्पादो भिण्णरूवाणि ॥२४८॥

भापार्थ–घट पट आदि समस्त जडद्रव्य ज्ञेयस्वरूपकरि भलेप्रकार प्रसिद्ध हैं तिनकूं ज्ञान जाणै है, तातैं ते आत्मातैं ज्ञानतैं भिन्नरूप न्यारे तिष्ठै हैं । भावार्थ–ज्ञेयपदार्थ जडद्रव्य

न्यारे न्यारे आत्मातैं भिन्नरूप प्रसिद्ध हैं, तिनकूं लोप कैसैं करिये ? सो न मानिये तो ज्ञान भी न ठहरे. जाने विना ज्ञान काहेका ? ॥ २४८ ॥

जं सव्वलोयसिद्धं देहं गेहादिवाहिरं अत्थं ।
जो तंपि णाण मण्णदि ण मुणदि सो णाणणामं पि ॥

भाषार्थ—जो देह गेह आदि बाह्य पदार्थ सर्व लोकप्रसिद्ध हैं तिनकूं भी जो ज्ञान ही माने तो वह वादी ज्ञानका नाम भी जाने नाहीं. भावार्थ—बाह्य पदार्थकूं भी ज्ञान ही माननेवाला ज्ञानका स्वरूप नाहीं जाण्या सो तो दूरि ही रहो ज्ञानका नाम भी नाहीं जानै है ॥ २४९ ॥

आगें नास्तित्ववादीके प्रति कहै हैं,—

अच्छीहिं पिच्छमाणो जीवाजीवादि बहुविहं अत्थं ।
जो भणदि णत्थि किंचि वि सो झुट्ठाणं महाझुट्ठो ॥

भाषार्थ—जो नास्तिक वादी जीव अजीव आदि बहुत प्रकारके अर्थनिकूं प्रत्यक्ष नेत्रनिकरि देखतो संतो भी कहै किछू भी नाहीं है सो असत्यवादीनिमें महा असत्यवादी है भावार्थ—दीखती वस्तुकूं भी नाहीं बतावै सो महाझूठा है ।

जं सव्वं पि य संतं तासो वि असंतउं कहं होदि ।
णत्थित्ति किंचि तत्तो अहवा सुण्णं कहं मुणदि ॥

भाषार्थ—जो सर्व वस्तु सत्‌रूप है विद्यमान है सो वस्तु

असत्यरूप अविद्यमान कैसें होय अथवा किछू भी नाहीं है ऐसौ तो शून्य है ऐसा भी कैसें जानै. भावार्थ–छती वस्तु अणछती कैसें होय तथा किछू भी नाहीं है तौ ऐसा कहनेवाला जाननेवाला भी नाहीं ठहरया. तब शून्य है ऐसा कौन जाणै ॥ २५१ ॥

आगें इस ही गाथाका पाठान्तर है सो इस प्रकार है,

जदि सव्व पि असंतं तासो वि य सतउं कहं भणदि ।
णत्थित्ति किं पि तच्चं अहवा सुण्णं कह मुणदि ॥

भावार्थ–जो सर्व ही वस्तु असत् है तो वह ऐसें कहनेवाला नास्तिकवादी भी असत्रूप ठहरया तब किछु भी तत्त्व नाही है ऐसें कैसें कहै है अथवा कहैं भी नाही सो शून्य है ऐसें कैसें जानै है भावार्थ–आप छता है और कहै कि कछू भी नाहीं सो यह कहना तो बडा अज्ञान है तथा शून्यतत्त्व कहना तो प्रलाप ही है कहनेवाला ही नाही तब कहै कौन ? सो नास्तित्ववादी प्रलापी है ॥ २५१ ॥

किं बहुणा उत्तेण य जित्तियमेत्ताणि संति णामाणि ।
तित्तियमेत्ता अत्था संति हि णियमेण परमत्था २५२

भावार्थ–बहुत कहनेकरि कहा ? जेता नाम है तेता ही नियमकरि पदार्थ परमार्थ रूप हैं. भावार्थ–जेते नाम हैं तेते सत्यार्थ पदार्थ हैं बहुत कहनेकरि पूरी पडो ऐसें पदार्थका स्वरूप कहया ॥ २५२ ॥

अब तिनि पदार्थनिका जाननेवाला ज्ञान है ताका स्व-रूप कहै हैं,—

णाणाधम्मेहिं जुदं अप्पाणं तह परं पि णिच्छयदो ।
जं जाणेदि सजोगं तं णाणं भण्णए समये ॥ २५३ ॥

भाषार्थ—जो नाना धर्म्मनि सहित आत्मा तथा पर द्रव्यनिकूं अपने योग्यकूं जाणै सो निश्चयतैं सिद्धान्तविषै ज्ञान कहिये. भावार्थ—जो आपकूं तथा परकूं अपने आवरणके क्षयोपशम तथा क्षयके अनुसार जाननेयोग्य पदार्थकूं जानैं सो ज्ञान है. यह सामान्य ज्ञानका स्वरूप कह्या ॥ २५३ ॥

अब सर्वप्रत्यक्ष जो केवलज्ञान ताका स्वरूप कहै हैं,—

जं सव्वं पि पयासदि दव्वपज्जायसंजुदं लोयं ।
तह य अलोयं सव्वं तं णाणं सव्वपच्चक्खं ॥ २५४ ॥

भाषार्थ—जो ज्ञान द्रव्यपर्यायसंयुक्त लोककूं तथा अलोककूं सर्वकूं प्रकाशकै जाणै सो सर्वप्रत्यक्ष केवलज्ञान है ॥

आगें ज्ञानकूं सर्वगत कहै हैं—

सव्वं जाणदि जह्मा सव्वगयं तं पि वुच्चदे तह्मा ।
ण य पुण विसरदि णाणं जीवं चइऊण अण्णत्थ २५५

भाषार्थ—जातैं ज्ञान सर्व लोकालोककूं जाणै है तातैं ज्ञानकूं सर्वगत भी कहिये है. बहुरि ज्ञान है सो जीवकूं छोडि करि अन्य जे ज्ञेय पदार्थ तिनिविषै न जाय है. भावार्थ—ज्ञान सर्व लोकालोककूं जानै है यातैं सर्वगत तथा सर्वव्याप-

क कहिये है परन्तु जीवद्रव्यका गुण है तातें जीवकू छोडि अन्य पदार्थमें जाय नाहीं है ॥ २५५ ॥

आगें ज्ञान जीवके प्रदेशनिविषै तिष्ठता ही सर्वकू जानै है ऐसें कहै है,—

णाणं ण जादि णेयं णेयं पि ण जादि णाणदेसम्मि ।
णियणियदेसठियाण ववहारो णाणणेयाणं ॥ २५६ ॥

भावार्थ-ज्ञान है सो ज्ञेयविषै नाहीं जाय है. बहुरि ज्ञेय भी ज्ञानके प्रदेशनिविषै नाहीं आवै है. अपने अपने प्रदेशनिविषै तिष्ठै है तौऊ ज्ञानकै अर ज्ञेयकै ज्ञेयज्ञायक व्यवहार है भावार्थ-जैसें दर्पण अपने ठिकाणै है. घटादिक वस्तु अपने ठिकाणै है. तौऊ दर्पणकी स्वच्छता ऐसी है मानू दर्पणविषै घट आय ही बैठे है. ऐसें ही ज्ञानज्ञेयका व्यवहार जानना ॥ २५६ ॥

आगें मन पर्यय अवधिज्ञान अर मति श्रुतज्ञानका सामर्थ्य कहै हैं,—

मणपज्जयविण्णाण ओहीणाण च देसपच्चक्खं ।
मइसुयणाणं कमसो विसदपरोक्खं परोक्खं च २५७

भावार्थ-मनःपर्ययज्ञान बहुरि अवधिज्ञान ए दोऊ तौ देशप्रत्यक्ष हैं. बहुरि मतिज्ञान है सो विशद कहिये प्रत्यक्ष भी है परोक्ष भी है अर श्रुतज्ञान है सो परोक्ष ही है. भावार्थ-मनःपर्यय अवधिज्ञान तौ एकदेशप्रत्यक्ष है जातें जेते

अपना विषय है तेते विशद स्पष्ट जानै हैं सर्वकूं न जानै, तातैं एकदेश कहिये. बहुरि मतिज्ञान है सो इन्द्रियमनकरि उपजै है तातैं व्यवहारकरि इन्द्रियनिके संबधतैं विशद भी कहिये. ऐसैं प्रत्यक्ष भी है परमार्थतैं परोक्ष ही है. बहुरि श्रुतज्ञान है सो परोक्ष ही है जातैं यह विशद स्पष्ट जानै नाहीं ॥

आगें इन्द्रियज्ञान योग्य विषयकूं जानै है ऐसैं कहै हैं,—

इंदियजं मदिणाणं जुग्गं जाणेदि पुग्गलं दव्वं।
माणसणाणं च पुणो सुयविसयं अक्खविसयं च ॥

भावार्थ—इन्द्रियनितैं उपज्या जो मतिज्ञान सो अपनें योग्य विषय जो पुद्गल द्रव्य ताकूं जाणैं है. जिस इन्द्रियका जैसा विषय है तैसैं ही जाणैं है. बहुरि मनसम्बधी ज्ञान है सो श्रुतविषय कहिये शास्त्रका वचन सुणैं ताके अर्थकूं जानै है. बहुरि इन्द्रियकरि जानिये ताकूं भी जानै है ॥२५८॥

आगें इद्रियज्ञानके उपयोगकी प्रवृत्ति अनुक्रमतैं है ऐसैं कहै हैं,—

पंचेंदियणाणाणं मज्झे एगं च होदि उवजुत्तं ।
मणणाणे उवजुत्ते इंदियणाण ण जाएदि ॥ २५९ ॥

भावार्थ—पांचूं ही इद्रियनिकरि ज्ञान हो है सो तिनिमैंसूं एकेन्द्रियद्वारकरि ज्ञान उपयुक्त होय है. पांचूं ही एक काल उपयुक्त होय नाहीं. बहुरि मन,ज्ञानकरि उपयुक्त होय तब इन्द्रियज्ञान नाहीं उपजै है भावार्थ—इन्द्रिय मनसम्बन्धी

जो ज्ञान हैं सो तिनिकी मवृत्ति युगपत् नाहीं एककाल एक ही ज्ञानसू उपयुक्त होय है, जब यह जीव घटकू जानै तिस काल पटकू नाहीं जानैं, ऐसैं क्रमरूप ज्ञान है ॥ २५९ ॥

आगैं इन्द्रियमनसम्बन्धी ज्ञानकी क्रमतैं प्रवृत्ति कही तहां आशंका उपजै है जो इन्द्रियनिका ज्ञान एककाल है कि नाहीं ? ताकी आशंका दूरि करनेकौं कहै हैं,—

एक्के काले एगं णाणं जीवस्स होदि उवजुत्तं ।
णाणाणाणाणि पुणो लद्धिसहावेण वुच्चंति ॥ २६० ॥

भावार्थ-जीवकै एक कालमें एक ही ज्ञान उपयुक्त कहिये उपयोगकी प्रवृत्ति होय है बहुरि लब्धिस्वभावकरि एक काल नाना ज्ञान कहे हैं भावार्थ-भाव इन्द्रिय दोय प्रकारकी कही है लब्धिरूप, उपयोगरूप तहां ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमतें आत्माकै जाननेकी शक्ति होय सो लब्धि कहिये सो तो पांच इन्द्रिय अर मन द्वारा जाननेकी शक्ति एक कालही तिष्ठै है बहुरि तिनिकी व्यक्तिरूप उपयोगकी प्रवृत्ति है सो ज्ञेयसूं उपयुक्त होय है तब एक काल एकहीसू होय है ऐसी ही क्षयोपशमकी योग्यता है ॥ २६० ॥

आगैं वस्तुकै अनेकात्मपणा है तौऊ अपेक्षातैं एकात्मपणा भी है ऐसैं दिखावै हैं,—

जं वत्थु अणेयंतं एयंतं तं पि होदि सविपेक्खं ।
सुयणाणेण णयेहिं य णिरविक्खं दीसए णेव ॥ २६१ ॥

भावार्थ–जो वस्तु अनेकान्त है सो अपेक्षासहित एकान्त भी है तहां श्रुतज्ञान जो प्रमाण ताकरि साधिये तौ अनेकान्त ही है. बहुरि श्रुतज्ञान प्रमाणके अंश जे नय तिनिकरि साधिये तब एकान्त भी है सो अपेक्षारहित नाहीं है जातैं निरपेक्ष नय मिथ्या है. निरपेक्षातैं वस्तुका रूप नाहीं देखिये है. भावार्थ–प्रमाण तौ वस्तुके सर्व धर्मकौं एक काल साधै है अर नय हैं ते एक एक धर्महीकौं ग्रहण करै है तातैं एकनयके दूसरी नयकी सापेक्षा होय तौ वस्तु सधै अर अपेक्षारहित नय वस्तुकौं साधै नाहीं, तातैं अपेक्षातैं वस्तु अनेकान्त भी है ऐसे जानना ही सम्यग्ज्ञान है ॥२६१॥

आगे श्रुतज्ञान परोक्षपणै सर्वकूं प्रकाशै है यह कहै है,–

सव्व पि अणेयत परोक्खरूवेण ज पयासेदि ।
तं सुयणाण भण्णदि ससयपहुदीहिं परिचित्तं॥२६२॥

भावार्थ–जो ज्ञान सर्व वस्तुकूं अनेकान्त परोक्षरूपकरि प्रकाशै जाणैं कहै सो श्रुतज्ञान है। सो कैसा है संशयविपर्यय अनध्यवसायकरि रहित है। ऐसा सिद्धान्तमें कहै है। भावार्थ–जो सर्व वस्तुकूं परोक्षरूपकरि अनेकान्त प्रकाशै सो श्रुतज्ञान है। शास्त्रके वचन सुननेतैं अर्थक जाने सो परोक्ष ही जानै अर शास्त्रमें सर्व ही वस्तुका अनेकान्तात्मक स्वरूप कह्या है सो सर्व ही वस्तुकूं जानै। बहुरि गुरुनिके उपदेशपूर्वक जानै तब संशयादिक भी न रहै ॥ २६२ ॥

आगें श्रुतज्ञानके विकल्प जे भेद ते नय हैं तिनिका

स्वरूप कहै हैं,—

लोयाणं ववहारं धम्मविवक्खाइ जो पसाहेदि।
सुयणाणस्स वियप्पो सो वि णओ लिंगसंभूदो २६३

भाषार्थ—जो लोकनिका व्यवहारकूं वस्तुका एक धर्मकी विवक्षाकरि साधै सो नय है सो कैसा है श्रुतज्ञानका विकल्प कहिये भेद है बहुरि लिंगकरि उपज्या है। भावार्थ—वस्तुका एक धर्मकी विवक्षा ले लोकव्यवहारकूं साधै सो श्रुतज्ञानका अंश नय है, सो साध्य जो धर्म ताकूं हेतुकरि साधै है, जैसें वस्तुका सत् धर्मकूं ग्रहणकरि याकूं हेतुकरि साधै जो अपनें द्रव्य क्षेत्र काल भावतैं वस्तु सत्रूप है ऐसैं नय हेतुतैं उपजै है।

आगैं एक धर्मकूं नय कैसैं ग्रहण करै है सो कहै हैं,—

णाणाधम्मजुदं पि य एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं।
तस्सेयविवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाणं २६४

भाषार्थ—नाना धर्मकरि युक्त पदार्थ है तोऊ एक धर्मरूप पदार्थको कहै जातैं एक धर्मकी जहां विवक्षा करै तहां तिसही धर्मकूं कहै अवशेष सर्व धर्मकी विवक्षा नाहीं करै है। भावार्थ—जैसैं जीव वस्तुविषैं अस्तित्व नास्तित्व नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व अनेकत्व चेतनत्व अमूर्तत्व आदि अनेक धर्म हैं तिनिमैं एक धर्मकी विवक्षाकरि कहै जो जीव चेतन-.. है इत्यादि, तहां अन्य धर्मकी विवक्षा नाहीं करै

तहां ऐसा न जानना जो अन्यधर्मनिका अभाव है किंतु प्र-योजनके आश्रय एक धर्मकू मुख्यकरि कहै है, अन्यकी वि-वक्षा नाहीं है ।

आगें वस्तुका धर्मकू अर तिसके वाचक शब्दकूं अर तिसके ज्ञानकूं नय कहै हैं,—

सो चिय इक्को धम्मो वाचयसद्दो वि तस्स धम्मस्स ।
तं जाणदि तं णाणं ते तिण्णि वि णयविसेसा य २६५

भापार्थ—जो वस्तुका एक धर्म बहुरि तिस धर्मका वा-चक शब्द बहुरि तिस धर्मकू जानने वाला ज्ञान ए तीनू ही नयके विशेष हैं. भावार्थ—वस्तुका ग्राहक ज्ञान अर ताका वाचक शब्द अर वस्तु इनकू जैसें प्रमाणस्वरूप कहिये तैसें ही नय कहिये ।

आगें पूछे हैं कि वस्तुका एक धर्म ही ग्रहण करै ऐसा जो एक नय ताकू मिथ्यात्व कैसें कह्या है ताका उत्तर कहै हैं,—

ते साविक्खा सुणया णिरविक्खा ते वि दुण्णया होंति
सयलववहारसिद्धी सुणयादो होदि णियमेण २६६

भापार्थ—ते पहले कहे जे तीन प्रकार नय ते परस्पर अ-पेक्षासहित होंय तब तो सुनय हैं बहुरि ते ही जब अपेक्षा-रहित सर्वथा एक एक ग्रहण कीजे तब दुर्नय हैं बहुरि सुन-यनितें सर्व व्यवहार वस्तुके स्वरूपकी सिद्धि होय

र्थ-नय हैं ते सर्व ही सापेक्ष तौ सुनय हैं निरपेक्ष कुनय हैं. तहां सापेक्षतैं सर्व वस्तु व्यवहारकी सिद्धि है, सम्यग्ज्ञानस्वरूप है अर कुनयनितैं सर्व लोकव्यवहारका लोप होय है, मिथ्याज्ञानरूप है।

आगें परोक्ष ज्ञानमें अनुमान प्रमाणभी है ताका उदाहरणपूर्वक स्वरूप कहै हैं,—

जं जाणिज्जइ जीवो इंदियवावारकायचिट्ठाहिं ।
तं अणुमाण भणणदि त पि णय बहुविहं जाण २६७

भावार्थ-जो इन्द्रियनिके व्यापार अर कायकी चेष्टानि करि शरीरमें जीवकू जाणिये सो अनुमान प्रमाण कहिये है सो यह अनुमान ज्ञान भी नय है सो अनेक प्रकार है भावार्थ-पहलै श्रुतज्ञानके विकल्प नय कहे थे, इहां अनुमानका स्वरूप कह्या जो शरीरमें तिष्ठता जीव प्रत्यक्ष ग्रहणमें नाहीं आवै यातैं इन्द्रियनिका व्यापार स्पर्शना स्वादलेना बोलना सूंघना सुनना देखना आदि चेष्टा गमन आदिक चिह्ननितैं जानिये कि शरीरमें जीव है सो यह अनुमान है जातैं साधनतैं साध्यका ज्ञान होय सो अनुमान कहिये सो यह भी नय ही है परोक्ष प्रमाणके भेदनिमें कह्या है सो परमार्थकरि नय ही है सो स्वार्थ परमार्थके भेदतैं तथा हेतु चिन्हनिके भेदतैं अनेक प्रकार कह्या है ॥ २६७ ॥

आगें नयके भेदनिकू कहै हैं,—

सो संगहेण इक्को दुविहो वि य दव्वपज्जएहिंतो ।
तेसिं च विसेसादो णइगमपहुदी हवे णाणं २६८

भावार्थ–सो नय संग्रहकरि कहिये सामान्यकरि तौ एक है. द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेदकरि दोय प्रकार है बहुरि विशेषकरि तिनि दोऊनिके विशेषतैं नैगमनयकूं आदि देकरि हैं सो नय है ते ज्ञान ही हैं ॥ २६८ ॥

आगें द्रव्यनयका स्वरूप कहै है,—

जो साहदि सामण्णं अविणाभूदं विसेसरूवेहिं ।
णाणाजुत्तिबलादो दव्वत्थो सो णओ होदि २६९

भावार्थ–जो नय वस्तुकू विशेषरूपनितैं अविनाभूत सामान्य स्वरूपकू नाना प्रकार युक्तिके बलतैं साधै सो द्रव्यार्थिक नय है. भावार्थ–वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेषात्मक है सो विशेषविना सामान्य नाहीं ऐसे सामान्यकू युक्तिके बलतैं साधै सो द्रव्यार्थिक नय है ॥ २६९ ॥

आगें पर्यायार्थिक नयकू कहै हैं,—

जो साहेदि विसेसे बहुविहसामण्ण संजुदे सव्वे ।
साहणलिंगवसादो पज्जयविसयो णयो होदि २७०

भावार्थ–जो नय अनेक प्रकार सामान्यकरि सहित सर्व विशेष तिनिके साधनका जो लिंग ताके वशतैं साधै सो पर्यायार्थिक नय है भावार्थ–सामान्य सहित विशेषनिकूं हेतुतैं साधै सो पर्यायार्थिक नय है जैसें सत् सामान्य करि

हित चेतन अचेतनपणा विशेष है, बहुरि चित् सामान्यकरि ससारी सिद्ध जीवपणा विशेष है, बहुरि ससारीपणा सामान्यकरिसहित त्रस थावर जीवपणाविशेष है इत्यादि बहुरि अचेतन सामान्यकरिकै सहित पुद्गल आदि पाच द्रव्यविशेष हैं, बहुरि पुद्गलसामान्यकरिसहित अणु स्कन्ध घटपट आदि विशेष हैं इत्यादि पर्यायार्थिक नय हेतुतैं साधै है ॥ २७० ॥

आगें द्रव्यार्थिक नयका भेदनिकूं कहै हैं तहां प्रथमही नैगम नयकूं कहै हैं,--

जो साहेदि अदीदं वियप्परूवं भविस्समत्थं च ।
संपडिकालाविट्ठं सो हु णयो णेगमो णेयो ॥ २७१ ॥

भाषार्थ--जो नय अतीत तथा भविष्यत तथा वर्तमानकूं विकल्परूपकरि सकल्पमात्र साधै सो नैगम नय है. भावार्थ--द्रव्य है सो तीन कालके पर्यायनितैं अन्वयरूप है ताकूं अपना विषयकरि अतीतकाल पर्यायकूं भी वर्तमानवत् सकल्पमें ले आगामी पर्यायकू भी वर्तमानवत् सकल्पमें ले वर्तमानमें निष्पन्नकूं तथा अनिष्पन्नकूं निष्पन्नरूप सकल्पमें ले ऐसे ज्ञानकू तथा वचनकूं नैगम नय कहिये है. याके भेद अनेक हैं, सर्वनयके विषयकू मुख्य गौणकरि अपना सकल्परूप विषय करै है. इहा उदाहरण ऐसा--जैसैं इस मनुष्य नामा जीव द्रव्यकै ससार पर्याय है अर सिद्धपर्याय है यह मनुष्य पर्याय है ऐसैं कहैं । तहां ससार अतीत अनागत वर्त्तमान तीन काल सम्बन्धी भी है, सिद्धपणा अनागत ही है, मनुष्यपणा वर्त्त-

मान ही है परन्तु इस नयके वचनकरि अभिप्रायमें विद्यमान सकल्पकरि परोक्ष अनुभवमें ले कहै कि या द्रव्यमें मेरे ज्ञानमें आकार यह पर्याय भासै है, ऐसे सकल्पक नैगम नयका विषय कहिये. इनमेंसू मुख्य गौण कोईकूं कहै ।

आगें सग्रहनयकू कहै हैं,—

जो संगहेदि सव्वं देसं वा विविहदव्वपज्जायं ।
अणुगमलिंगविसिट्ठं सो वि णयो संगहो होदि ॥

भाषार्थ—जो नय सर्व वस्तुकू तथा देश कहिये एक वस्तुके भेदकू अनेक प्रकार द्रव्यपर्यायसहित अन्वय लिंगकरि विशिष्ट संग्रह करै, एकस्वरूप कहै, सो सग्रह नय है. भावार्थ—सर्व वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षण सत्‌करि द्रव्य पर्यायनिसू अन्वयरूप एक सत्‌मात्र है ऐसैं कहै, तथा सामान्य सत्स्वरूप द्रव्य मात्र है, तथा विशेष सत्‌रूप पर्याय मात्र है तथा जीव वस्तु चित्‌सामान्यकरि एक है तथा सिद्धत्व सामान्यकरि सर्व सिद्ध एक है तथा संसारित्व सामान्यकरि सर्व ससारी जीव एक है इत्यादि तथा अजीव सामान्यकरि पुद्गलादि पाच द्रव्य एक अजीव द्रव्य है तथा पुद्गलत्व सामान्यकरि अणु स्कन्ध घटपटादि एक द्रव्य है इत्यादि संग्रहरूप कहै सो सग्रह नय है ।

आगें व्यवहार नयकू कहै हैं,—

जो संगहेण गहिदं विसेसरहिदं पि भेददे सददं

परमाणूपज्जंतं ववहारणओ हवे सो वि ॥२७३॥

भावार्थ-जो नय संग्रह नयकरि विशेषरहित वस्तुकूं ग्रहण कीया था, ताकूं परमाणु पर्यन्त निरन्तर भेदै सो व्यवहार नय है. भावार्थ-संग्रह नय सर्व सत् सर्वकूं कह्या तहां व्यवहार भेद करै सो सत्द्रव्यपर्याय है बहुरि संग्रह द्रव्य सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहार नय भेद करै द्रव्य जीव अजीव दोय भेदरूप है बहुरि संग्रह जीव सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहार भेद करै। जीव संसारी सिद्ध दोय भेदरूप है इत्यादि। बहुरि पर्यायसामान्यकूं संग्रहण करै तहां व्यवहार भेद करै पर्याय अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय भेदरूप है तैसे ही संग्रह अजीव सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहारनय भेद करि अजीव पुद्गलादि पंच द्रव्य भेदरूप है, बहुरि संग्रह पुद्गल सामान्यकूं ग्रहण करै तहां व्यवहारनय अणु स्कंध घट पट आदि भेदरूप कहै ऐसैं जाकूं संग्रह ग्रहै तामें भेद करता जाय तहां फेरि भेद न होय सकै तहां ताईं संग्रह व्यवहारका विषय है. ऐसैं तीन द्रव्यार्थिक नयके भेद कहे ॥ २७३ ॥

अब पर्यायार्थिकके भेद कहै हैं तहां प्रथम ही ऋजुसूत्र नयकूं कहै हैं,—

जो वट्टमाणकाले अत्थपज्जायपरिणद अत्थं ।
संतं साहदि सव्वं तं वि णयं रिजुणय जाण २७४

भावार्थ-जो नय वर्त्तमान कालविषै अर्थ पर्यायरूप परि

ग्राया जो अर्थ ताहि सर्वकूं सत्रूप साधै सो ऋजुसूत्र नय है.
भावार्थ–वस्तु समय समय परिणमै है सो एक समयवर्तमान
पर्यायकू अर्थपर्याय कहिये है सो या ऋजुसूत्र नयका विष-
य है तिस मात्र ही वस्तुकौं कहै है. बहुरि घडी मुहूर्त्त आदि
कालकौं भी व्यवहारमें वर्त्तमान कहिये है सो तिस वर्त्तमान
कालस्थायी पर्यायकौं भी साधै तातैं स्थूल ऋजुसूत्र संज्ञा है.
ऐसैं तीन तौ पूर्वोक्त द्रव्यार्थिक अर एक ऋजुसूत्र ए च्यारि
नय तौ अर्थनय कहिये हैं ॥ २७४ ॥

आगें तीन शब्दनय हैं तिनिकौं कहै हैं तहां प्रथमही
शब्दनयकौं कहै हैं,—

सव्वेसिं वत्थूणं संखालिंगादिबहुपयारेहिं ।
जो साहदि णाणत्तं सद्दणयं तं वियाणेह ॥ २७५ ॥

भाषार्थ–जो नय सर्व वस्तुनिकै संख्या लिंग आदि ब-
हुत प्रकार करि नानापणाकौं साधै सो शब्द नय जाणू.
भावार्थ–संख्या एक वचन द्विवचन बहुवचन, लिंग स्त्री पु-
रुष नपुंसकका वचन, आदि शब्दमें काल कारक पुरुष उ-
पसर्ग लेणें सो इनिकरि व्याकरणके प्रयोग पदार्थकौं भेद-
रूपकरि कहै सो शब्द नय है. जैसैं पुष्य तारका नक्षत्र एक
ज्योतिषीके विमानकै तीनू लिंग कहै तहां व्यवहारमें विरोध
दीखै जातैं सो ही पुरुष सो ही स्त्री नपुंसक कैसैं होय !
तथापि शब्द नयका यह ही विषय है जो जैसा शब्द कहै
तैसा ही अर्थकू भेदरूप मानना ॥ २७५ ॥

आगें समभिरूढ नयकों कहै हैं,—

जो एगेगं अत्थ परिणादिभेएण साहए णाणं ।
मुक्खत्थं वा भासदि अहिरूढं त णयं जाण २७६

भाषार्थ—जो नय वस्तुकौं परिणामके भेदकरि एक एक न्यारा न्यारा भेद रूप साधै अथवा तिनिमें मुख्य अर्थ ग्रहण करि साधै सो समभिरूढ नय जाणु भावार्थ—शब्द नय वस्तुके पर्याय नामकरि भेद नाहीं करै अर यह समभिरूढ नय है सो एक वस्तुके पर्याय नाम हैं तिनिके भेदरूप न्यारे न्यारे पदार्थ ग्रहण करै तहां जिसकौं मुख्यकरि पकडै तिसकौं सदा तैसा ही कहै, जैसें गऊ शब्दके बहुत अर्थ थे तथा गऊ पदार्थके बहुत नाम हैं तिनकौं यह नय न्यारे न्यारे पदार्थ मानै है तिनिमेंसू मुख्यकरि गऊ पकडया ताकौ चालता बैठता सोवता गऊ ही कहबो करै ऐसा समभिरूढ नय है ॥ २७६ ॥

आगें एवभूत नयकों कहै हैं,—

जेण सहावेण जदा परिणदरूवम्मि तम्मयत्तादो ।
तप्परिणामं साहदि जो वि णओ सो वि परमत्थो ॥

भाषार्थ—वस्तु जिस काल जिस स्वभावकरि परिणमनरूप होय तिस काल तिस परिणामतें तन्मय होय है, तातैं तिस ही परिणामरूप साधै, कहै सो नय एवभूत है, यह नय परमार्थरूप है, भावार्थ—वस्तुका जिस धर्मकी मुख्यता करि

नाम होय तिस ही अर्थके परिणमनरूप जिस काल परिणमै ताकों तिस नामकरि कहै सो एवंभूत नय है. याकों निश्चय भी कहिये है. जैसैं गऊकों चालै तिस काल गऊ कहै. अन्य काल पशु न कहै ॥ २७७ ॥

आगें नयनिके कथनकों संकोचै हैं,—

एवं विविहणएहिं जो वत्थू ववहरेदि लोयम्मि ।
दंसणणाणचरित्तं सो साहदि सग्गमोक्खं च २७८

भावार्थ—जो पुरुष या प्रकार नयनिकरि वस्तुकों व्यवहाररूप कहै है, साधे है अर प्रवर्त्तावै है सो पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्रकों साधै है. बहुरि स्वर्ग मोक्षको साधै है भावार्थ—प्रमाण नयनिकरि वस्तुका स्वरूप यथार्थ सधै है जो पुरुष प्रमाण नयनिका स्वरूप जाणि वस्तुकों यथार्थ व्यवहाररूप प्रवर्त्तावै है तिसके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी अर ताका फल स्वर्ग मोक्षकी सिद्धि होय है ॥ २७८ ॥

आगें कहै हैं जो तत्त्वार्थका सुनना जानना धारणा भावना करनेवाले विरले हैं,—

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदो तच्चं ।
विरला भावहिं तच्चं विरलाणं धारणा होदि ॥२७९॥

भावार्थ—जगतविषै तत्त्वकों विरले पुरुष सुणै हैं बहुरि सुनि करि भी तत्त्वकों यथार्थ विरले ही जाणै हैं. बहुरि जानि करि भी विरले ही तत्त्वकी भावना कहिये बारबार अ-

नाम होय तिस ही अर्थके परिणमनरूप जिस काल परिणमैं ताकौं तिस नामकरि कहै सो एवंभूत नय है. याकौं निश्चय भी कहिये है. जैसैं गऊको चालै तिस काल गऊ कहै. अन्य काल कछु न कहै ॥ २७७ ॥

आगें नयनिके कथनकौ सकोचै हैं,—

एवं विविहणएहिं जो वत्थू ववहरेदि लोयाम्मि ।
दंसणणाणचरित्तं सो साहदि सग्गमोक्खं च २७८

भावार्थ—जो पुरुष या प्रकार नयनिकरि वस्तुकौ व्यवहाररूप कहै है, साधै है अर प्रवर्त्तावै है सो पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्रकौं साधै है. बहुरि स्वर्ग मोक्षकौ साधै है भावार्थ—प्रमाण नयनिकरि वस्तुका स्वरूप यथार्थ सधै है जो पुरुष प्रमाण नयनिका स्वरूप जाणि वस्तुकौ यथार्थ व्यवहाररूप प्रवर्त्तावै है तिसके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी अर ताका फल स्वर्ग मोक्षकी सिद्धि होय है ॥ २७८ ॥

आगें कहै है जो तत्त्वार्थका सुनना जानना धारणा भावना करनेवाले विरले है,—

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदो तच्चं ।
विरला भावहिं तच्चं विरलाण धारणा होदि ॥२७९॥

भावार्थ—जगतविषै तत्त्वकौं विरले पुरुष सुणै हैं. बहुरि सुनि करि भी तत्त्वकौं यथार्थ विरले ही जाणै हैं. बहुरि जानि करि भी विरले ही तत्त्वकी भावना कहिये, बारंबार अ-

भ्यास करै हैं, बहुरि अभ्यास कीये भी तत्त्वकी धारणा विरलेनिकै होय है, भावार्थ—तत्त्वार्थका यथार्थ स्वरूप सुनना जानना भावना धारणा उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं इस पांचमा काळमें तत्त्वके यथार्थ कहनेवाले दुर्लभ हैं अर धारनेवाले भी दुर्लभ हैं ॥ २७६ ॥

आगें कहै हैं जो कहे तत्त्वकों सुनिकर निश्चल भावतै भावै सो तत्त्वकों जाणै,—

तच्च कहिज्जमाणं णिच्चलभावेण गिह्णदे जो हि ।
तं चिय भावेइ सया सो वि य तच्च वियाणेई २८०

भावार्थ—जो पुरुष गुरुनिकरि कह्या जो तत्त्वका स्वरूप ताकों निश्चल भाव करि ग्रहण करै है, बहुरि तिसकों अन्य भावना छोडि निरंतर भावै है, सो पुरुष तत्त्वकों जाणै है।

आगें कहै हैं तत्त्वकी भावना नाहीं करै है, सो स्त्री आदिके वश कौन नाहीं है ? सर्व लोक है,—

को ण वसो इत्थिजणे कस्स ण मयणेण खंडियं माणं
को इंदिएहिं ण जिओ को ण कसाएहिं सतत्तो ॥

भावार्थ—या लोकविषै स्त्रीजनके वश कौन नाहीं है ? बहुरि कामकरि जाका मन खण्डन न भया ऐसा कौन है ? बहुरि इन्द्रियनिकरि न जीत्या ऐसा कौन है ? बहुरि कषायनिकरि सतापमान नाहीं ऐसा कौन है ? भावार्थ—विषय

कषायनिके वशमें सर्व लोक हैं अर तत्त्वकी भावना करनेवाले विरले हैं ॥ २८१ ॥

आगें कहै हैं जो तत्त्वज्ञानी सर्व परिग्रहका त्यागी हो है सो स्त्रीआदिके वश नाहीं होय है,-

जो ण वसो इत्थिजणे सो ण जिओ इंदिएहि मोहेण।
जो ण य गिह्णदि गंथं अब्भंतर बाहिरं सव्वं २८२

भाषार्थ—जो पुरुष तत्त्वका स्वरूप जाणि बाह्य अभ्यन्तर सर्व परिग्रहकों नाहीं ग्रहण करै है, सो पुरुष स्त्रीजनके वश नाहीं होय है. बहुरि सो ही पुरुष इंद्रियनिकरि जीत्या न होय है बहुरि सो ही पुरुष मोह कर्म जे मिथ्यात्व कर्म तिसकरि जीत्या न होय है. भावार्थ—संसारका बन्धन परिग्रह है सो सर्व परिग्रहकों छोडै सो ही स्त्री इंद्रिय कषायादिकके वशीभूत नाहीं होय है. सर्वत्यागी होय शरीरका ममत्व न राखै, तब निजस्वरूपमें ही लीन होय है ॥ २८२ ॥

आगें लोकानुप्रेक्षाका चिंतवनका माहात्म्य प्रगट करै हैं,

एवं लोयसहावं जो झायदि उवसमेक्कसब्भाओ।
सो खविय कम्मपुंजं तस्सेव सिहामणी होदि ॥२८३॥

भाषार्थ— जो पुरुष इस प्रकार लोकस्वरूपकों उपशमकरि एक स्वभावरूप हुवा सता ध्यावै है, चिंतवन करै है, सो पुरुष क्षेपै हैं नाश किये हैं कर्मके पुंज जानैं

यहीका शिखामणि होय है. भावार्थ—ऐसैं साम्यभाव करि लोकानुप्रेक्षाका चिंतवन करै सो पुरुष कर्मका नाशकरि लोकके शिखर जाय तिष्ठै है. तहां अनन्त अनौपम्य बाधारहित स्वाधीन ज्ञानानन्दस्वरूप सुखको भोगवै है। इहां लोकभावनाका कथन विस्तारकरि करनेका आशय ऐसा है जो अन्यमती लोकका स्वरूप तथा जीवका स्वरूप तथा हिताहितका स्वरूप अनेक प्रकार अन्यथा असत्यार्थ प्रमाणविरुद्ध कहै हैं सो कोई जीव तौ सुनिकरि विपरीत श्रद्धा करै हैं, केई संशयरूप होय हैं, केई अनध्यवसायरूप होय हैं, तिनिकै विपरीतश्रद्धातैं चित्त थिरताकौं न पावै है। अर चित्त थिर निश्चित हुवा विना यथार्थ ध्यानकी सिद्धि नाहीं। ध्यान विना कर्मनिका नाश होय नाहीं, तातैं विपरीत श्रद्धान दूरि होनेके अर्थ यथार्थ लोकका तथा जीवादि पदार्थनिका स्वरूप जाननेके अर्थ विस्तारकरि कथन किया है, ताकूं जानि जीवादिका स्वरूप पहिचानि अपने स्वरूपविषै निश्चल चित्त ठानि कर्म कलंक नाशि भव्य जीव मोक्षकू प्राप्त होहु, ऐसा श्रीगुरुनिका उपदेश है ॥ २८३ ॥

छप्पय॰

लोकाकार विचारिकैं, सिद्धस्वरूपचितारि।<br>
रागविरोध विडारिकैं, आतमरूपसँवारि॥<br>
आतमरूपसँवारि मोक्षपुर वसो सदा ही।<br>
आधिव्याधिजरमरन आदि दुख है न कदा ही॥

श्रीगुरु शिक्षा धारि टारि अभिमान कुशोका।
मनथिरकारन यह विचारि निजरूप सुलोका॥ १०॥

इति लोकानुप्रेक्षा समाप्ता॥ १०॥

## अथ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा लिख्यते।

जीवो अणंतकालं वसइ णिगोएसु आइपरिहीणो।
तत्तो णीसरिऊणं पुढवीकायादियो होदि॥ २८४॥

भावार्थ—ये जीव अनादि कालतैं लेकरि संसारविषै अनन्त काल तौ निगोदविषै वसै है. बहुरि तहांतैं नीसरिकरि पृथ्वीकायादिक पर्यायकूं धारै है अनादितैं अनन्तकालपर्यन्त नित्य निगोदमें जीवका वास है तहां एक शरीरमें अनन्तानन्त जीवनिका आहार स्वासोच्छ्वास जीवन मरन समान है. स्वासके अठारहवें भाग आयु है तहांतैं नीसरि कदाचित् पृथिवी अप तेज वायुकाय पर्याय पावै है सो यह पावना दुर्लभ है॥ २८४॥

आगै कहै हैं यातैं नीसरि त्रसपर्याय पावना दुर्लभ है,

तत्थ वि असंखकालं वायरसुहमेसु कुणइ परियत्तं।
चिंतामणिव्व दुलहं तसत्तणं लहदि कट्ठेण २८५

भावार्थ—तहां पृथिवीकाय आदिविषै सूक्ष्म तथा बादरनिविषै असंख्यात काल भ्रमण करै है. तहांतैं नीसरि त्रसपणा पावना बहुत कष्टकर दुर्लभ है. जैसैं चिंतामणिरत्नका

पावना दुर्लभ होय तैसें । भावार्थ-पृथिवीआदि थावरकायतैं नीसरि चिन्तामणि रत्नकी ज्यों त्रस पर्याय पावना दुर्लभ है

आगें कहै हैं त्रसपणा भी पावै तहां पचेन्द्रियपणा पावना दुर्लभ है,—

वियलिंदिएसु जायदि तत्थ वि अत्थेइ पुव्वकोडीओ।
तत्तो णीसरिऊण कहमवि पंचिंदिओ होदि ॥२८६॥

भाषार्थ-थावरतैं नीसरि त्रस होय तहां भी विकलत्रय बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियपणा पावै तहां कोटिपूर्व तिष्ठै तहां तैं भी नीसरि करि पचेंद्रियपणा पावना महा कष्टकर दुर्लभ है भावार्थ-विकलत्रयतैं पचेंद्रियपणा पावना दुर्लभ है जो विकलत्रयतैं फेरि थावर कायमें जाय उपजै तौ फेरि बहुत काल भ्रमतैं तातैं पचेंद्रियपणा पावना अतिशय दुर्लभ है।

सो वि मणेण विहीणो ण य अप्पाणं परं पि जाणेदि।
अह मणसहिओ होदि हु तह वि तिरक्खो हवे रुद्दो॥

भाषार्थ-विकलत्रयतैं नीसरि पचेन्द्रिय भी होय तौ असैनी मनरहित होय है आप अर परका भेद जाणै नाहीं-बहुरि कदाचित् मनसहित सैंनी भी होय तौ तिर्यञ्च होय है रौद्र क्रूर परिणामी बिलाव घूघू सर्प सिंह मच्छ आदि होय है. भावार्थ-कदाचित् पचेन्द्रिय भी होय तौ असैंनी होय सैंनीपणा दुर्लभ है बहुरि सैंनी भी होय तौ क्रूर तिर्यञ्च होय ताकै परिणाम निरन्तर पापरूप ही रहै है २८७

आगें ऐसें क्रूर परिणामीनिका नरकपात होय है, ऐसें कहै है--

सो तिव्वअसुहलेसो णरये णिवडेइ दुक्खदे भीमे।
तत्थ वि दुक्खं भुंजदि सारीरं माणसं पउरं ॥२८८॥

भावार्थ--क्रूर तिर्यंच होय सो तीव्र अशुभ परिणामकरि अशुभ लेश्या सहित मरि नरकमें पडै है कैसा है नरक दुःखदायक है भयानक है तहां शरीरसम्बन्धी तथा मनसम्बन्धी प्रचुर दुःख भोगवै है ॥ २८८ ॥

आगें कहै है तिस नरकतें नीसरि तिर्यंच होय दुःख सहै है,--

तत्तो णीसरिऊणं पुणरवि तिरिएसु जायदे पावं।
तत्थ वि दुक्खमणंतं विसहदि जीवो अणेयविहं २८९

भावार्थ--तिस नरकतें नीसरि फेरि भी तिर्यंच गतिविषै उपजै है तहां भी पापरूप जैसैं होय तैसें यह जीव अनेक प्रकारका अनन्त दुःख विशेषकरि सहै है ॥ २८९ ॥

आगें कहै हैं कि मनुष्यपणा पावना दुर्लभ है सो भी मिथ्याती होय पाप उपजावै है,--

रयणं चउप्पहेपिव मणुअत्तं सुट्ठु दुल्लहं लहिय।
मिच्छो हवेइ जीवो तत्थ वि पावं समज्जेदि ॥२९०॥

भावार्थ--तिर्यंचतैं नीसरि मनुष्यगति पावना अति दुर्लभ है जैसें चौपथमें रत्न पड्या होय सो बडा भाग्यतें हाथ

लागै तैसैं दुर्लभ है बहुरि ऐसा दुर्लभ मनुष्यपणा पायक-रि भी मिथ्यादृष्टी होय पाप उपजावै है. भावार्थ—मनुष्य भी होय अर म्लेच्छखंड आदि तथा मिथ्यादृष्टीनिकी संगति-विषे उपजि पाप ही उपजावै है ॥ १९० ॥

आगें कहे हैं मनुष्य भी होय अर आर्य खंडविषै भी उपजै तौऊ उत्तम कुलआदिका पावना अति दुर्लभ है,—

अह लहइ अज्जवंतं तह ण वि पावेइ उत्तमं गोत्तं ।
उत्तम कुले वि पत्ते धणहीणो जायदे जीवो ॥२९१॥

भावार्थ—मनुष्य पर्याय पाय आर्यखंडविषै भी जन्म पावै तौ ऊंच कुल पावना दुर्लभ है बहुरि कदाचित् ऊंच कुल विषै भी जन्म पावै तौ धनहीन दरिद्री होय तासू कछू सुकृत बणै नाहीं पापहीमें लीन रहै ॥ २९१ ॥

अह धनसहिओ होदि हु इंदियपरिपुण्णदा तदो दुलहा
अह इंदिय संपुण्णो तह वि सरोओ हवे देहो २९२

भावार्थ—बहुरि जो धनसहितपणा भी पावै तौ इन्द्रि-यनिकी परिपूर्णता पावना अति दुर्लभ है. बहुरि कदाचित् इन्द्रियनिकी सपूर्णता भी पावै तौ देह रोग सहित पावै नि-रोग होना दुर्लभ है ॥ २९२ ॥

अह णीरोओ होदि हु तह वि ण पावेइ जीवियं सुइरं ।
अह चिरकालं जीवदि तो सीलं णेव पावेइ ॥२९३॥

भावार्थ—अथवा कदाचित् नीरोग भी होय तौ जीवित कहिये आयु दीर्घ न पावै यह पावना दुर्लभ है अथवा जो कदाचित् आयु भी चिरकाल कहिये दीर्घ पावै तौ शील कहिये उत्तम प्रकृति भद्र परिणाम न पावै जातैं सुष्ठु स्वभाव पावना दुर्लभ है ॥ २९३ ॥

अह होदि सीलजुत्तो तह वि ण पावेइ साहुसंसग्गं।
अह तं पि कह वि पावइ सम्मत्तं तह वि अइदुलहं २९४

भावार्थ—बहुरि सुष्ठु स्वभाव भी कदाचित् पावै तौ साधु पुरुषका संसर्ग संगति नाहीं पावै है बहुरि सो भी कदाचित् पावै तौ सम्यक्त्व पावना श्रद्धान होना अति दुर्लभ है ॥ २९४ ॥

सम्मत्ते वि य लद्धे चारित्तं णेव गिण्हदे जीवो।
अह कह वि तं पि गिण्हदि तो पालेदुं ण सक्केदि २९५

भावार्थ—बहुरि सम्यक्त भी कदाचित् पावै तौ यह जीव चारित्र नाहीं ग्रहण करै है, बहुरि कदाचित् चारित्र भी ग्रहण करै तौ तिसकूं निर्दोष न पालि सकै है ॥ २९५ ॥

रयणत्तये वि लद्धे तिव्वकसायं करेदि जइ जीवो।
तो दुग्गईसु गच्छदि पणट्ठरयणत्तओ होऊ ॥२९६॥

भावार्थ—जो यह जीव कदाचित् रत्नत्रय भी पावै अर तीव्रकषाय करै तौ नाशकूं प्राप्त भया है रत्नत्रय जाका ऐसा होयकरि दुर्गतिकूं गमन करै है ॥ २०

बहुरि ऐसा मनुष्यपणा ऐसा दुर्लभ है जातैं रत्नत्रयकी प्राप्ति हो ऐसा कहै हैं,—

रयणुव्व जलहिपाडिय मणुयत्तं तं पि होइ अइदुलहं
एवं सुणिच्चइत्ता मिच्छकसायेय वज्जेह ॥ २९७ ॥

भावार्थ—यह मनुष्यपणा जैसैं रत्न समुद्रमें पड्या फेरि पावणा दुर्लभ होय तैसैं पावना दुर्लभ है ऐसैं निश्चयकरि अर हे भव्य जीवो यें मिथ्या अर कषायनिकू छोडौ ऐसा उपदेश श्रीगुरुनिका है ॥ २९७ ॥

आगें कहै हैं जो कदाचित् ऐसा मनुष्यपणा पाय शुभपरिणामनितैं देवपणा पावै तौ तहां चारित्र नाहीं पावै है,—

अहवा देवो होदि हु तत्थ वि पावेइ कह वि सम्मत्तं ।
सो तवचरण ण लहदि देसजम सीललेसं पि २९८

भावार्थ—अथवा मनुष्यपणातैं कदाचित् शुभपरिणामतें देव भी होय अर कदाचित् तहां सम्यक्त्व भी पावै तौ तहा तपश्चरण चारित्र न पावै है देशव्रत श्रावकव्रत तथा शीलव्रत कहिये ब्रह्मचर्य अथवा सप्तशीलका लेश भी न पावै है।

आगें कहै है कि इस मनुष्यगतिविषै ही तपश्चरणादिक हैं ऐसा नियम है,—

मणुअगईए वि तओ मणुअगईए महव्वयं सयलं ।
मणुअगईए झाणं मणुअगईए वि णिव्वाणं ॥२९९॥

भावार्थ—हे भव्य जीव हो इस मनुष्यगतिविषै ही तपका आचरण होय है बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही समस्त महाव्रत होय हैं बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही धर्म्यशुक्लध्यान होय है. बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही निर्वाण कहिये मोक्षकी प्राप्ति होय है ॥ २९९ ॥

इय दुलहं मणुयत्तं लहिऊणं जे रमंति विसएसु ।
ते लहिय दिव्वरयणं भूइणिमित्तं पजालंति ॥३००॥

भावार्थ—ऐसा यह मनुष्यपणा पायकरि जे इन्द्रिय विषयनिविषै रमै है ते दिव्य ( अमोलिक ) रत्नकू पाय भस्मके अर्थे दग्ध करै है. भावार्थ—अति कठिन पावने योग्य यह मनुष्य पर्याय अमोलिक रत्नतुल्य है. ताकू विषयनिविषै रमिकरि वृथा खोवना योग्य नाहीं ॥ ३०० ॥

आगें कहै है जो या मनुष्यपणामें रत्नत्रयकूं पाय बडा आदर करो,

इय सव्वदुलहदुलहं दंसण णाणं तहा चरित्तं च ।
मुणिऊण य संसारे महायरं कुणह तिण्हं पि॥३०१॥

भावार्थ—ए सर्व दुर्लभतैं भी दुर्लभ जाणि बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्र ससारविषै दुर्लभतैं दुर्लभ जाणि अर दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीनिविषै हे भव्य जीव हो ! बडा आदर करो.। भावार्थ—निगोदतै नीसरि पूर्वं कहे तिस अनुक्रमतैं दुर्लभतैं दुर्लभ जाणि, बहुरि तहा भी सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र-

की प्राप्ति अति दुर्लभ जाणू. तिसकू पायकरि भव्य जीवनिकू महान् आदर करना योग्य है ॥ ३०१ ॥

छप्पय.

वसि निगोदचिर निकसि खेद सहि धरनि तरुनि बहु ।
पवनबोद जळ अगि निगोद लहि जरन मरन सहु ॥
लट गिंडोल उटकण मकोड तन भमर भमणकर ।
जलविलोलपशु तन सुकोल नभचर सर उरपर ॥
फिरि नरकपात अति कष्टसहि, कष्ट नरतन महत ।
-तहँ पाय रत्नत्रय चिगद जे, ते दुर्लभ अवसर लहत ११

इति बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ११ ॥

---

## अथ धर्मानुप्रेक्षा प्रारभ्यते

आगें धर्मानुप्रेक्षाका निरूपण करैं हैं तहां धर्मका मूल सर्वज्ञ देव है ताकू प्रगट करैं हैं,—

जो जाणदि पच्चक्खं तियालगुणपज्जएहिं संजुत्तं ।
लोयालोयं सयलं सो सव्वण्हू हवे देओ ॥ ३०२ ॥

भाषार्थ—जो समस्त लोक अर अलोक तीनकालगोचर समस्त गुणपर्यायनिकरि संयुक्त प्रत्यक्ष जाणै सो सर्वज्ञ देव है. भावार्थ—या लोकविषै जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं. तिनितैं अनन्तानन्त गुणे पुद्गल द्रव्य हैं. एक एक आकाश, धर्म,

अधर्म द्रव्य है, असंख्यात कालाणु द्रव्य है, लोकके परैं अनन्तप्रदेशी आकाश द्रव्य अलोक है, तिनि सर्व द्रव्यनिके अतीत काल अनन्त समयरूप आगामी काल तिनितें अनन्तगुणा समयरूप तिस कालके समयसमयवर्त्ती एक द्रव्यके अनन्त अनन्त पर्याय है तिनि सर्व द्रव्यपर्यायनिकूं युगपत् एक समयविषै प्रत्यक्ष स्पष्ट न्यारे न्यारे जैसैं है तैसैं जानैं ऐसा जाके ज्ञान है सो सर्वज्ञ है. सो ही देव है अन्यकूं देव कहिये सो कहने मात्र है। इहां कहनेका तात्पर्य ऐसा जो धर्मका स्वरूप कहियेगा सो धर्मका स्वरूप यथार्थ इन्द्रियगोचर नाहीं अतीन्द्रिय है, जाका फल स्वर्ग मोक्ष है, सो भी अतीन्द्रिय है छद्मस्थकै इन्द्रिय ज्ञान है परोक्ष है सो याके गोचर नाहीं सो जो सर्व पदार्थनिकूं प्रत्यक्ष देखै सो धर्मका स्वरूप भी प्रत्यक्ष देखै सो धर्मका स्वरूप सर्वज्ञके वचनहीतैं प्रमाण है, अन्य छद्मस्थका कह्या प्रमाण नाहीं, अो सर्वज्ञके वचनकी परंपरातैं छद्मस्थ कहै सो प्रमाण है तातैं धर्मका स्वरूप कहनेकूं आदिविषै सर्वज्ञका स्थापन कीया ॥ ३०२ ॥

आगें जे सर्वज्ञकूं न मानै हैं तिनिकूं कहै हैं,—

जदि ण हवदि सव्वण्हू ता को जाणदि अदिंदियं अत्थं
इंदियणाण ण मुणदि थूलं पि असेस पज्जायं ३०३

भावार्थ—हे सर्वज्ञके अभाववादी ! जो सर्वज्ञ न होय तौ अतीन्द्रियपदार्थ इन्द्रियगोचर नाहीं ऐसे पदार्थकूं कौन जानै ? इन्द्रियज्ञानतौ स्थूलपदार्थ इन्द्रियनितैं सम्बन्धरूप

ज्ञेय ताकूं जानै है ताके भी समस्तपर्याय हैं तिनिकूं नाहीं जानै है भावार्थ–सर्वज्ञका अभाव मीमांसक अर नास्तिक कहै हैं ताकूं निषेध्या है जो सर्वज्ञ न होय तो अतीन्द्रिय पदार्थकूं कौन जानै ? जातैं धर्म अर अधर्मका फल अतीन्द्रिय है ताकूं सर्वज्ञविना कोऊ नाहीं जानैं तातैं धर्म अर अधर्मका फलकूं चाहता जो पुरुष है सो सर्वज्ञकूं मानि करि ताके वचनतै धर्मका स्वरूप निश्चय करि अंगीकार करौ ॥ ३०३ ॥

तेणुवइट्ठो धम्मो संगासत्ताण तह असंगाणं ।
पढमो वारहभेओ दसभेओ भासिओ विदिओ ३०४

भावार्थ–तिस सर्वज्ञकरि उपदेस्या धर्म है सो दोय प्रकार है एक तौ संगासक्त कहिये गृहस्थका अर एक असंग कहिये मुनिका तहां पहला गृहस्थका धर्म तौ बारह भेदरूप है बहुरि दूजा मुनिका धर्म दश भेदरूप है ॥ ३०४ ॥

आगें गृहस्थके धर्मके बारह भेदनिके नाम दोय गाथा में कहै हैं,—

सम्मदंसणसुद्धो रहिओ मज्जाइथूलदोसेहिं ।
वयधारी सामइओ पव्ववई पासु आहारी ॥ ३०५ ॥
राईभोयणविरओ मेहुणसारंभसगचत्तो य ।
कज्जाणुमोयविरओ उद्दिट्ठाहारविरओ य ॥ ३०६ ॥

भावार्थ–सम्यग्दर्शन हैं शुद्ध जाके ऐसा, १ मद्य आदि

स्थूल दोषनिर्विं रहित दर्शन प्रतिमाका धारी, २ पांच अणुव्रत-तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत ऐसैं बार व्रतनिसहित व्रतधारी, ३ तथा समायिकव्रती, ४ पर्वव्रती, ५ प्रासुकाहारी ६ रात्रीभोजनत्यागी, ७ मैथुनत्यागी, ८ आरंभत्यागी, ९ परिग्रहत्यागी, १० कार्यानुमोदविरत ११ अर उद्दिष्टाहारविरत, १२ इसप्रकार श्रावकधर्मके १२ भेद हैं भावार्थ-पहला भेद तौ पचीसमलदोषरहित शुद्धअविरतसम्यग्दृष्टी है. बहुरि ग्यारह भेद प्रतिमानके व्रतनिकरि सहित होय सो व्रती श्रावक है ॥ ३०५-३०६ ॥

आगें इनि बारहनिका स्वरूप प्रभृतिका व्याख्यान करै हैं. तहां प्रथम ही अविरत सम्यग्दृष्टीका कहै हैं. तहां भी पहलें सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी योग्यताका निरूपण करै हैं,—

चउगदिभव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाणपज्जत्तो ।
संसारतडे नियडो णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥ ३०७ ॥

भावार्थ-ऐसा जीव सम्यक्त्वकू पावै है प्रथम ही भव्य जीव होय जातैं अभव्यकै सम्यक्त्व होय नाहीं. बहुरि च्यारू ही गतिविषै सम्यक्त्व उपजै है तहां भी मन सहित सैनीकै उपजै है. असैनीकै उपजै नाहीं. तहां भी विशुद्ध परिणामी होय, शुभ लेश्या सहित होय, अशुभ लेश्यामें भी शुभ लेश्यासमान कषायनिके स्थानके होय तिनिकूं विशुद्ध उपचारकरि कहिये सक्लेश परिणामनिविषै सम्यक्त्व उपजै नाहीं. बहुरि जागताकै होय. सूताकै नाहीं होय. बहुरि प-

र्याप्तपूर्णके होय, अपर्याप्त अवस्थामें उपजै नाहीं. बहुरि संसारका तट जाकै निकट आया होय निकट भव्य होय, अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन काल पहलै सम्यक्त्व उपजै नाहीं बहुरि ज्ञानी होय साकार उपयोगवान होय निराकार दर्शनोपयोगमें सम्यक्त्व उपजै नाहीं ऐसे जीवकै सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होय है ॥ ३०७ ॥

आगें सम्यक्त्व तीन प्रकार है. तिनिमें उपशम सम्यक्त्व अर क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति कैसे है सो कहै हैं,—

सत्तण्ह पयडीणं उवसमदो होदि उवसम सम्म ।
खयदो य होइ खइयं केवलिमूले मणुसस्स ॥३०८॥

भावार्थ–मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, इनि सात मोहकर्मकी प्रकृतिनिके उपशम होतें उपशम सम्यक्त्व होय है अर इनि सातों मोहकर्मकी प्रकृतिका क्षय होनेतैं क्षायिक सम्यक्त्व उपजै है. सो यह क्षायिक सम्यक्त्व केवलि कहिये केवलज्ञानी तथा श्रुतकेवलीकै निकट कर्मभूमिके मनुष्यकै ही उपजै है, भावार्थ–इहा ऐसा जानना जो क्षायिक सम्यक्त्वका प्रारम्भ तौ केवलि श्रुतकेवलीके निकट मनुष्यकै ही होय है. अर निष्ठापन अन्यगतिमें भी होय है ॥ ३०८ ॥

आगें क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कैसैं होय सो कहै हैं,–

अणउदयादो छह्नं सजाइरूवेण उदयमाणाणं ।

सम्मत्तकम्मउदए खयउवसामियं हवे सम्मं ॥२०९॥

भाषार्थ-पूर्वोक्त सात प्रकृति निनिमैसं छहहूँप्रकृतिनिका उदय न होय तथा सजाति कहिये समान जातीय प्रकृतिकरि उदयरूप होय बहुरि सम्यक् कर्म प्रकृतिका उदय होतैं क्षायोपशमिक होय भावार्थ-मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वका तीव्र उदयका अभाव होय अर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होय अर अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभका उदयका अभाव होय तथा विसंयोजनकरि अप्रत्याख्यानावरण आदिक रूपकरि उदयमान होय तब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपजै है. इनि तीनूं ही सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका विशेष कथन गोमट्टसार लब्धिसारतै जानना ॥ २०९ ॥

आगें औपशमिक क्षायोपशमिक सम्यक्त्व अर अनंतानुबंधीका विसंयोजन अर देशव्रत इनिका पावना अर छूटि जाना उत्कृष्टकरि कहै हैं,—

गिण्हदि मुंचदि जीवो वे सम्मत्ते असंखवाराओ।
पढमकसायविणासं देसवयं कुणइ उक्किट्टं ॥२१०॥

भाषार्थ-यह जीव औपशमिक क्षायोपशमिक ए दोय तौ सम्यक्त्व अर अनंतानुबन्धीका विनाश विसंयोजन अप्रत्याख्यानादिरूप परिणमावना अर देशव्रत इनि च्यारिनिकूं असंख्यातवार ग्रहण करै है अर छोडै है यह उत्कृष्टकरि कह्या है भावार्थ-पल्यका असंख्यातवा भाग परिमाण जो,

असंख्यात तेतीवार उत्कृष्टपणै ग्रहण करै अर छोडै पीछैं मुक्ति प्राप्ति होय ॥ ३१० ॥

आगें ऐसें सप्त प्रकृतिके उपशम क्षय क्षयोपशमतैं उपज्या सम्यक्त्व कैसें जाणिये ऐसा तत्त्वार्थश्रद्धानकौं नव गाथानिकरि कहै हैं,—

जो तच्चमणेयंतं णियमा सद्दहदि सत्तभंगेहिं ।
लोयाण पण्हवसदो ववहारपवत्तणट्ठं च ॥ ३११ ॥
जो आयरेण मण्णदि जीवाजीवादि णवविहं अत्थं ।
सुदणाणेण णयेहि य सो सद्दिट्ठी हवे सुद्धो ॥३१२

भाषार्थ—जो पुरुष सप्तभंगनिकरि अनेकांत तत्त्वनिका नियमतैं श्रद्धान करै, जातैं लोकनिका प्रश्नके वशतैं विधिनिषेधतैं वचनके सात ही भंग होय हैं तातैं व्यवहारके प्रवर्त्तनेके अर्थि भी सातभंगनिका वचनकी प्रवृत्ति होय है बहुरि जो जीव अजीव आदि नवप्रकार पदार्थकौं श्रुतज्ञान प्रमाणकरि तथा तिसके भेद जे नय तिनिकरि अपना आदर यत्न उद्यमकरि मानै श्रद्धान करै सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी है. भावार्थ—वस्तुका स्वरूप अनेकांत है जामैं अनेक अन्त कहिये धर्म होय सो अनेकान्त कहिये. ते धर्म अस्तित्व नास्तित्व एकत्व अनेकत्व नित्यत्व अनित्यत्व भेदत्व अभेदत्व अपेक्षात्व दैवसाध्यत्व पौरुषसाध्यत्व हेतुसाध्यत्व आगमसाध्यत्व अंतरंगत्व बहिरंगत्व इत्यादि तौ सामान्य हैं बहुरि

द्रव्यत्व पर्यायत्व जीवत्व अजीवत्व स्पर्शत्व रसत्व गन्धत्व वर्णत्व शब्दत्व शुद्धत्व अशुद्धत्व मूर्त्तत्व अमूर्त्तत्व संसारित्व सिद्धत्व अवगाहत्व गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्व वर्त्तनाहेतुत्व इत्यादि विशेष धर्म हैं सो तिनिके प्रश्नके वशतैं विधिनिषेधरूप वचनके सात भंग होय हैं. तिनिकै 'स्यात्' ऐसा पद लगावणा स्यात् नाम कथंचित् कोईप्रकार ऐसा अर्थमें है तिसकरि वस्तुकौ अनेकान्त साधणा तहां वस्तु स्यात् अस्तित्वरूप है, ऐसैं कोईप्रकार अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि अस्तित्वरूप कहिये है. बहुरि स्यात् नास्तित्वरूप है, ऐसैं पर वस्तुके द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि नास्तित्वरूप कहिये है बहुरि वस्तु स्यात् अस्तित्व नास्तित्वरूप है, ऐसैं वस्तुमें दोऊ ही धर्म पाइये हैं अर वचनकरि क्रमतैं कहे जाय हैं, बहुरि स्यात् अवक्तव्य है. ऐसैं वस्तुमें दोऊ ही धर्म एक काल पाइये है तथापि एक काल वचनकरि कहे न जाय हैं तातैं कोई प्रकार अवक्तव्य है बहुरि अस्तित्व करि कह्या जाय है दोऊ एक काल हैं, तातैं कह्या न जाय ऐसैं वक्तव्य भी है अर अवक्तव्य भी है तातैं स्यात् अस्तित्व अवक्तव्य है. ऐसैं ही नास्तित्व अवक्तव्य कहना. बहुरि दोऊ धर्म क्रमकरि कह्या जाय युगपत् कह्या न जाय तातैं स्यात् अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य कहना ऐसैं सात ही भंग कोई प्रकार संभवै है ऐसैं ही एकत्व अनेकत्व आदि सामान्य धर्मनिपरि सात भंग विधिनिषेधतैं लगावणा जैसैं २ जहां अपेक्षा स-

भवै सो लगावणी बहुरि तैसैं ही विशेषत्व धर्म जीवत्व आ-दिमें लगावना जैसैं जीव नामा वस्तु सो स्यात् जीवत्व स्यात् अजीवत्व इत्यादि लगावणा तहां अपेक्षा ऐसैं जो अपना जीवत्व धर्म आपमें है तातै जीवत्व है पर अजीवका अजीवत्व धर्म यामें नाहीं तोऊ अपने अन्य धर्मको मुख्य करि कहिये ताकी अपेक्षा अजीवत्व है इत्यादि लगावणा-तथा जीव अनन्त हैं ताकी अपेक्षा अपना जीवत्व आपमें प-रका जीवत्व यामें नाहीं है. तातैं ताकी अपेक्षा अजीवत्व है ऐसैं भी सधै है इत्यादि अनादि निधन अनन्त जीव अजीव वस्तु हैं, तिनिविषै अपने अपने द्रव्यत्व पर्यायत्व अनन्त धर्म हैं तिनि सहित सप्त भगतैं साधना तथा तिनिके स्थूल प र्याय है ते भी चिरकालस्थायी अनेक धर्मरूप होय हैं- जैसैं जीव ससारी सिद्ध, बहुरि ससारीमें त्रस थावर, तिनिमें म-नुष्य तिर्यंच इत्यादि बहुरि पुद्गलमें अणु स्कन्ध तथा घट पट आदि, सो इनिकै भी कथचित् वस्तुपणा समवै है सो भी तैसैं ही सप्त भगतैं साधणा बहुरि तैसैं ही जीव पुद्गलके सयोगतैं भये आस्रव बध सवर निर्जरा पुण्य पाप मोक्ष आदि भाव तिनिमें भी बहुत धर्मपणाकी अपेक्षा तथा परस्पर विधिनिषेधतैं अनेक धर्मरूप कथचित् वस्तुपणा समवै है सो सप्तभगतैं साधणा

जैसैं एक पुरुषमें पिता पुत्र मामा भाणजा काका भ तीजापणा आदि धर्म समवै हैं सो अपनी अपनी अपेक्षातैं

विधिनिषेधकरि सात भंगतैं साधणा. ऐसा नियमकरि जानना, जो वस्तुमात्र अनेक धर्म स्वरूप है सो सर्वकूं अनेकांत जाणि श्रद्धान करै, बहुरि तैसैं ही लोककेविषै व्यवहार प्रवर्त्तावै सो सम्यग्दृष्टी है बहुरि जीव अजीव आस्रव बन्ध पुण्य पाप संवर निर्जरा मोक्ष ये नव पदार्थ हैं तिनिकूं तैसैं ही सप्तभंगतैं साधने ताका साधन श्रुतज्ञान प्रमाण है अर ताके भेद द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक तिनिके भी भेद नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत नय हैं बहुरि तिनिके भी उत्तरोत्तर भेद जेते वचनके प्रकार हैं तेते हैं, तिनिकू प्रमाणसप्तभंगी अर नयसप्तभंगीके विधानकरि साधिये है. तिनिका कथन पहले लोकभावना में कीया है बहुरि तिसका विशेष कथन तत्त्वार्थसूत्रकी टीकातैं जानना. ऐसैं प्रमाण नयनिकरि जीवादि पदार्थनिकूं जानिकरि श्रद्धान करै सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है. बहुरि इहां यह विशेष और जानना जो नय हैं ते वस्तुके एक २ धर्मके ग्राहक हैं ते अपने अपने विषयरूप धर्मकूं ग्रहण करनेविषै समान हैं तोऊ पुरुष अपने प्रयोजनके वशतैं तिनकौं मुख्य गौणकरि कहै हैं जैसैं जीव नामा वस्तु है तामैं अनेक धर्म हैं तोऊ चेतनपणा आदि प्राणधारणपणा अजीवनितैं असाधारण देखि तिनि अजीवनितैं न्यारा दिखावनेके प्रयोजनके वशतैं मुख्यकरि वस्तुका जीव नाम धरया. ऐसैं ही मुख्य गौण करनेका सर्व धर्मके प्रयोजनके वशतैं जानना.

इहा इस ही आशयतें अध्यात्म कथनीविषै मुख्यकू तौ निश्चय कह्या है अर गौणकू व्यवहार कह्या है तहां अभेद धर्म तौ प्रधानकरि निश्चयका विषय कह्या. अर भेद नयकू गौणकरि व्यवहार कह्या सो द्रव्य तौ अभेद है. तातैं निश्चयका आश्रय द्रव्य है. बहुरि पर्याय भेद रूप है तातैं व्यवहारका आश्रय पर्याय है तहा प्रयोजन ऐसा जो भेदरूप वस्तुकू सर्व लोक जानै है तातैं जो जानै सो ही प्रसिद्ध है. याहीतैं लोक पर्यायबुद्धि हैं. जीवकै नरनारक आदि पर्याय हैं तथा राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ आदि पर्याय हैं. तथा ज्ञानके भेदरूप मतिज्ञानादिक पर्याय हैं तिनि पर्यायनिहीको लोक जीव जानै है तातैं इनि पर्यायनिविषैं अभेदरूप अनादि अनन्त एकभाव जो चेतना धर्म ताकौं ग्रहणकरि निश्चय नयका विषय कहिकरि जीव द्रव्यका ज्ञान कराया पर्यायाश्रित जो भेद नय ताकौं गौण कीया तथा अभेद दृष्टिमें यह दीखै नाहीं तातैं अभेद नयका दृढ श्रद्धान करावनेकौं कह्या जो पर्याय नय है सो व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है सो भेद बुद्धिका एकांत निराकरण करनेके अर्थ यह कहना जानना. ऐसा नाहीं कि यह भेद है, सो असत्यार्थ कह्या जो वस्तुका स्वरूप नाहीं है जो ऐसैं सर्वथा मानै तौ अनेकांतमें समझा नाहीं सर्वथा एकांत श्रद्धानतैं मिथ्यादृष्टी होय है. जहां अध्यात्मशास्त्रनिविषै निश्चय व्यवहार नय कहे हैं तहां भी तिनि दोऊ-

निका परस्पर विधिनिषेधतैं सप्तभंगकरि वस्तु साधया. एक कों सर्वथा सत्यार्थ मानै अर एककौ सर्वथा असत्यार्थ मानै तौ मिथ्या श्रद्धान होय है. तातै तहा भी कथंचित् जानना. बहुरि अन्य वस्तु अन्यविषै आरोपणकरि प्रयोजन साधिये है तहा उपचार नय कहिये है सो यह भी व्यवहारविषै ही गर्भित है ऐसैं कहा है. जो जहा प्रयोजन निमित्त होय तहां उपचार प्रवर्त्तै है. घृतका घट कहिये तहा माटीका घडाके आश्रय घृत भरया होय तहा व्यवहारी जननिकू आधार आधेय भाव दीखै है ताकू प्रधानकरि कहिये है. जो घृतका घडा है ऐसैं ही कहैं लोक समझैं. अर घृतका घडा मगावै तब तिसकू ले आवै, तातैं उपचारविषै भी प्रयोजन सभवै है ऐसैं ही अभेद नयकू मुख्य करै तहा अभेद दृष्टिमैं भेद दीखै नाहीं तब तिसमैं ही भेद कहै सो असत्यार्थ है तहा भी उपचारसिद्धि होय है यह मुख्य गौणका भेदकू सम्यग्दृष्टी जानै है. मिथ्यादृष्टी अनेकात वस्तुकू जानै नाहीं. अर सर्वथा एक धर्म ऊपरि दृष्टि पडै तब तिसहीकूं सर्वथा वस्तु मानि अन्य धर्मकूं कै तौ सर्वथा गौणकरि असत्यार्थ मानै, कै सर्वथा अन्य धर्मका अभाव ही मानै. तथा मिथ्यात्व दृढ होय है सो यह मिथ्यात्वनामा कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं यथार्थ श्रद्धा न होय है तातैं तिस प्रकृतिका कार्य है सो भी मिथ्यात्व ही कहिये है. अर तिस प्रकृतिका अभाव भये तत्त्वार्थका यथार्थ श्रद्धान होय है सो यह अनेकान्त वस्तुविषै

प्रमाण नयकरि सात भंगकरि साध्या हूवा सम्यक्त्वका कार्य है तातैं याकूं भी सम्यक्त्व ही कहिये. ऐसैं जानना. जिनमतकी कथनी अनेक प्रकार है सो अनेकान्तरूप समझना. अर याका फल अज्ञानका नाश होकर उपादेयकी बुद्धि अर वीतरागताकी प्राप्ति है सो इस कथनिका मर्म पावना बडे भाग्यतैं होय है. इस पञ्चम कालमें प्रचार इस कथनीका गुरुका निमित्त सुलभ नाहीं है तातैं शास्त्र समझनेका निरन्तर उद्यम राखि समझना योग्य है. जातैं याके आश्रय मुख्यपणै सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति है यद्यपि जिनेन्द्रकी प्रतिमाका दर्शन तथा प्रभावना अंगका देखना इत्यादि सम्यक्त्वकी प्राप्तिकू कारण है तथापि शास्त्रका श्रवण करना, पढना, भावना करना, धारणा, हेतुयुक्तिकरि स्वमत परमतका भेद जानि नयविवक्षाकू समझना वस्तुका अनेकान्तस्वरूप निश्चय करना मुख्य कारण है. तातैं भव्य जीवनिकू इसका उपाय निरन्तर राखणा योग्य है।

आगें कहै है जो सम्यग्दृष्टी भये अनन्तानुबंधी कषाय का अभाव होय है ताके परिणाम कैसे होय हैं,—

जो ण य कुव्वदि गव्वं पुत्तकलत्ताइसव्वअत्थेसु।
उवसमभावे भावदि अप्पाणं मुणदि तिणमित्तं ३१३

भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी होय है सो पुत्र कलत्र आदि सर्व परद्रव्य तथा परद्रव्यनिके भावनिविषैं गर्व नाहीं करै हैं. परद्रव्यतैं आपकै बडापणा मानै तौ सम्यक्त्व काहेका बहुरि-

उपशम भावनिकूं भावै है अनन्तानुबन्धीसम्बन्धी तीव्र रागद्वेष परिणामके अभावतें उपशम भावनिकी भावना निरन्तर राखै है बहुरि अपने आत्माकूं तृण समान हीण मानै है जातैं अपना स्वरूप तौ अनन्त ज्ञानादिरूप है. सो जैतै तिसकी प्राप्ति न होय तैतैं आपकूं तृणबराबरी मानै है. काहूविषै गर्व नाहीं करै है ॥ ३१३ ॥

विसयासत्तो वि सया सव्वारंभेसु वट्टमाणो वि ।
मोहविलासो एसो इदि सव्वं मण्णदे हेयं ॥ ३१४ ॥

भावार्थ—अविरत सम्यग्दृष्टी यद्यपि इन्द्रिय विषयनिविषै आसक्त है बहुरि त्रस थावर जीवके घात जामैं होंय ऐसे सर्व आरम्भनिविषै वर्त्तमान है अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायनिके तीव्र उदयनितैं विरक्त न हूवा है तौऊ ऐसा जाणै है कि यह मोहकर्मका उदयश विलास है. मेरे स्वभावमें नाहीं है उपाधि है रोगवत् है त्यजने योग्य है. वर्त्तमान कषायनिकी पीडा न सही जाय है तातैं असमर्थ हूवा विषयनिका सेवना तथा बहु आरंभमें प्रवर्त्तना हो है ऐसा मानै है ॥ ३१४ ॥

उत्तमगुणगहणरओ उत्तमसाहूण विणयसंजुत्तो ।
साहम्मियअणुराई सो सद्दिट्ठी हवे परमो ॥ ३१५ ॥

भावार्थ—बहुरि कैसा है सम्यग्दृष्टी उत्तम गुण जे सम्यग्दर्शन · ज्ञान चारित्र तप आदिक तिनिविषै तो अनुरागी

होय, बहुरि तिनि गुणनिके धारक जे उत्तम साधु तिनिके विनयकरि संयुक्त होय, बहुरि आप समान जे सम्यग्दृष्टी साधर्मी तिनिविषै अनुरागी होय, वात्सल्यगुणसहित होय, सो उत्तम सम्यग्दृष्टी होय है ए तीनू भाव न होय तौ जानिये याकै सम्यक्त्वका यथार्थपणा नाहीं ॥ ३१५ ॥

देहमिलिय पि जीव णियणाणगुणेण मुणदि जो भिण्णं
जीवमिलिय पि देहं कंचुअसरिसं वियाणेई ॥३१६॥

भावार्थ–यह जीव देहतैं मिलि रह्या है तौऊ अपना ज्ञानगुण जाणै है तातैं आपकू देहतैं भिन्न ही जाणै है. बहुरि देह जीवतै मिलि रह्या है तौऊ ताकं कंचुक कहिये कपडेका जामासारिखा जाणै है जैसे देहतैं जामा भिन्न है तैसैं जीवतै देह भिन्न है. ऐसैं जाणै है ॥ ३१६ ॥

णिज्जियदोस देव सव्वजिवाणं दयावरं धम्म ।
वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णदि सो हु सद्दिट्ठी ३१७

भावार्थ–जो जीव दोषवर्जित तौ देव मानै बहुरि सर्व जीवनिकी दयाकं श्रेष्ठ धर्म मानैं बहुरि निर्ग्रंथ गुरुकू गुरु मानै सो प्रगटपणै सम्यग्दृष्टी है भावार्थ–सर्वज्ञ वीतराग अठारह दोषनिकरि रहित देवकू मानै, अन्य दोषसहित देव हैं तिनिकू संसारी जाणै, ते मोक्षमार्गी नाहीं, ऐसा जानि सदै पूजै नाहीं. तथा अहिंसारूप धर्म जानै, जे यज्ञादि देवतानिकै अर्थ पशुघातकरि चढावैं ताकू धर्म मानै हैं. तिसकौं

पाप ही जानि आप तिसविषै नाहीं प्रवर्ते बहुरि जे ग्रन्थ-सहित अनेक भेष अन्यमतीनके हैं तथा काल दोषतैं जैनम-तमें भी भेष भये हैं तिनि सर्वनिकों भेषी पापही जानैं, वंदै पूजै नाहीं. सर्व परिग्रहतैं रहित होय तिनिहीकूं गुरु मानि वन्दै पूजै, जातैं देव गुरु धर्मके आश्रय ही मिथ्या सम्यक् उपदेश प्रवर्तै है सो कुदेव कुधर्म कुगुरुका वन्दना पूजना तौ दूर ही रहो तिनिके संसर्गहीतैं श्रद्धान बिगडै है तातैं स-म्यग्दृष्टी तिनिकी संगति भी न करै। स्वामी समन्तभद्र आ-चार्य रत्नकरंड श्रावकाचारमें ऐसैं कह्या है, जो सम्यग्दृष्टी है सो कुदेव कुत्सित आगम अर कुलिंगी भेषी तिनिकूं भ-यतैं तथा किछू आशातैं तथा लोभतैं भी प्रणाम तथा ति-निका विनय न करै इनिका संसर्गतैं श्रद्धान बिगडै है. धर्मकी प्राप्ति तौ दूरि ही रहौ ऐसा जानना।

आगें मिथ्यादृष्टी कैसा होय सो कहै है,—

दोससहियं पि देवं जीवहिंसाइसजुदं धम्मं।

गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुद्दिट्ठी ३१८

भ़ाषार्थ—जो जीव दोषनिसहित देवनिकूं तौ देव मानें बहुरि जीवहिंसादिसहितकूं धर्म मानै, बहुरि परिग्रहकेविषै आसक्तकूं गुरु मानै, सो प्रगटपणै मिथ्यादृष्टी है भावार्थ—भाव मिथ्यादृष्टी तौ अदृष्ट छिप्या मिथ्याती है बहुरि जो कुदेव राग द्वेष मोह आदि अठारह दोषनिकरि सहितकूं देव मानिकरि पूजै वन्दै हैं. अर हिंसा जीवघात आदिकरि धर्म

मानै हैं बहुरि परिग्रहकेविषै आसक्त ऐसे भेषीनिकू गुरु मानै हैं ते प्रगट प्रसिद्ध मिथ्यादृष्टी है।

आगें कोई कहै कि व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी दे हैं, उपकार करै हैं तिनिकों पूजैं वन्दैं कि नाहीं ताकूं कहै हैं॥

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणइ उवयारं
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुह कुणदि ॥३१९॥

भाषार्थ—या जीवकूं कोई व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी नाहीं देवै है बहुरि कोई अन्य उपकार भी नाहीं करै है जीवके पूर्वसंचित शुभ अशुभ कर्म हैं ते ही उपकार तथा अपकार करै है भावार्थ—केई ऐसैं मानै है जो व्यंतर आदि देव हमकू लक्ष्मी दे हैं हमारा उपकार करै हैं सो तिनिकूं हम पूजे वन्दै हैं सो यह मिथ्या बुद्धि है प्रथम तौ अवार कालमें प्रत्यक्ष कोई व्यंतर आदि आप देता देख्या नाहीं, उपकार करता दीखै नाहीं जो ऐसैं होय तो पूजनेवाले दरिद्री रोगी दुःखी काहेकू रहैं, तातैं वृथा कल्पना करै है बहुरि परोक्ष भी ऐसा नियमरूप सम्बन्ध दीखै नाहीं जो पूजैं तिनिकै अवश्य उपकारादिक होय ही, तातैं यह मोही जीव वृथा ही विकल्प उपजावै है जो पूर्वकर्म शुभाशुभ संचित है सो ही या प्राणीकै सुख दुःख धन दरिद्र जीवन मरनकू करै हैं॥३१९॥

भत्तीए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी।
तो किं धम्म कीरदि एव चिंतेइ सद्दिट्ठी ॥३२०॥

भावार्थ–सम्यग्दृष्टी ऐसैं विचारै जो व्यंतर देव ही भक्तिकरि पूज्या हूवा लक्ष्मी दे है तौ धर्म काहेकूं कीजिये. भावार्थ–कार्य तौ लक्ष्मीतैं है सो व्यतर देव ही पूजेतै लक्ष्मी दे तौ धर्म काहेकू सेवना ? बहुरि मोक्षमार्गके प्रकरणमें संसारकी लक्ष्मीका अधिकार भी नाहीं तातैं सम्यग्दृष्टी तौ मोक्षमार्गी है ससारकी लक्ष्मीकूं हेय जानै है ताकी वाछा ही न करै है. जो पुण्यका उदयतैं मिलै तौ मिलौ, न मिलै तौ मति मिलौ, मोक्षहीके साधनेकी भावना करै है. तातैं संसारीक देवादिककू काहेकू पूजे वन्दै ? कदाचित् हू नाहीं पूजे वन्दै ॥ ३२० ॥

आगें सम्यग्दृष्टीके विचार होय सो कहै हैं,—

जं जस्स जम्मिदेसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ३२१

तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।
को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ३२२

भावार्थ–जो जिस जीवकै जिस देशविषै जिस कालविषै जिस विधानकरि जन्म तथा मरण उपलक्षणतैं दुःख सुख रोग दारिद्र आदि सर्वज्ञ देवनैं जाण्या है जो ऐसैं ही नियम करि होयगा, सो ही तिस प्राणीकै तिस ही देशमें तिसही कालमें तिस ही विधानकरि नियमतैं होय है. ताकू इन्द्र तथा जिनेन्द्र तीर्थंकर देव कोई भी निवारि नाहीं सकै है.

भावार्थ— सर्वज्ञ देव सर्वं द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अवस्था जाणै है सो जो सर्वज्ञके ज्ञानमें प्रतिभास्या है सो नियमकरि होय है तामें अधिक हीन किछू होता नाहीं ऐसैं सम्यग्दृष्टी विचारै है ॥ ३२१–३२२ ॥

आगें ऐसै जो सम्यग्दृष्टी है अर यामें संशय करै सो मिथ्यादृष्टी है ऐसैं कहै है,—

एव जो णिच्चयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए ।
सो सद्दिट्ठी सुद्धो जो संकदि सो हु कुदिट्ठी ३२३

भावार्थ—या प्रकार निश्चयतैं सर्व द्रव्य जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल इनिकू बहुरि इनि द्रव्यनिकी सर्व पर्यायनिकू सर्वज्ञके आगमके अनुसार जाणै है श्रद्धान करै है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है बहुरि ऐसैं श्रद्धान न करै शंका संदेह करै है सो सर्वज्ञके आगमतैं प्रतिकूल है प्रगटपणैं मिथ्यादृष्टी है ॥ ३२३ ॥

आगें कहै हैं जो विशेष तत्त्वकू नाहीं जानै है अर जिनवचनविषै आज्ञा मात्र श्रद्धान करै है सो भी श्रद्धावान कहिये है,—

जो ण वि जाणइ तच्च सो जिणवयणे करेइ सद्दहणं
जं जिणवरेहिं भणियं त सव्वमहं समिच्छामि ३२४

भावार्थ—जो जीव अपने ज्ञानावरणके विशिष्ट क्षयोपशम विना तथा विशिष्ट गुरुके संयोगविना तत्त्वार्थकू नाहीं

जान सकै है सो जीव जिनवचनविषै ऐसैं श्रद्धान करै है जो जिनेश्वर देवनै जो तत्त्व कह्या है, सो सर्व ही मैं भले प्रकार इष्ट करू हू ऐसे भी श्रद्धावान् होय हैं. भावार्थ-जो जिनेश्वरके वचनकी श्रद्धा करै है जो सर्वज्ञ देवने कह्या है सो सर्व मेरे इष्ट है. ऐसैं सामान्य श्रद्धातैं भी आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है ॥ ३२४ ॥

आगैं सम्यक्त्वका माहात्म्य तीन गाथाकरि कहै हैं,—

रयणाण महारयणं सव्वजोयाण उत्तमं जोयं ।
रिद्धीण महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं ॥३२५॥

भावार्थ-सम्यक्त्व है सो रत्ननिविषै तौ महारत्न है बहुरि सर्व योग कहिये वस्तुकी सिद्धि करनेके उपाय, मंत्र, ध्यान आदिक तिनिमें उत्तम योग है जातैं सम्यक्त्वतैं मोक्ष सधै है. बहुरि अणिमादिक ऋद्धि है तिनिमें बडी ऋद्धि है बहुत कहा कहिये सर्वसिद्धि करनेवाला यह सम्यक्त्व ही है।

सम्मत्तगुणप्पहाणो देविंदणरिंदवंदिओ होदि ।
चत्तवयो वि य पावइ सग्गसुहं उत्तमं विविहं ३२६

भावार्थ-सम्यक्त्व गुणकरि सहित जो पुरुष प्रधान है सो देवनिके इन्द्रनिकरि तथा मनुष्यनिके इन्द्र चक्रवर्त्यादिकरि वन्दनीय हो हैं. बहुरि व्रतरहित होय तौऊ उत्तम नाना प्रकारके स्वर्गके सुख पावै हैं. भावार्थ-जामें सम्यक्त्व गुण होय सो प्रधान पुरुष है देवेन्द्रादिककरि पूज्य होय है. व

हुरि सम्यक्त्वमें देवहीकी आयु बांधै है तातैं व्रतरहितकै भी स्वर्गहीका जाना मुख्य कहा है. बहुरि सम्यक्त्वगुणप्रधानका ऐसा भी अर्थ होय है जो सम्यक्त्व पचीस मल दोषनितैं रहित होय अपने निशंकित आदि गुणनिकरि सहित होय तथा संवेगादि गुणनिकरि सहित होय ऐसें सम्यक्त्वके गुणनिकरि प्रधान पुरुष होय सो देवेन्द्रादिकरि पूज्य होय है अर स्वर्गकूं प्राप्त होय है ॥ ३२६ ॥

सम्माइट्टी जीवो दुग्गइहेदु ण बधदे कम्मं ।
जं बहुभवेसु बद्ध दुक्कम्मं त पि णासेदि ॥ ३२७ ॥

भाषार्थ-सम्यग्दृष्टी जीव है सो दुर्गतिका कारण जो अशुभ कर्म ताकूं नाहीं बांधै है बहुरि जो पापकर्म पूर्वैं बहुत भवनिविषै बांध्या है तिसका भी नाश करै है भावार्थ-सम्यग्दृष्टी मरणकरि द्वितीयादिक नरक जाय नाहीं ज्योतिष व्यंतर भवनवासी देव होय नाहीं स्त्री उपजै नाहीं पांच थावर विकलत्रय असैनी निगोद म्लेच्छ कुभोगभूमि इनिविषै उपजै नाहीं जातैं याकै अनन्तानुबंधीके उदयके अभावतैं दुर्गतिके कारण कषायनिके स्थानकरूप परिणाम नाहीं हैं इहां तात्पर्य ऐसा जानना जो तीनकाल तीन लोकविषै सम्यक्त्व समान कल्याणरूप अन्य पदार्थ नाहीं है बहुरि मिथ्यात्वसमान शत्रु नाहीं है तातैं श्रीगुरुनिका यह उपदेश है जो अपना सर्वस्व उद्यम उपाय यत्नकरि मिथ्यात्वका नाश

करि सम्यक्त्व अंगीकार करना. ऐसे गृहस्थधर्मके बारह भेद-निमें पहला भेद सम्यक्त्वसहितपणा है ताका निरूपण किया ॥ ३२७ ॥

आगें ग्यारह भेद प्रतिमाके हैं तिनिका स्वरूप कहै है तहां प्रथम ही दार्शनिक नामा श्रावककूं कहै है,—

बहुतससमण्णिदं ज मज्जं मंसादिणिंदिदं दव्वं ।
जो ण य सेवदि णियमा सो दंसणसावओ होदि ३२८

भाषार्थ— बहुत त्रस जीवनिके घातकरि तथा तिनिकरि सहित जो मदिरा तथा अति निन्दनीक जो मांस आदि द्रव्य तिनिकूं जो नियमतैं न सेवै, भक्षण न करै सो दार्शनिक श्रावक है. भावार्थ—मदिरा अर मांस अर आदि शब्दतैं मधु अर पंच उदंबर फल ए वस्तु बहुत त्रस जीवनिके घातकरि सहित है तातैं दार्शनिक श्रावक है सो तिनिकू भक्षण न करै। मद्य तौ मनकूं मोहै है तब धर्मकूं भूलै है. बहुरि मांस त्रस घातविना होय ही नाहीं मधुकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है त्रस घातका ठिकाणा ही है बहुरि पीपल वड पीलू फलनिमें प्रत्यक्ष त्रस जीव उडते देखिये हैं। अन्य ग्रंथनिमें कह्या है जो ए श्रावकके आठ मूल गुण हैं अर इनिकूं त्रस हिंसाके उपलक्षण कहे हैं तातैं जिनि वस्तुनिमें त्रसहिंसा बहुत होय ते श्रावकके अभक्ष्य हैं. तातैं भखणै योग्य नाहीं. तथा सात विसन अन्याय प्रवृत्तिका मूल है तिनिका भी त्याग इहां कह्या है. जूवा मांस मद वेश्या सिकार चोरी परस्त्री ए सात व्य-

सन कहे हैं सो व्यसन नाम आपदा वा कष्टका है सो इ-
निके सेवनहारेकूं आपदा आवै है, राज पचनिका दडयोग्य
होय है तथा तिनिका सेवन भी आपदा वा कष्टरूप है, श्रा-
वक ऐसे अन्याय कार्य करै नाहीं इहां दर्शन नाम सम्य-
क्त्वका है तथा धर्मकी मूर्ति सर्वके देखनेमें आवै ताका भी
नाम दर्शन है. सो सम्यग्दृष्टी होय जिनमतकूं सेवै अर अभ
क्ष अन्याय अंगीकार करै तौ सम्यक्त्वकूं तथा जिनमतकों
लजावै मलिन करै तातैं इनिकों नियमकरि छोडै ही दर्शन
प्रतिमाधारी श्रावक होय है ॥ ३२८ ॥

दिढचित्तो जो कुव्वदि एव पि वयं णियाणपरिहीणो
वेरग्गभावियमणो सो वि य दसणगुणो होदि ३२९

भाषार्थ—ऐसे व्रतकूं दृढचित्त हूवा सता, निदान कहिये
इह लोक परलोकनिके भोगनिकी वांछा ताकरि रहित हूवा
सता वैराग्यकरि भावित ( आला ) है चित्त जाका, ऐसा
हूवा सता जो सम्यग्दृष्टी पुरुष करै है सो दार्शनिक श्रावक
कहिए है । भावार्थ—पहिली गाथामें श्रावक कह्या
ताके ए तीन विशेषण और जानने. प्रथम तौ दृढचित्त
होय परीषह आदि कष्ट आवै तौ व्रतकी प्रतिज्ञातैं चिगै ना
हीं, बहुरि निदानकरि रहित होय अर इस लोकसम्बन्धी जस
सुख संपत्ति वा परलोकसम्बन्धी शुभगतिकी वांछा रहित
वैराग्य भावनाकरि चित्त जाका आला कहिये सींच्या होय
अभक्ष अन्यायकूं अत्यन्त अनर्थ जाणि त्याग करै ऐसा नाहीं

जो शास्त्रमें त्यागने योग्य कहे तातें छोडनें, परिणाममें राग मिटै नाहीं त्यागके अनेक आशय होय है सो यामें अन्य आशय नाहीं केवल तीव्र कषायके निमित्त महापाप जानि त्यागै है इनिकूं त्यागै ही आगामी प्रतिमाके उपदेशयोग्य होय है तृतीय निःशल्य कया है सो शल्यरहित त्याग होय है ऐसे दर्शनप्रतिमाधारी श्रावकका स्वरूप कह्या ॥ ३३० ॥

आगें दूजी व्रतप्रतिमाका स्वरूप कहै हैं,—

पचाणुव्वयधारी गुणवयसिक्खावएहिं संजुत्तो ।
दिढचित्तो समजुत्तो णाणी वयसावओ होदि ३३१०

भाषार्थ—जो पांच अणुव्रतका धारी होय बहुरि गुणव्रत तीन अर शिक्षाव्रत च्यारि इनिकरि संयुक्त होय बहुरि दृढचित्त होय बहुरि समभावकरि युक्त होय बहुरि ज्ञानवान होय सो व्रत प्रतिमाका धारक श्रावक है. भावार्थ—इहां अणु शब्द अल्पका वाचक है जो पंच पापमें स्थूल पाप हैं तिनिका त्याग है तातें अणुव्रत नाम है बहुरि गुणव्रत अर शिक्षाव्रत तिनि अणुव्रतनिकी रक्षा करनहारे हैं तातें अणुव्रती तिनिकूं भी धारै हैं. याकै प्रतिज्ञा व्रतकी है सो दृढचित्त है कष्ट उपसर्ग परीषह आये शिथिल न होय है. बहुरि अप्रत्याख्यानावरण कषायके अभावतें ये व्रत होय हैं अर प्रत्याख्यानावरण कषायके मन्द उदयतें होय हैं तातें उपशमभाव सहितपणा विशेषण कीया है. यद्यपि दर्शनप्रतिमा धारीकै भी अप्रत्याख्यानावरणका अभाव तो भया है

परन्तु प्रत्याख्यानावरण कषायके तीव्र स्थानकनिके उदयतैं अतीचार रहित पंच अणुव्रत होय नाहीं तातें अणुव्रतसंज्ञा नाहीं आवै है अर स्थूल अपेक्षा अणुव्रत त कै भी त्रसका भक्षणका त्यागतैं अणुव्रत है व्यसननिमें चोरीका त्याग है सो असत्य भी यामें गर्भित है परस्त्रीका त्याग है वैराग्य भावना है तातें परिग्रहके भी मूर्छाके स्थानक घटते हैं परि माण भी करै है परन्तु निरतिचार नाहीं होय, तातैं व्रतप तिमा नाम न पावै हैं वहुरि ज्ञानी विशेषण है सो युक्त ही है सम्यग्दृष्टी होय करि व्रतका स्वरूप जाणि गुरुनिकी दीई प्रतिज्ञा ले है सो ज्ञानी ही होय है, ऐसें जानना ॥ ३३० ॥

आगें पंच अणुव्रतमें पहला अणुव्रत कहै हैं,—

जो वावरेई सदओ अप्पाणसमं परं पि मण्णतो ।
णिंदणगरहणजुत्तो परिहरमाणो महारंभे ॥ ३३१ ॥
तसघादं जो ण करदि मणवयकाएहि णेव कारयदि ।
कुव्वंतं पि ण इच्छदि पढमवयं जायदे तस्स ॥ ३३२

भावार्थ—जो श्रावक त्रस जीव वेंद्रिय तेन्द्रिय चोन्द्रिय पचेंद्रियका घात मन वचन काय करि आप करै नाहीं परके पास करावै नाहीं अर परकू करताकौ इष्ट ( भला ) न मानै ताकै प्रथम अहिंसा नामा अणुव्रत होय है सो कैसा है श्रा वक? दयासहित तौ व्यापार कार्यमें प्रवर्त्ते है अर सर्व प्रा- णीकू आप समान मानता है वहुरि व्यापारादि कार्यनिमें

हिंसा होय है ताकी अपने मनविषै अपनी निंदा करै है अर गुरुनिपास अपना पापकू कहै है सो गर्हाकरि युक्त है. जो पाप लगै है ताका गुरुनिकी आज्ञा प्रमाण आलोचना प्र-तिक्रमण आदि प्रायश्चित्त ले है. बहुरि जिनिमें त्रस हिंसा बहुत होती होय ऐसे बडे व्यापार आदिके कार्य महा आ-रम्भ तिनिको छोडता संता प्रवर्त्ते है भावार्थ—त्रस घात आप करै नाहीं. पर पासि करावै नाहीं करतेकू भला जानै नाहीं पर जीवकों आप समान जानै तव परघात करै नाहीं. बहुरि बडे आरभ जिनिमें त्रस घात बहुत होय ते छोडै अर अल्प आरम्भमें त्रस घात होय तिसतें आपकी निन्दा गर्हा करै आलोचन प्रतिक्रमणादि प्रायश्चित्त करै. बहुरि इनिके अ तीचार अन्य ग्रन्थनिमें कहे है तिनिकों टालै. इहां गाथामें अन्य जीवकों आप समान जानना कह्या है तामें अतीचार टालना भी आय गया परके बध बंधन अतिभारारोपण अ-न्नपाननिरोधमें दुःख होय है सो आप समान परकू जानै तव काहेकू करै ॥ ३३१-३३२ ॥

आगें दूसरा अणुव्रतकों कहै है,—

हिंसावयणं ण वयदि कक्कसवयणं पि जो ण भासेदि।
णिट्ठुरवयणं पि तहा ण भासदे गुज्झवयणं पि ३३३
हिदमिदवयणं भासदि सतोसकरं तु सव्वजीवाणं।
धम्मपयासणवयणं अणुव्वई हवदि सो विदिओ ॥

भावार्थ—जो हिंसाका वचन न कहै बहुरि कर्कश वचन न कहै बहुरि निठुर वचन न कहै बहुरि परका गुह्य वचन न कहै. तो कैसा वचन कहै ? परके हितरूप तथा ममाणरूप वचन कहै. बहुरि सर्व जीवनिकै सतोषका करनहारा वचन कहै, बहुरि धर्मका प्रकाशनहारा वचन कहै सो पुरुष दूसरा अणुव्रतका धारी होय है। भावार्थ—असत्य वचन अनेक प्रकार है तहां सर्वथा त्याग तो सकल चारित्री मुनिकै होय है अर अणुव्रतमें स्थूलका ही त्याग है. सो जिम वचनतैं परजीवका घात होय ऐसा तो हिंसाका वचन न कहै बहुरि जो वचन परकू कडवा लागै सुणतैं ही क्रोधादिक उपजै ऐसा कर्कश वचन न कहै. बहुरि परके उद्वेग उपजि आवै, भय उपजि आवै, शोक उपजि आवै कलह उपजि आवै ऐसा निष्ठुरवचन न कहै बहुरि परके गोप्य मर्मका प्रकाश करनेवाला वचन न कहै. उपलक्षणतें और भी ऐसा जामैं परका बुरा होय सो वचन न कहै बहुरि कहै तौ हितमित वचन कहै। सर्व जीवनिकू सतोष उपजै ऐसा कहै बहुरि धर्मका जातैं प्रकाश होय ऐसा कहै बहुरि याके अतीचार अन्य ग्रयनिमें कहे हैं जो मिथ्या उपदेश रहोभ्याख्यान कूटलेखक्रिया न्यासापहार साकारमन्त्रभेद सो गाथामें विशेषण कीये तिनितैं सर्व गर्भित भये इहा तात्पर्य ,ऐसा जानना जो जातैं परजीवका बुरा होय जाय अपने उपरि आपदा आवै तथा वृथा मलाप वचनतैं अपने प्रमाद बढै ऐसा स्थूल असत्य वचन अणुव्रती कहै नाहीं परपासि कहावै

नाहीं कहनेवालेकू भला न जानै ताकै दूसरा अणुव्रत होय है ॥ २३३-२३४ ॥

आगें तीसरा अणुव्रतकू कहै हैं,—

जो बहुमुल्लं वत्थुं अप्पमुल्लेण णेय गिह्लेदि ।
वीसरियं पि ण गिह्लदि लाभे थूये हि तूसेदि २३५

जो परदव्वं ण हरइ मायालोहेण कोहमाणेण ।
दिढचित्तो सुद्धमई अणुव्वई सो हवे तिदिओ २३६

भावार्थ—जो श्रावक बहु मोलकी वस्तु अल्पमोलकरि न ले, बहुरि कपटकरि लोभकरि क्रोधकरि मानकरि परका द्रव्य न ले, सो तीसरा अणुव्रत धारी श्रावक होय है. सो कैसा है? दृढ है चित्त जाका, कारण पाय प्रतिज्ञा बिगाडै नाहीं। बहुरि शुद्ध है उज्वल है बुद्धि जाकी भावार्थ—सातव्य सनके त्यागमें चोरीका त्याग तो किया ही है तामें इहां यह विशेष जो बहु मोलकी वस्तु अल्प मोलमें लेनेमें भी झगडा उपजै है न जाणिये है कौन कारणतैं पैला अलपमें दे है ब हुरि परकी भूली वस्तु तथा मार्गमें पडी वस्तु भी न ले, यह न जाणैं तो पैला न जाणै ताका डर कहा? बहुरि व्यापार में थोडे ही लाभ वा नफाकरि संतोष करै, बहुत लालच लोभतैं अनर्थ उपजै है. बहुरि कपट प्रपचकरि काहूका धन ले नाहीं. कोईनै आपके पास धरया होय तो ताकू न देनेके भाव राखै नाहीं बहुरि लोभकरि तथा क्रोधकरि परका धन

खोसि न ले तथा मानकरि कहै हम बडे जोरावर हैं लीया तो लीया ऐसें परका धन ले नाहीं ऐसें ही परकों लिवावै नाहीं ऐसैं लेतेकूं भला जाणै नाहीं. बहुरि अन्य ग्रन्थनिमें याके पांच अतीचार कहे हैं चोरकों चोरीके अर्थ प्रेरणा करणा, तिसका ल्याया धन लेना, राज्यतैं विरुद्ध होय सो कार्य करना, व्योपारके तोल बाट हीनाधिक राखणें, अल्पमोलकी वस्तुकूं बहु मोलकी दिखाय ताका व्योहार करना, ए पांच अतीचार हैं सो गाथामें विशेषण किये तिनिमें आय गये ऐसें निरतिचार स्तेयत्यागव्रतकूं पालै सो तीसरा अणुव्रतका धारी श्रावक होय है ॥ ३३५-३३६ ॥

आगें ब्रह्मचर्यव्रतका व्याख्यान करै हैं,—

असुइमयं दुग्गंधं महिलादेहं विरच्चमाणो जो ।
रूवं लावण्णं पि य मणमोहणकारणं मुणइ ॥३३७

जो मण्णदि परमहिलं जणणीवहणीसुआइसारित्थं ।
मणवयणे कायेण वि बंभवई सो हवे थूलो ॥३३८॥

भाषार्थ—जो श्रावक स्त्रीकी देहकूं अशुचिमयी दुर्गन्ध जाणतो सतो तथा ताका रूप लावण्य ताको भी मनकेविषै मोह उपजावनेकों कारण जाणै है यातैं विरक्त हूवा सन्ता प्रवर्तै है बहुरि जो परस्त्री बडीको माता सरिखी, बराबरिकीकूं बहणसारिखी, छोटीनैं बेटीसारिखी, मनवचनकायकरि जो जाणै है सो स्थूल ब्रह्मचर्यका धारक श्रावक है प

रस्त्रीका तो मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदनाकरि त्याग करै अर स्वस्त्रीकैविषै सतोष करै. तीव्रकामके विनोद क्रीडारूप न मवर्त्तै. जातैं स्त्रीके शरीरकू अपवित्र दुर्गन्ध जाणि वैराग्य भावनारूप भाव राखै अर कामकी तीव्र वेदना इस स्त्रीके निमित्ततैं होय है ताके रूपलावण्य आदि चेष्टाकू मनके मोहनेकौं ज्ञानके भुलावनेकौं कामके उपजावनेकौं कारण जाणि विरक्त रहै सो चतुर्थ अणुव्रतका धारी होय है बहुरि याके अतीचार परविवाह करणा, परकी परणी विनापरणी स्त्रीका ससर्ग, कामकी क्रीडा, कामका तीव्र अभिप्राय, ए कह्या है ते स्त्रीका देहतैं विरक्त रहना इस विशेषणमैं आय गये परस्त्रीका त्याग तौ पहली प्रतिमामैं सात व्यसनके त्यागमैं आय गया, इहा अति तीव्र कामकी वासनाका भी त्याग है तातैं अतीचार रहित व्रत पलै है. अपनी स्त्रीकेविषै भी तीव्रपणा नाहीं होय है. ऐसैं ब्रह्मचर्य व्रतका कथन कीया ॥ ३३७–३३८ ॥

अथ परिग्रहपरिमाण पाचमा अणुव्रतका कथन करै हैं—

जो लोहं णिहणित्ता संतोसरसायणेण संतुट्ठो ।
णिहणदि तिह्णा दुट्ठा मण्णंतो विणस्सरं सव्वं ३३९॥
जो परिमाणं कुव्वदि धणधाणसुवण्णखित्तमाईणं ।
उवओगं जाणित्ता अणुव्वयं पंचमं तस्स ॥३४०॥

भावार्थ—जो पुरुष लोभ कषायकौ हीनकरि

रसायण करि सतुष्ट हूवा सता सर्व धन धान्यादि परिग्रहको विनाशीक मानता सता दुष्ट तृष्णाकौ अतिशयकरि हणै है बहुरि धन धान्य सुवर्ण क्षेत्र आदि परिग्रहका अपना उप योग सामर्थ्य जाणि कार्यविशेष जाणि तिसके अनुसार प रिमाण करै है ताकै पाचमा अणुव्रत होय है अतरगका प रिग्रह तौ लोभ तृष्णा है ताकौं क्षीण करै अर बाह्यका प रिग्रह परिमाण करै अर दृढचित्तकरि प्रतिज्ञाभग न करै सो अतिचाररहित पचम अणुव्रती होय है ऐसैं पाच अणुव्रत नि-रतिचार पालै सो व्रत प्रतिमाधारी श्रावक है ऐसैं पाच अ णुव्रतका व्याख्यान कीया ॥ २३९-२४० ॥

अब इनि व्रतनिकी रक्षाकरनेवाले सात शील है ति निका व्याख्यान करै है तिनिमैं पहलै तीन गुणव्रत है तामैं पहला गुणव्रतकौ कहै है,—

जह लोहणासणट्ठं संगपमाणं हवेइ जीवस्स ।
सव्व दिसिसु पमाण तह लोह णासए णियमा ३४१
ज परिमाण कीरदि दिसाण सव्वाण सुप्पसिद्धाणं ।
उवओग जाणित्ता गुणव्वय जाण तं पढम ॥३४२॥

भावार्थ-जैसैं लोभके नाश करनेके अर्थ जीवकै परि-ग्रहका परिमाण होय है तैसैं सर्व दिशानिविषै परिमाण कीया हूवा भी नियमतैं लोभका नाश करै है तातैं जे सर्व ही जे पूर्व आदि प्रसिद्ध दश दिशा तिनिका अपना उपयोग प्रयो-

जन कार्य जाणिकरि परिमाण करै है सो पहला गुणव्रत है. पहलैं पाच अणुव्रत कहे तिनिका ए गुणव्रत उपकारी है. इहां गुण शब्द उपकारवाचक लेणा सो लोभके नाश करनेको जैसैं परिग्रहका परिमाण करै तैसैं ही लोभके नाश करनेकौं भी दिशाका परिमाण करै. जहा ताई परिमाण कीया ताके परैं जो द्रव्य आदिकी प्राप्ति होती होय तौऊ तहा जाय नाहीं ऐसैं लोभ घटया बहुरि हिंसाका पापभी परिमाण परैं न जानेंतैं तहा सम्बन्धी न लागै, तब तिस सम्बन्धी महाव्रत तुल्य भया ॥ ३४१-३४२ ॥

अब दूसरा गुणव्रत अनर्थदंड विरतिकू कहै है,—

कज्जं किंपि ण साहदि णिच्चं पावं करेदि जो अत्थो
सो खलु हवे अणत्थो पंचपयारो वि सो विविहो ३४३

भावार्थ—जो कार्य प्रयोजन तौ अपना किछू सार्धै नाही अर केवल पापहीकों उपजावै ऐसा कार्य होय ताकों अनर्थ कहिये. सो पाच प्रकार है तथा अनेक प्रकार भी है. भावार्थ, निःप्रयोजन पाप लगावै सो अनर्थदंड है सो पाच प्रकार करि कहै हैं. अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादचर्या, हिंसादान, दुःश्रुतश्रवणादि बहुरि अनेक प्रकार भी है ॥ ३४३ ॥

अब प्रथम भेदकू कहै हैं,—

परदोसाणं गहणं परलच्छीणं समीहणं जं च
परइत्थीआलोओ परकलहालोयणं पढमं ॥

भावार्थ—परके दोषनिका ग्रहण करना परकी लक्ष्मी धन सम्पदाकी वाञ्छा करना परकी स्त्रीकू रागसहित देखना परकी कलहकू देखना इत्यादि कार्यनिकू करै सो पहला अनर्थदंड है, भावार्थ—परके दोषनिका ग्रहण करनेमैं अपने भाव तौ बिगडैं अर प्रयोजन अपना किछू सिद्ध नाहीं, पर का बुरा होय आपकै दुष्टपणा ठहरै बहुरि परकी सम्पदा देखि आप ताकी इच्छा करै तो आपकै किछू आय जाय नाहीं यामें भी निःप्रयोजन भाव बिगडै है बहुरि परकी स्त्रीकू रागसहित देखनेमैं भी आप त्यागी होयकरि निःप्रयोजन भाव काहेकू बिगाडै ? बहुरि परकी कलहकै देखनेमैं भी किछू अपना कार्य सधता नहीं उलटा आपमें भी किछू आफति आय पडै है ऐसें इनिकू आदि देकरि जिन कार्यनिविषै अपने भाव बिगडै तहां अपध्यान नामा पहला अनर्थदंड होय है सो अणुव्रतभंगका कारण है याके छोडैं व्रत दृढ रहै है ।। ३४४ ।।

अब दूजा पापोपदेश नामा अनर्थदंडकू कहै हैं,—

जो उवएसो दिज्जइ किसिपसुपालणवणिज्जपमुहेसु ।
पुरिसित्थीसंजोए अणत्थदंडो हवे बिदिओ ।।३४५।।

भावार्थ—जो खेती करना पशुका पालना वाणिज्य करना इत्यादि पापसहित कार्य तथा पुरुष स्त्रीका संजोग जैसें होय तैसें करना इत्यादि कार्यनिका परकू उपदेश देना इनिका विधान बतावना जामैं किछू अपना प्रयोजन सधै

नाहीं केवल पाप ही उपजै सो दूजा पापोपदेश नाम अनर्थदंड है एक पापके उपदेशमें अपने केवल पाप ही बधै है. तातैं व्रतभग होय है तातैं याकू छोडे उनकी रक्षा है व्रत परि गुण करै है उपकार करै है तातैं याका नाम गुणव्रत है ॥ ३४५ ॥

आगैं तीसरा प्रमादचरित नाम अनर्थदंडका भेदकूं कहै हैं,—

विहलो जो वावारो पुढवीतोयाण अग्गिपवणाण ।
तह वि वणप्फदिछेओ अणत्थदंडो हवे तिदिओ ३४६

भाषार्थ—पृथ्वी जल अग्नि पवन इनिके विफल निःप्रयोजन व्यापारमें प्रवृत्ति करना तथा निःप्रयोजन वनस्पति हरितकायका छेदन भेदन करना सो तीसरा प्रमादचरित नामा अनर्थ दण्ड है. भावार्थ— जो प्रमादके वशि होकर पृथिवी जल अग्नि पवन हरितकायकी निःप्रयोजन विराधना करै तहां त्रस थावरनिका घात ही होय अपना कार्य किछू सधै नाहीं तातैं याके करनेमें व्रत भग है छोडें व्रतकी रक्षा होय है ॥ ३४६ ॥

आगैं चौथा हिंसादान नामा अनर्थदंडकू कहै है,

मज्जारपहुदिधरणं आयुधलोहादिविक्कणं जं च ।
लक्खाखलादिगहणं अणत्थदंडो हवे तुरिओ ३४७

भाषार्थ—जो मिलाव आदि जो हिंसक जीवोंका

। बहुरि लोहका तथा लोह आदिके आयुधनिका व्योपार करना, देना लेना बहुरि लाख खला आदि शब्दतैं विष वस्तु आदिका देना लेना विणज करना यह चौथा हिंसा दान नामा अनर्थदंड है भावार्थ—हिंसक जीवनिका पालन तौ निःप्रयोजन अर पाप प्रसिद्ध ही है. बहुरि बहुत हिंसाके कारण शस्त्र लोह लाख आदिका विणज करणा देना लेना भी करनेमें फल अल्प है पाप बहुत है । तातैं अनर्थदंड ही है यामैं प्रवर्ते व्रतभंग होय है, छोडे व्रतकी रक्षा है ॥ ३४७ ॥

आगें दुःश्रुतिनामा पाचमा अनर्थदण्डक कहै हैं,—

ज सवण सत्थाणं भंडणवसियरणकामसत्थाणं ।
परदोसाणं च तहा अणत्थदंडो हवे चरमो ॥३४८

भावार्थ—जो सर्वथा एकान्ती तिनिके भाषे शास्त्र शस्त्रसारिखे दीखैं ऐसे कुशास्त्र तथा भाडक्रिया हास्य कौतूहलके कथनके शास्त्र तथा वशीकरण मंत्रप्रयोगके शास्त्र तथा स्त्रीनिके चेष्टाके वर्णनरूप कामशास्त्र तिनिका सुनना तथा उपलक्षणतैं बाचना सीखना सुनावना भी जानना बहुरि परके दोषनिकी कथा करना सुनना यह दुःश्रुतिश्रवण नाम अन्तका पाचवा अनर्थदंड है भावार्थ—खोटे शास्त्र सुनने बाचने सुनावने रचनेमें किछू प्रयोजन सिद्धि नाहीं केवल पाप ही होय है अर आजीविका निमित्त भी इनिका व्योपार करना श्रावकक योग्य नाहीं व्योपार आदिकी योग्य

आजीविका ही श्रेष्ठ है. जामें व्रतभंग होय सो काहेकूं करै? व्रतकी रक्षा ही करनी ॥ ३४८ ॥

आगें इस अनर्थदंडके कथनकूं सकोचै हैं,—

एवं पंचपयारं अणत्थदंडं दुहावहं णिच्चं ।
जो परिहरेइ णाणी गुणव्वदी सो हवे विदिओ ३४९

भाषार्थ—जो ज्ञानी श्रावक इसप्रकार अनर्थदंडकूं दुःखनिका निरन्तर उपजावनहारा जाणि छोडै है सो दूसरा गुणव्रतका धारी श्रावक होय है भावार्थ—यह अनर्थदंडका त्यागनामा गुणव्रत अणुव्रतनिका बडा उपकारी है तातें श्रावकनिकूं अवश्य पालना योग्य है ॥ ३४९ ॥

आगें भोगोपभोगनामा तीसरा गुणव्रतकूं कहै हैं,—

जाणित्ता संपत्ती भोयणतंबोलवत्थुमाईणं ।
जं परिमाणं कीरदि भोउवभोयं वयं तस्स ॥ ३५० ॥

भाषार्थ—जो अपनी सम्पदा सामर्थ्य जाणि अर भोजन तांबूल वस्त्र आदिका परिमाण मर्याद करै तिस श्रावकके भोगोपभोग नाम गुणव्रत होय है भावार्थ—भोग तौ भोजन तांबूल आदि एकवार भोगमैं आवै सो कहिए. बहुरि उपभोग वस्त्र गहणा आदि फेरि २ भोगमैं आवै सो कहिये तिनिका परिमाण यमरूप भी होय है अर नित्य नियमरूप भी होय है सो यथाशक्ति अपनी सामग्रीकूं विचारि यमरूप करि ले तथा नियमरूप भी करे हैं तिनिंत नित्य

काम जानैं तिस अनुसार करवो करै. यह अणुवृतका वडा उपकारी है ॥ ३५० ॥

आगें भोगपभोगमैं छती वस्तुक छोडै है ताकी प्रशं- सा करै है,—

जो परिहरेइ सत तस्स वय थुव्वदे सुरिंदेहिं ।
जो मणुलड्डुव भक्खदि तस्स वय अप्पसिद्धियर ॥

भावार्थ-जो पुरुष छती वस्तुकूं छोडै है ताके व्रतकूं सुरेन्द्र भी सराहै है प्रशंसा करै है बहुरि अणछतीका छो- डणा तो ऐसा है जैसैं लाडू तो होय नाहीं अर संकल्पमात्र- मनमैं लाडूकी कल्पनाकरि लाडू खाय तैसा है सो अणछती वस्तु तो संकल्पमात्र छोडी ताकै यह छोडना व्रत तो है प रन्तु अल्पसिद्धि करनेवाला है ताका फल थोडा है इहां कोई पूछै भो भोगभोग परिमाणकू तीसरा गुणवृत कह्या सो तत्त्वार्थसूत्रविषैं तो तीसरा गुणवृत देशवृत कह्या है भोग पभोग परिमाणकू तीसरा शिक्षावृत कह्या है सो यह कैसैं ? ताका समाधान-जो यह आचार्यनिकी विवक्षाका विचित्रपणा है. स्वामी समंतभद्र आचार्यने भी रत्नकरण्डश्रावकाचारमें इहां कह्या तैसैं ही कह्या है सो यामैं विरोध नाहीं इहां तो अणुव्रतकी उपकारीका अपेक्षा लई है अर तहा सचित्तादि भोग छोडनेका अपेक्षा मुनिव्रतकी शिक्षा देनेकी अपेक्षा लई है किछू विरोध है नाहीं ऐसैं तीन गुणव्रतका व्या- ख्यान किया ॥ ३५१ ॥

आगें च्यारि शिक्षाव्रतका व्याख्यान करै हैं तहां प्रथम ही सामायिक शिक्षाव्रतकू कहै हैं,—

सामाइयस्स करण खेत्तं कालं च आसणं विलओ।
मणवयणकायसुद्धी णायव्वा हुंति सत्तेव ॥ ३५२ ॥

भावार्थ–पहलै तौ सामायिकके करणांरूपै क्षेत्र काल आसन बहुरि लय बहुरि मनवचनकायकी शुद्धता ए सात सामग्री जानने योग्य हैं तहा क्षेत्रकू कहै हैं ॥ ३५२ ॥

जत्थ ण कलयलसद्दं बहुजणसंघट्टणं ण जत्थत्थि।
जत्थ ण दंसादीया एस पसत्थो हवे देसो ॥ ३५३ ॥

भावार्थ–जहा कलकलाट शब्द नाहीं होय. बहुरि जहा बहुत लोकनिका संघट्ट आवना जावना न होय. बहुरि जहां डास मच्छर कीडी पीपल्या इत्यादि शरीरकूं बाधा करनहारे जीव न होंय, ऐसा क्षेत्र सामायिक करनेकू योग्य है. भावार्थ–जहा चित्तकू कोऊ क्षोभ उपजानेके कारण न होंय तहा सामायिक करना ॥ ३५३ ॥

अब सामायिकके कालकूं कहै हैं,—

पुव्वह्णे मज्झह्णे अवरह्णे तिहि वि णालियाछक्को।
सामाइयस्स कालो सविणयणिस्सेसणिद्दिट्ठो ३५४

भावार्थ–पूर्वाह्न कहिये प्रभातकाळ मध्याह्न कहिये बीचिका दिन अपराह्न कहिये पाछिला दिन इनि तीन

विषै छह छह घड़ीका काल सामायिकका है, सो यह विनय सहित निःस्व कहिये परिग्रह रहित तिनिके ईश जो गणधर देव तिनिनें कह्या है भावार्थ—प्रभात तीन घड़ीका तडवेसू लगाय तीन घडी दिन चढ्या ताईं ऐसैं छह घडी पूर्वाह्णकाल दोय पहर पहला तीन घडीतैं लगाय पीछैं तीन घडी ऐसैं छह घडी मध्याह्नकाल तीन घडी दिनसू लगाय तीन घडी रात्रि ताईं ऐसैं छह घडी अपराह्णकाल. यह सामायिककालका उत्कृष्ट काल है बहुरि दोय घडीका भी कह्या है ऐसैं तीनू कालकी छह घडी होय हैं ॥

अब आसन तथा लय अर मन वचन कायकी शुद्धताकू कहै हैं —

बंधित्तो पज्जकं अहवा उड्ढेण उब्भओ ठिच्चा ।
कालपमाणं किच्चा इंदियवावारवज्जिओ होऊ ३५५
जिणवयणेयग्गमणो संपुडकाओ य अंजलिं किच्चा
ससरूवे संलीणो वंदणअत्थं वि चिंतित्तो ॥ ३५६ ॥
किच्चा देसपमाणं सव्वं सावज्जवज्जिदो होऊ ।
जो कुव्वदि सामइयं सो मुणिसरिसो हवे सावो ॥

भावार्थ—जो पर्यंक आसन बांधिकरि अथवा ऊभा खडा आसनतैं तिष्ठिकरि, कालका प्रमाणकरि, इन्द्रियनिके व्यापार विषयनिविषै नाहीं होनेके अर्थ जिनवचनकेविषै एकाग्र मनकरि, कायकू संकोचकरि, हस्तकी अंजलि जोडिकरि,

बहुरि अपना स्वरूपविषै लीन हूवा संता अथवा सामायिक का वंदनाका पाठके अर्थकू चितवता संता प्रवर्तै, बहुरि क्षेत्रका परिमाणकरि सर्व सावद्ययोग जो गृह व्यापारादि पापयोग ताकौ त्यागकरि पापयोगतैं रहित होय सामायिक करैं सो श्रावक तिसकाल मुनि सारिखा है भावार्थ–यह शिक्षाव्रत है तहां यह अर्थ सूचैं है जो सामायिक है सो सर्व रागद्वेषसूं रहित होय सर्व बाह्यक पापयोग क्रियासू रहित होय अपने आत्मस्वरूपकेविषै लीन हूवा मुनि प्रवर्तै है सो यह सामायिक चारित्र मुनिका धर्म है सो ही शिक्षा श्रावककूं दीजिये है जो सामायिक कालकी मर्यादाकरि तिस कालमें मुनिकी रीति प्रवर्तै जाते मुनि भये ऐसैं सदा रहना होयगा, इस ही अपेक्षाकरि तिसकाल मुनि सारिखा श्रावककू कह्या है ॥ ३५५–३५७ ॥

आगें दूसरा शिक्षाव्रत प्रोषधोपवासकू कहै है,—

ण्हाणविलेवणभूसणइत्थीसंसग्गगंधधूपदीवादि ।
जो परिहरेदि णाणी वेरग्गाभरणभूसणं किच्चा ३५८
दोसु वि पव्वेसु सया उववासं एयभत्तणिव्वियडी
जो कुणइ एवमाई तस्स वय पोसहं विदियं ॥३५९॥

भावार्थ–जो ज्ञानी श्रावक एकपक्षविषै दोय पर्व आठैं चौदसिविषै स्नान विलेपन आभूषण स्त्रीका संसर्ग सुगंध धूप दीप आदि भोगोपभोग वस्तुकू छोडैं अर वैराग्य भा-

बना सोई मण आभरण तिसकरि आत्माकू शोभायमानकरि उपवास तथा एकभक्त तथा नीरस आहार करै तथा आदि शब्दकरि काजी करै केवल भात पाणी ही ले ऐसें करै ताकैं मापधोपवासव्रत नामका शिक्षाव्रत होय है भावार्थ—जैसें सामायिक करनेका कालका नियमकरि सर्व पापयोगसूं निवृत्त होयकरि एकान्त स्थानमें धर्मध्यानकरता सता बैठे तैसें ही सर्व गृहकार्यकूं त्यागकरि समस्त भोग उपभोग सामग्रीकूं छोडिकरि सातैं तेरसिके दोय पहर दिन पीछैं एकान्त स्थानक बैठे, धर्मध्यान करता सता सोलह पहर ताईं मुनिकी ज्यों रहै, नवमी पूर्णमासीकूं दोयपहरा मतिज्ञा पूरण होय, तब गृहकारजमें लागै. ताकैं मोषधव्रत होय है. आठैं चौदसिके दिन उपवासकी सामर्थ्य न होय तौ एक बार भोजन करै. तथा नीरस भोजन काजी आदि अल्प आहार कर ले समय धर्मध्यानमें लगावै सोलह पहर आगें मोषध मतिमागें कही है. तैसें करै परन्तु इहां गाथामें न कही तातैं सोलह पहरका नियम न जानना यह भी मुनिव्रतकी शिक्षा ही है ॥ ३५८–३५९ ॥

आगें अतिथिसंविभाग नामक तीसरा शिक्षाव्रत कहै हैं,—

तिविहे पत्तम्मि सया सद्धाइगुणेहिं सजुदो णाणी।
दाणं जो देदि सय णवदाणविहीहिं सजुत्तो ॥३६०॥
सिक्खावयं च तदियं तस्स हवे सव्वसोक्खसिद्धियरं।

दाणं चउविहं पि य सव्वे दाणाण सारयरं ॥३६१॥

भावार्थ–जो ज्ञानी श्रावक उत्तम मध्यम जघन्य तीन प्रकार पात्रनिके निमित्त दाताके श्रद्धा आदि गुणनिकरि युक्त होयकरि अपने हस्तकरि नवधा भक्ति करि संयुक्त हूवा संता नितप्रति दान देहै. तिस श्रावकके तीसरा शिक्षाव्रत होय है. सो दान कैसा है आहार अभय औषध शास्त्रदानके भेदकरि च्यारि प्रकार है बहुरि यह अन्य जे लौकिक धनादिकका दान तिनिमें अतिशयकरि सार है, उत्तम है बहुरि सर्व सिद्धि अर सुखका करनहारा है. भावार्थ–तीन प्रकार पात्रनिमें उत्कृष्ट तौ मुनि, मध्यम अणुव्रती श्रावक, जघन्य अविरत सम्यग्दृष्टी हैं बहुरि दातारके सात गुण श्रद्धा, तुष्टि, भक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, शक्ति ए सात हैं तथा अन्य प्रकार भी कहे हैं इस लोकके फलकी वांछा न करै, क्षमावान् होय, कपट रहित होय, अन्यदातातैं ईर्षा न होय, दीयेका विषाद न करै, दीयेका हर्ष करै, गर्व न करै ऐसैं भी सात कहे हैं बहुरि प्रतिग्रह, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजनकरणा, प्रणाम करणा, मनकी शुद्धता, वचनकी शुद्धता, कायकी शुद्धता, आहारकी शुद्धता ऐसैं नवधा भक्ति है, ऐसे दातारके गुण सहित पात्रकू नवधा भक्तिकरि नित्य च्यारि प्रकार दान देहै ताकै तीसरा शिक्षाव्रत होय है यह भी मुनिपणकी शिक्षाके अर्थ है जो देना सीखैं तैसैं आपकू मुनिभये लेना होयगा ॥ ३६०–३६१ ॥

आगें आहार आदि दानका माहात्म्य कहै हैं,—

भोयणदाणेण सोक्खं ओसहदाणेण सत्थदाण च ।
जीवाण अभयदाणं सुदुल्लह सव्वदाणाण ॥ ३६२ ॥

भाषार्थ—भोजन दानकरि सर्वकैं सुख होय है। बहुरि औषध दानकरि सहित शास्त्रदान अर जीवनकू अभय दान है सो सर्व दाननिमैं दुर्लभ पाइए है उत्तम दान है। भावार्थ इहा अभयदानकू सर्वतैं श्रेष्ठ कह्या है ॥ ३६२ ॥

आगें आहारदानकू प्रधानकरि कहै हैं,—

भोयणदाणे दिण्णे तिण्णि वि दाणाणि होंति दिण्णाणि
भुक्खतिसाएवाही दिणे दिणे होंति देहीणं ॥३६३॥
भोयणबलेण साहू सत्थ सेवेदि रत्तिदिवहं पि ।
भोयणदाणे दिण्णे पाणा वि य रक्खिया होंति ३६४

भाषार्थ—भोजन दान दीये संतैं तीनू ही दान दीये होय हैं जातैं भूख तृषा नामका रोग प्राणीनिकैं दिन दिन प्रति होय है। बहुरि भोजनके बलकरि साधु रात्रि दिन शास्त्रका अभ्यास करै है बहुरि भोजनके देने करि प्राण भी रक्षा होय हैं। ऐसैं भोजनके दानकरि औषध शास्त्र अभयदान ए तीन ही दीये जानने। भावार्थ—भूख तृषा रोग मेटनेतैं तौ आहारदान ही औषधदान भया। आहारके बलतैं शास्त्राभ्यास सुखसू होनेतैं ज्ञानदान भी यही भया।

आहार ही तैं प्राणोकी रक्षा होय तातैं एही अभयदान भया ऐसैं ही दानमें तीनूं गर्भित भये ॥ ३६३-३६४ ॥

आगें दानका माहात्म्यहीकूं फेरि कहै हैं,—

इहपरलोयणिरीहो दाणं जो देदि परमभत्तीए ।
रयणत्तयेसु ठविदो संघो सयलो हवे तेण ॥ ३६५ ॥
उत्तमपत्तविसेसे उत्तमभत्तीए उत्तमं दाणं ।
एयदिणे वि य दिण्णं इंदसुहं उत्तम देदि ॥ ३६६ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष ( श्रावक ) इसलोक परलोकके फलकी वाञ्छा रहित हूवा संता परम भक्तिकरि संघके निमित्त दान देहै ता पुरुषने सकल संघकूं रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रविषै स्थाप्या । बहुरि उत्तम पात्रका विशेषके अर्थ उत्तम भक्तिकरि उत्तम दान एक दिन भी दीया हूवा उत्तम इन्द्रपदका सुखकूं देहै । भावार्थ–दानके दीये चतुर्विध संघकी थिरता होय है सो दानके देनेवालेने मोक्षमार्ग ही चलाया कहिये। बहुरि उत्तम ही पात्र उत्तम ही दाताकी भक्ति अर उत्तम ही दान सर्व ऐसी विधि मिलै ताका उत्तम ही फल होय है । इन्द्रादिक पदवीका सुख मिलै है ॥ ३६५-३६६ ॥

आगें चौथा देशावकाशिक शिक्षाव्रतकूं कहै है,—

पुव्वपमाणकदाणं सव्वदिसीणं पुणो वि संवरणं ।
इंदियविसयाण तहा पुणो वि जो कुणदि संवरणं ॥

वासादिकयपभाणं दिणे दिणे लोहकामसमणत्थं ।
सावज्जवज्जणट्ठं तस्स चउत्थं वय होदि ॥ ३६८ ॥

भावार्थ—जो श्रावक पहलें सर्व दिशानिका परिमाण कीया था तिनिका फेरि संवरण करै, संकोचै, बहुरि तैसैं ही पूर्वें इन्द्रियनिका विषयनिका परिमाण भोगोपभोग परिमाण कीया था तिनिकूं फेरि सकोचै। कैसैं सो कहै हैं? वर्ष आदि तथा दिन दिन प्रति कालकी मर्यादा लीये करै। ताको प्रयोजन कहै हैं—अन्तरग तौ लोभकषाय अर काम कहिये इच्छा ताके शमन कहिये घटावनेके अर्थ तथा बाह्य पाप हिंसादिकके वर्जनेके अर्थ करै, तिस श्रावककै चौथा देशावकाशिक नामा शिक्षाव्रत होय है। भावार्थ—पहले दिग्विरति व्रतमें मर्यादा करी थी सो तो नियमरूप थी। अब इहां तिसमें भी कालकी मर्यादा लीये घर हाट गाम आदि ताईकी गमनागमनकी मर्यादा करै तथा भोगोपभोग व्रतमें यमरूप इन्द्रियविषयनिकी मर्यादा करी थी तामें भी कालकी मर्यादा लीये नियम करै। इहा सत्तरा नियम कहै है तिनिकू पालै। प्रतिदिन मर्यादा करबो करै. याम लोभका तथा तृष्णा वाछाका सकोच होय है, बाह्य हिंसादि पापनिकी हाणि होय है। ऐसैं च्यारि शिक्षाव्रत कहै सो ए च्यारों ही श्रावककूं अणुव्रतके यत्नतैं पालनेकी तथा महाव्रतके पालने की शिक्षारूप हैं ॥ ३६७–३६८ ॥

आगें अंतसल्लेखनाकूं संक्षेपकरि कहै हैं,—

बारसवएहिं जुत्तो जो संलेहण करेदि उवसंतो ।
सो सुरसोक्खं पाविय कमेण सोक्खं परं लहदि ३६९

भावार्थ—जो श्रावक बारहव्रतनिकरि सहित हूवा अंत समय उपशम भावनिकरि युक्त होय सल्लेखना करै है सो स्वर्गके सुख पायकरि अनुक्रमतैं उत्कृष्ट सुख जो मोक्षका सुख सो पावै है । भावार्थ—सल्लेखना नाम कपायनिका अर कायके क्षीण करनेका है सो श्रावक बारह व्रत पालै पीछै मरणका समय जाणैं तब पहली सावधान होय सर्व वस्तुसूं ममत्व छोडि कपायनिकूं क्षीणकरि उपशम भावरूप मन्द कपायरूप होय रहै । अर कायकूं अनुक्रमतैं ऊणोदर नीरस आदि तपनिकरि क्षीण करै । पहले ऐसे कायकू क्षीण करै तौ शरीरमैं मलके मूत्रके निमित्ततैं जो रोग होय हैं ते रोग न उपजै । अंतसमै असावधान न होय । ऐसैं सल्लेखना करै अंतसमय सावधान होय अपने स्वरूपमैं तथा अरहंत सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप चिंतवनमैं लीन हूवा तथा व्रतरूप संवररूप परिणाम सहित हूवा सता पर्यायकूं छोडै तौ स्वर्गके सुखनिक पावै । बहुरि तहां भी यह वांछा रहै जो मनुष्य होय व्रत पालूं ऐसैं अनुक्रमतैं मोक्ष सुखकी प्राप्ति होय है ॥

एक्कं पि वयं विमलं सद्दिट्ठी जइ कुणेदि दिढचित्तो ।
तो विविहरिद्धिजुत्तं इदत्तं पावए णियमा ॥ ३७० ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी जीव दृढचित्त हूवा सता एक

भी व्रत अतीचाररहित निर्मल पाले तौ नानाप्रकारकी ऋद्धिनिकरि युक्त इन्द्रपणा नियमकरि पावै. भावार्थ-इहा एक भी व्रत अतीचाररहित पालनेका फल इन्द्रपणा नियमकरि कह्या तहा ऐसा आशय सूचै है जो व्रतनिके पालनेके परिणाम सबके समानजाति है. जहा एक व्रत दृढचित्तकरि पालै तहा अन्य तिसके समान जातीय व्रत पालनेके अर्थ अविनाभावीपणा है सो सर्व ही व्रत पाले कहे. बहुरि ऐसा भी है जो एक आखडी त्यागकू अन्तसमै दृढचित्तकरि पकडि ताविषै लीन परिणाम भये सते पर्याय छूटै तौ तिसकाल अन्य उपयोगके अभावतै यहा धर्म्य ध्यान सहित परगतिकू गमन होय तब उच्चगति ही पावै. यह नियम है. ऐसा आशयतैं एक व्रतका ऐसा माहात्म्य कह्या है इहा ऐसा न जानना जो एक व्रत तौ पालै अर अन्य पाप सेया करै ताका भी ऊचा फल होय. ऐसैं तौ चोरी छोडै परस्त्री सेयबो करै हिंसादिक करबो करै ताका भी उच्च फल होय सो ऐसा नाहीं है ऐसैं दूजी व्रतप्रतिमाका निरूपण कीया बारह भेदकी अपेक्षा यह तीसरा भेद भया ॥ ३७० ॥

आगें तीजी सामायिकप्रतिमाका निरूपण करै हैं,—

जो कुणइ काउसग्गं बारसआवत्तसुजुदो धीरो ।
णमुणदुगं पि करंतो चदुप्पणामो पसण्णप्पा ३७१
चिंततो ससरूवं जिणबिंब अहव अक्खरं परमं ।

ज्झायदि कम्मविवायं तस्स वयं होदि सामइयं ३७२

भावार्थ–जो सम्यग्दृष्टी श्रावक बारह आवर्त सहित च्यारि प्रणामसहित दोय नमस्कार करता संता प्रसन्न है आत्मा जाका, धीर दृढचित्त हूवा संता कायोत्सर्ग करै, तहां अपने चैतन्यमात्र शुद्ध स्वरूपकूं ध्यावता चिंतवन करता संता रहै अथवा जिनबिंबकूं चिंतवता रहै, अथवा परमेष्ठीके वाचक पंच नमोकारकूं चिंतवता रहै, अथवा कर्मके उदयके रसकी जातिका चिंतवन करता रहै ताकै सामायिक व्रत होय है. भावार्थ–सामायिक वर्णन तौ पूर्वं शिक्षाव्रतमें कीया था जो राग द्वेष तजि समभावकरि क्षेत्र काल आसन ध्यान मन वचन कायकी शुद्धताकरि कालकी मर्यादाकरि एकांत स्थानमें बैठे सर्व सावद्ययोगका त्यागकरि धर्मध्यानरूप प्रवर्तै ऐसैं कह्या था इहां विशेष कह्या जो कायसूं ममत्व छोडि कायोत्सर्ग करै तहा आदि अंतविषै दोय तौ नमस्कार करै अर च्यारि दिशाके सन्मुख होय च्यारि शिरोनति करै. बहुरि एक एक शिरोनतिके विषै मन वचन कायकी शुद्धताकी सूचना रूप तीन तीन आवर्त्त करै ते बारह आवर्त भये ऐसैं करि कायसूं ममत्व छोडि निज स्वरूपविषै लीन होय जिन प्रतिमासूं उपयोग लीन करै, तथा पंचपरमेष्ठीका वाचक अक्षरनिका ध्यान करै, तथा उपयोग कोई बाधाकी तरफ जाय तौ तहां कर्मके उदयकी जाति चिंतवै, यह साता वेदनीका फल है यह असाताके उदयकी जाति है, यह अं

-तरायकी उदयकी जाति है इत्यादि कर्मके उदयकू चितवै यह विशेष कह्या बहुरि ऐसा भी विशेष जानना जो शि क्षाव्रतमें तो मन वचनकायसबंधी कोई अतीचार भी लागै तथा कालकी मर्यादा आदि क्रियामें हीनाधिक भी होय है बहुरि इहा प्रतिमाकी प्रतिज्ञा है सो अतीचार रहित शुद्ध पलै है उपसर्ग आदिके निमित्ततें टलै नाहीं है ऐसा जा -नना याके पाच अतीचार हैं मन वचन कायका डुलावना अनादर करणा, भूलिजाणा ए अतीचार न लगावै. ऐसैं सामायिक प्रतिमा बारह भेदकी अपेक्षा चौथा भेद भया। ॥ ३७१–३७२॥

आगें प्रोषधप्रतिमाका भेद कहै हैं,–

सत्तमितेरासिदिवसे अवरह्ले जाइऊण जिणभवणे ।
किरियाकम्म काऊ उववास चउविह गहिय ३७३
गिहवावार चत्ता रात्तिं गमिऊण धम्मचिंताए ।
पच्चूहे उट्ठित्ता किरियाकम्म च कादूण ॥ ३७४ ॥
सत्थब्भासेण पुणो दिवस गमिऊण वदण किच्चा ।
रात्तिं णेदूण तहा पच्चूहे वदण किच्चा ॥ ३७५ ॥
पुज्जणविहिं च किच्चा पत्त गहिऊण णवरि तिविहं पि
भुजाविऊण पत्तं भुंजंतो पोसहो होदि ॥ ३७६ ॥

भाषार्थ–सातैं तेरसिके दिन दोय पहर पीछैं जिन चै-

त्यालय जाय अपराह्नको सामायिक आदि क्रिया कर्मकरि च्यारि प्रकार आहारका त्यागकरि उपवास ग्रहण करै. गृहका समस्त व्योपारकूं छोडिकरि धर्म ध्यानकरि तेरसि सातैंकी राति गमावै प्रभात उठिकरि सामायिक क्रिया कर्म करै आठैं चौदसिका दिन शास्त्राभ्यास धर्म ध्यानकरि गमाय अपराह्नका सामायिक क्रिया कर्म करि राति वैसैं ही धर्मध्यान करि गमाय नवमी पूर्णमासीकै प्रभात सामायिक वन्दनाकरि जिनेश्वरका पूजन विधानकरि तीन प्रकारके पात्रकौं पडगाहि बहुरि तिस पात्रको भोजन कराय आप भोजन करै ताकै प्रौषध होय है. भावार्थ–पहलै शिक्षाव्रतमें प्रौषधकी विधि कही थी, सो भी इहां जाननी. गृहव्यापार भोग उपभोगकी सामग्री समस्तका त्यागकरि एकांतमें जाय बैठै अर सोलह पहर धर्मध्यानमें गमावणी. इहां विशेष इतना जो तहां सोलह पहरका कालका नियम नाहीं कह्या था अर अतीचार भी लागै. अर इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञा है यामें सोलह पहरका उपवास नियमकरि अतीचार रहित करै है. अर याके अतीचार पांच हैं. जो वस्तु जिस काल राखी होय तिसका उठावना मेलना तथा सोवनै बैठनेका सथारा करना सो विना देख्या जाग्या, विना यतनतैं करै सो तीन अतीचार तौ ए अर उपवासकैविषै अनादर करै, प्रीति नाहीं करै अर क्रिया कर्ममें भूलि जाय ए पांच अतीचार लगावै नाहीं ॥ ३७३–३७६ ॥

आगे प्रोपधका माहात्म्य कहै हैं,—

एक्क पि णिरारंभ उववास जो करेदि उवसंतो ।
बहुविहसंचियकम्मं सो णाणी खवदि लीलाए ३७७

भापार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी आरम्भका त्यागकरि उपशम भाव मंदकषाय रूप हूवा संता एक भी उपवास करै है सो बहुत भवमें सञ्चित कीये बांधे जे कर्म, तिनिकौं लीला मात्रमें क्षय करै है भावार्थ—कषायविषय आहारका त्यागकरि इसलोक परलोकके भोगकी आशा छोडि एक भी उपवास करै सो बहुत कर्मकी निर्जरा करै है तो जो प्रोपधम तिमा अगीकारकरि पक्षमें दोय उपवास करै ताका कहा कहणा ? स्वर्गसुख भोगि मोक्षकू पावै है ॥ ३७७ ॥

आगे आरम्भ आदिका त्यागविना उपवास करै ताकै कर्मनिर्जरा नाहीं हा है ऐसैं कहै हैं,—

उववासं कुव्वंतो आरंभं जो करेदि मोहादो।
सो णियदेहं सोसदि ण झाडए कम्मलेसं पि ३७८

भापार्थ—जो उपवास करता संता गृहकार्यके मोहतैं गृहका आरम्भ करै है सो अपनी देहकू सोखै है कर्म निर्जरा का तौ लेशमात्र भी ताकै नाहीं होय है भावार्थ—जो विषय कषाय छोड्या विना केवल आहारमात्र ही छोडै है, गृहकार्य समस्त करै है, सो पुरुष देहहीकू केवल सोखै है ताकै कर्मनिर्जरा लेस मात्र भी नाहीं हो है ॥ ३७८ ॥

आगें सचित्तत्यागप्रतिमाकौं कहै है,—

सच्चित्तं पत्तफलं छल्लीमूलं च किसलयं बीजं ।
जो णय भक्खदि णाणी सचित्तविरओ हवे सो वि ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक पत्र फल त्वक छालि मूल कूंपल बीज ए सचित्त नाहीं भक्षण करै सो सचित्तविरती श्रावक कहिये. भावार्थ—जीवसहित होय ताकौं सचित्त कहिये है सो पत्र फल छालि मूल बीज कूंपल इत्यादि हरित वनस्पति सचित्तकूं न खाय सो सचित्तविरत प्रतिमाका धारक श्रावक होय है * । ॥ ३७९॥

जो ण य भक्खेदि सयं तस्स ण अण्णस्स जुज्जदे दाउं
भुत्तस्स भोजिदस्सहि णत्थि विसेसो तदो को वि ॥

भावार्थ—बहुरि जो वस्तु आप न भखै ताकू अन्यकूं देना योग्य नाहीं है जातैं खानेवाले अर खुवावनेवालेमें किछू विशेष नाहीं है कृतका अर कारितका फल समान है तातैं जो वस्तु आप न खाय सो अन्यकूं भी न खुवाइये तब सचित्त त्याग व्रत पलै ॥ ३८० ॥

---

* सुक्कं पक्कं तत्तं अंबिललवणेहिं मिस्सियं दव्वं ।
जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं ॥ १ ॥

भावार्थ सूखा हुवा, पकाया हुवा, खटाई अर लवणसे, मिला हुवा तथा जो यंत्रसे छिन्नभिन्न किया हुवा अर्थात् चोंथाहुवा हो ऐसा सब हरितकाय प्रासुक कहिये जीवरहित अचित्त होता है ।

जो वज्जेदि सचित्तं दुज्जय जीहा वि णिज्जिया तेण
दयभावो होदि किओ जिणवयण पालियं तेण ३८

अर्थ–जो श्रावक सचित्तका त्याग करै है तिसनै जिह्वा इन्द्रियका जीतना कठिन सो भी जीता, बहुरि दयाभाव प्रगट किया, बहुरि जिनेश्वर देवके वचन पाले भावार्थ–सचित्त का त्यागमें बडे गुण हैं, जिह्वा इन्द्रियका जीतना होय हैं प्राणीनिकी दया पलै है बहुरि भगवानके वचन पलै है, जातैं हरित कायादिक सचित्तमें भगवानने जीव कहे हैं सो आज्ञा पालन भया याका अतीचार जो सचित्ततैं मिली व स्तु तथा सचित्ततैं बध सबधरूप इत्यादिक हैं ते अतीचार ल गावै नाहीं तब शुद्ध त्याग होय तब प्रतिमाकी प्रतिज्ञा होय है भोगोपभोग व्रतमें तथा देशावकाशिक व्रतमें भी सचित्त का त्याग कहा है परन्तु निरतीचार नियमरूप नाहीं इहा नियमरूप निरतीचार त्याग होय है, ऐसैं सचित्त त्याग पच-मी प्रतिमा अर बारहभेदनिमें छठा भेद वर्णन किया २८१

आगें रात्रिभोजनत्याग प्रतिमाकू कहै हैं,—

जो चउविहं पि भोज्ज रयणीए णेव भुजदे णाणी ।
ण य भुजावइ अण्णं णिसिविरओ सो हवे भोज्जो ।

भावार्थ–जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक रात्रिविषै च्यारि प्रकार अशन पान खाद्य स्वाद आहारकू नाहीं भोगवै है, नाहीं खाय है, बहुरि परकू नाहीं भोजन करावै है सो आ-

बक रात्रि भोजनका त्यागी होय है भावार्थ–रात्रि भोजनका तौ मांसके दोषकी अपेक्षा तथा रात्रिविषै बहुत आरंभतैं त्रस घातकी अपेक्षा पहली दूजी प्रतिमामें ही त्याग करायें हैं परतु यहां कृत कारित अनुमोदना अर मन वचन कायके कोई दोष लागै तातैं शुद्धत्याग नाहीं. इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञाविषै शुद्ध त्याग होय है तातैं प्रतिमा कही है ॥ ३८२ ॥

जो णिसिभुत्तिं वज्जदि सो उववासं करेदि छम्मासं
संवच्छरस्स मज्झे आरंभं मुयदि रयणीए ॥ ३८३ ॥

भावार्थ जो पुरुष रात्रि भोजनकौ छोडै है सो वरस दिनमें छह महीनाका उपवास करै है बहुरि रात्रि भोजनके त्यागतै भोजन सबंधी आरंभ भी त्यागै है बहुरि व्यापार आदिका भी आरंभ छोडै है सो महान दया पालै है भावार्थ– जो रात्रि भोजन त्यागै सो वरसदिनमें छह महीनाका उपवास करै है. बहुरि अन्य आरंभका भी रात्रिमें त्याग करै है बहुरि अन्य ग्रंथनिमें इस प्रतिमाविषै दिनमें स्त्री सेवनका भी मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि त्याग कह्या है. ऐसैं रात्रिभुक्तत्यागप्रतिमाका निरूपण कीया. यह प्रतिमा छट्ठी बारह भेदनिमें सातवा भेद भया ॥ ३८३ ॥

आगें ब्रह्मचर्य प्रतिमाका निरूपण करै है,—

सव्वेसिं इत्थीणं जो अहिलासं ण कुव्वदे णाणी ।
मण वाया कायेण य बंभवई सो हवे सदिओ ३८४

भावार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक सर्व ही च
प्रकारकी स्त्री देवांगना मनुष्यणी तिर्यंचणी चित्रामकी इ
इ स्त्रीका अभिलाष मन वचनकायकरि न करै सो ब्रह
तका धारक होहै। कैसा है? दयाका पालनहारा है. भा
र्व स्त्रीका मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि त्
याग करै सो ब्रह्मचर्य प्रतिमा है ॥ ३८४ ॥

आगें आरंभविरति प्रतिमाको कहै हैं,—

जो आरंभ ण कुणदि अण्णं कारयदि णेय अणुम
हिंसासतट्ठमणो चत्तारंभो हवे सो हि ॥ ३८५

भावार्थ—जो श्रावक गृहकार्यसंबंधी कछू भी आर
करै अन्य पास करावै नाहीं. बहुरि करै ताकों भला
नाहीं सो निश्चयतैं आरंभका त्यागी होय है कैसा है ? f
भयभीत है मन जाका. भावार्थ—गृहकार्यका आरंभका
वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि त्याग करै सो इ
त्याग प्रतिमाधारक श्रावक होय है. यह प्रतिमा आठ
बारह भेदनिमें नवमा भेद है ॥ ३८५ ॥

आगें परिग्रहत्याग प्रतिमाकूं कहै हैं—

जो परिवज्जइ गंथं अब्भंतर बाहिरं च साणंदो
पावं ति मण्णमाणो णिग्गंथो सो हवे णाणी ३

भावार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टि श्रावक अभ्यंतरका
बाह्यका यह जो दो प्रकारका परिग्रह है सो पापका

रूप है ऐसैं मानता सता आनन्द सहित छोडै है सो परिग्रहका त्यागी श्रावक होय है भावार्थ—अभ्यतरका प्रथमैं मिथ्यात्व अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण कषाय तौ पहिले छुटि गये हैं. बहुरि प्रत्याख्यानावरण अर तिसहीके लार लागे हास्यादिक अर वेद तिनिकौ घटावै है. बहुरि बाह्यके धनधान्य आदि सर्वका त्याग करै है. बहुरि परिग्रहके त्यागतैं बडा आनन्द मानै है जातैं तिनिकै साचा वैराग्य हो है तिनिकै परिग्रह पापरूप अर बड़ी आपदा दीखै है. तातैं त्याग करतैं बडा सुख मानै है ॥ ३८६ ॥

वाहिरगंथविहीणा दलिद्दमणुआ सहावदो होंति।
अब्भंतरगंथं पुण ण सक्कदे को वि छंडेदुं ॥ ३८७ ॥

भाषार्थ—बाह्य परिग्रहकरि रहित तौ दरिद्री मनुष्य स्वभावहीतैं होय है. याके त्यागमैं अचिरज नाहीं बहुरि अभ्यंतर परिग्रहकू कोई भी छोडनेकू समर्थ न होयहै भावार्थ, जो अभ्यंतर परिग्रहकू छोडै है ताकी बडाई है, अभ्यतरका परिग्रह सामान्यपणै ममत्व परिणाम है सो याको छोडै सो परिग्रहका त्यागी कहिये ऐसैं परिग्रहत्याग प्रतिमाका स्वरूप कह्या प्रतिमा नवमी है बारह भेदनिमैं दशमा भेद है॥

आगैं अनुमोदनविरति प्रतिमाकौं कहै है,—

जो अणुमणण ण कुणदि गिहत्थकज्जेसु पावमूलेसु।
भवियव्वं भावंतो अणुमणविरओ हवे सो दु ॥३८८॥

काल आया जाणे तब आराधनासहित होय एकाग्रचित्तकरि परमेष्ठीका ध्यानमें तिष्ठे समाधिकरि प्राण छोडै, सो साधक कहावै, ऐसा व्याख्यान है. बहुरि कह्या है जो गृहस्थ द्रव्यका उपार्जन करै ताके छह भाग करै तामें एक भाग तौ धर्मके अर्थ दे एक भाग कुटुंबके पोषणेमें दे एक भाग अपने भोगके अर्थ खरचै, एक अपने स्वजन समूह अर्थ व्योहारमें खरचै, बाकी दोय भाग रहैं ते अमानत भंडार राखै वह द्रव्य बडा पूजन अथवा प्रभावना तथा काल दुकालमें अर्थ आवै ऐसें कीये गृहस्थके आकुलता न उपजै है धर्म सधै है. इहां कथन संस्कृतटीकाकारने बहुत कीया है तथा पहले गाथाके कथनमें अन्य ग्रन्थनिका कथन सधै है कथन बहुत कीया है सो संस्कृत टीकातैं जानना. इहां तौ गाथाटीका अर्थ संक्षेपकरि लिख्या है. विशेष जाननेकी इच्छा होय सो रयणसार, वसुनंदिकृतश्रावकाचार, रत्नकरण्डश्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अमितगतिश्रावकाचार, प्राकृतदोहाबंध श्रावकाचार, इत्यादि ग्रन्थनितैं जानूं, इहां संक्षेप कथन है, ऐसैं बारहभेदरूप श्रावकधर्मका कथन कीया ३९१

आगें मुनिधर्मका व्याख्यान करैं हैं,—

जो रयणत्तयजुत्तो खमादिभावेहिं परिणदो णिच्चं ।
सव्वत्थ वि मज्झत्थो सो साहू भण्णदे धम्मो ३९२

भावार्थ–जे पुरुष रत्नत्रय कहिये निश्चय व्यवहाररूप ... बहुरि क्षमादिभा

हिये उत्तम क्षमाकौ आदि देकर दश प्रकारका धर्म तिसकरि नित्य कहिये निरन्तर परिणाम सहित होय, बहुरि मध्यस्थ कहिये सुखदुःख तृण कंचन लाभ अलाभ शत्रु मित्र निन्दाप्रशंसा जीवन मरण आदिविषै समभावरूप वर्ते, रागद्वेषकरि रहित होय, सो साधु कहिये तिसहीकौ धर्म कहिये, जातैं जामैं धर्म है, सो ही धर्मकी मूर्ति है, सो ही धर्म है। भावार्थ—इहा रत्नत्रयकरि सहित कहनेमैं चारित्र तेरहप्रकार है सो मुनिका धर्म महाव्रत आदि है सो वर्णन किया चाहिये सो यहा दश प्रकार धर्मका विशेष वर्णन है तामैं महाव्रत आदिका भी वर्णन गर्भित है सो जानना ॥ ३९२ ॥

अब दशप्रकार धर्मका वर्णन करै हैं,—

सो चिय दहप्पयारो खमादि भावेहिं सुक्खसारेहिं ।
ते पुण भणिज्जमाणा मुणियव्वा परमभत्तीए ३९३

भावार्थ—सो मुनिधर्म क्षमादि भावनकरि दश प्रकार है कैसा है सौख्यसार कहिये सुख यातैं होय है. अथवा सुख याविषै है अथवा सुखकरि सार है ऐसा है बहुरि ते दशप्रकार आगैं कह्या हुवा धर्म भक्तिकरि, उत्तम धर्मानुरागकरि जानने योग्य है. भावार्थ—उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तपः, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य ऐसैं दश प्रकार मुनिधर्म है सो याका न्यारा न्यारा व्याख्यान आगैं करै हैं सो जानना ॥ ३९३ ॥

अब पहिले ही उत्तमक्षमाधर्मकू कहै है,—

कोहेण जो ण तप्पदि सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे तस्स खिमा णिम्मला होदि ३९४

भाषार्थ—जो मुनि देव मनुष्य तिर्यंच आदिकरि रौद्र भयानक घोर उपसर्ग करतें संतें भी क्रोधकरि तप्तायमान न होय तिस मुनिकै निर्मल क्षमा होय है भावार्थ—जैसे श्रीदत्त मुनि व्यंतरदेवकृत उपसर्गकू जीति केवलज्ञान उपजाय मोक्ष गये, तथा चिलातीपुत्र मुनि व्यंतरकृत उपसर्गकू जीति सर्वार्थसिद्धि गये, तथा स्वामिकार्तिकेयमुनि क्रौंचराजाकृत उपसर्ग जीति देवलोक पाया तथा गुरुदत्त मुनि कपिल ब्राह्मणकृत उपसर्ग जीति मोक्ष गये तथा श्रीधन्य मुनि चक्र राजकृत उपसर्गकौ जीति केवल उपजाय मोक्ष गये, तथा पाचसै मुनि दंडक राजाकृत उपसर्ग जीति सिद्धि पाई, तथा राजकुमारमुनि पांशुलश्रेष्ठीकृत उपसर्ग जीति सिद्धि पाई. तथा चाणिक्य आदि पांचसै मुनि मन्त्रीकृत उपसर्गकौ जीति मोक्ष गये, तथा सुकुमाल मुनि स्यालनीकृत उपसर्ग सहकरि देव भये, तथा श्रेष्ठीके बाईस पुत्र नदीके प्रवाहविषै पद्मासन शुभ ध्यानकरि मरणकरि देव भये, तथा सुकोशल मुनि व्याघ्रीकृत उपसर्ग जीति सर्वार्थसिद्धि गये, तथा श्रीपणिकमुनि जलका उपसर्ग सहकरि मुक्ति गये ऐसैं देव मनुष्य पशु अचेतन कृत उपसर्ग सहे, तहां क्रोध न कीया तिनिकै उत्तम क्षमा भई ऐसैं उपसर्ग करनेवालेतैं क्रोध न उपजै, तब उ-

त्तम क्षमा होय है तहां क्रोधका निमित्त आवै तो तहा ऐसा चिंतवन करै जो कोई मेरे दोष कहै ते मोविषै विद्यमान है तौ यह कहा मिथ्या कहै है ? ऐसैं विचारि क्षमा करणी. बहुरि मोविषै दोष नाहीं है तो यह विना जाण्या कहै है तहा अज्ञानपरि कहा कोप ? ऐसैं विचारि क्षमा करणी. बहुरि अज्ञानीका बालस्वभाव चिंतना, जो बालक तो प्रत्यक्ष भी कहै यह तो परोक्ष कहै है, यह ही भला है. बहुरि जो प्रत्यक्ष भी कुवचन कहै तो यह विचारना, जो बालक तौ ताडन भी करै यह तौ कुवचन ही कहै है, ताडै नाहीं है, यह ही भला है बहुरि जो ताडन करै तो यह विचारना जो बालक अज्ञानी तो प्राणघात भी करै, यह ताडै ही है प्राणघात तो न किया यह ही भला है बहुरि प्राणघात करै तो यह विचारना, जो अज्ञानी तौ धर्मका भी विध्वंस करै यह प्राणघात करै है, धर्मका विध्वंस तौ नाहीं करै है. बहुरि विचारै जो मैं पापकर्म पूर्वै उपजाये थे, ताका यह दुर्वचनादिक उपसर्ग फल है, मेरा ही अपराध है पर तौ निमित्त मात्र है इत्यादि चिंतवनतैं उपसर्ग आदिककै निमित्ततैं क्रोध नाहीं उपजै तब उत्तमक्षमाधर्म होय है ॥ ३९४ ॥

आगैं उत्तम मार्दव धर्मकौं कहै है,—

उत्तमणाणपहाणो उत्तमतवयरणकरणसीलो वि ।
अप्पाण जो हीलदि मद्दवरयणं भवे तस्स ॥ ३९५ ॥

भावार्थ—जो मुनि उत्तम ज्ञानकरि तौ प्रधान होय,

उत्तम तपश्चरण करनेका जाका स्वभाव होय तौऊ जो अपने आत्माकौं मदरहित करै अनादररूप करै तिस मुनिकै मार्दव नामा धर्मरत्न होय है. भावार्थ–सकल शास्त्रका जाननहारा पंडित होय तौऊ ज्ञानमद न करै यह विचारै जो मौतैं बडे अवधि मनःपर्यय ज्ञानी हैं केवलज्ञानी सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी हैं मैं कहा हौ अल्पज्ञ हौं. बहुरि उत्तम तप करै तौऊ ताका मद न करै. आप सब जाति कुल बल विद्या ऐश्वर्य तप रूप आदिकरि सर्वतैं बडे हैं तौऊ परकृत अपमानकौं भी सहै हैं तहां गर्वकरि कषाय न उपजावै तहां उत्तममार्दवधर्म होय है ॥ ३९५ ॥

आगैं उत्तम आर्जवधर्मकौं कहै है—

जो चिंतेइ ण वंकं कुणदि ण वंकं ण जंपए वंकं ।
ण य गोवदि णियदोसं अज्जवधम्मो हवे तस्स ३९६

भाषार्थ–जो मुनि मनविषै वक्रता न चितवै, बहुरि कायकरि वक्रता न करै बहुरि वचनकरि वक्रता न बोलै, बहुरि अपने दोषनिकौं गोपै नाहीं, छिपावै नाहीं, तिस मुनिकै आर्जव धर्म उत्तम होय है भावार्थ–मनवचनकायविषै सरलता होय जो मनमें विचारै सो ही वचनकरि कहै, सो ही कायकरि करै, परकौं भुलावा देने ठिगने निमित्त विचारना तो और कहना और, करना और तहां माया कषाय प्रबल होय है. सो ऐसैं न करै निष्कपट होय प्रवर्त्तै. बहुरि अपना दोष

छिपावै नाहीं जैसा होय तैसा बालककी ज्यों गुरुनिपासि कहै तहां उत्तम आर्जवधर्म होय है. ।

आगें उत्तम शौचधर्मको कहै हैं,—

समसंतोसजलेण य जो धोवदि तिह्णलोहमलपुंजं ।
भोयणगिद्धिविहीणो तस्स सुचित्तं हवे विमलं ३९७

भावार्थ—जो मुनि समभाव कहिये रागद्वेषरहित परिणाम अर संतोष कहिये संतुष्ट भाव सो ही भया जल, ताकरि तृष्णा अर लोभ सो ही भया मलका समूह ताकौं धोवै बहुरि भोजनकी गृद्धि कहिये अति चाह ताकरि रहित होय तिस मुनिका चित्त निर्मल होय है. ताकै उत्तम शौच धर्म होय है. भावार्थ—समभाव तौ तृण कंचनको समान जानना, अर संतोष संतुष्टपना, तृप्तिभाव अपने स्वरूप ही विषै सुख मानना, ऐसैं भावरूप जलकरि, तृष्णा तौ आगामी मिलनेकी चाह अर लोभ पाये द्रव्यादिकविषै अति लिप्तपणा, ताके त्यागविषै अति खेद करना सो ही भया मल ताके धोवनेतैं मन पवित्र होय है बहुरि मुनिकै अन्य त्याग तौ होय ही है अर आहारका ग्रहण है ताविषै भी तीव्र चाह नाहीं राखै, लाभ अलाभ सरस नीरसविषै समबुद्धि रहै, तब उत्तम शौचधर्म होय है. बहुरि लोभकी च्यारि प्रकार प्रवृत्ति है—जीवितका लोभ, आरोग्य रहनेका लोभ, इन्द्रिय बनी रहनेका लोभ, उपयोगका लोभ । तहां अपना अर

सबही स्वजन मित्र आदिके दोऊ कू चाहै तब आठ भेदरूप प्रवृत्ति है सो जहा सबहीका लोभ नाहीं होय तहा शौचधर्म है ॥

आगैं उत्तम सत्यधर्मकूं कहै हैं—

जिणवयणमेव भासदि त पालेदुं असक्कमाणो वि ।
ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो ३९८

भावार्थ—जो मुनि जिनसूत्रहीके वचनकूं कहै, बहुरि तिनिमें जो आचार आदि कह्या है ताकूं पालनेकूं असमर्थ होय तौऊ अन्य प्रकार न कहै बहुरि व्यवहार करि भी अलीक कहिये असत्य न कहै सो मुनि सत्यवादी है ताकै उत्तम सत्य धर्म होय है भावार्थ—जो जिनसिद्धान्तमें आचार आदिका जैसा स्वरूप कह्या होय वैसा ही कहै ऐसा नाहीं जो आपस न पाल्या जाय तब अन्यप्रकार कहै यथावत् न कहै अपना अपमान होय तातैं जैसैं तैसैं कहै अर व्यवहार जो भोजन आदिका व्यापार तथा पूजा प्रभावना आदिका व्योहार तिसविषै भी जिनसूत्रके अनुसार वचन कहै अपनी इच्छातैं जैसैं तैसैं न कहै. बहुरि इहां दश प्रकार सत्यका वर्णन है नामसत्य, रूपसत्य, स्थापनासत्य, प्रतीत्यसत्य, सवृतिसत्य, सयोजनासत्य, जनपदसत्य, देशसत्य, भावसत्य, समयसत्य सो मुनिनिका मुनिनितैं तथा श्रावकनितैं वचनालापका व्यवहार है. तहा बहुत भी वचनालाप होय तब सूत्रसिद्धात अनुसार इस दशप्रकारका सत्यरूप वचनकी भी प्रवृत्ति होय है । तहा अर्थ गुण विना भी वक्ता

की इच्छातैं काहू वस्तुका नाम संज्ञा करै सो तौ नाम सत्य है १। बहुरि रूपमात्रकरि कहिये जैसैं चित्राममें काहूका रूप लिखि कहै कि यह सुपेद वर्ण फलाणा पुरुष है सो रूप-सत्य है २. बहुरि किसी प्रयोजनके अर्थ काहूकी मूर्ति स्थापि कहै सो स्थापना सत्य है ३. बहुरि काहू प्रतीतिके अर्थ आश्रयकरि कहिये सो प्रतीति सत्य है जैसैं ताल ऐसा परिमाण विशेष है ताके आश्रय कहै यह पुरुषताल है अथवा लंबा कहै तौ छोटेकू प्रतीत्यकरि कहै, ४. बहुरि लोक व्यवहारके आश्रयकरि कहै सो संवृतिसत्य है. जैसैं कमल के उपजनेकू अनेक कारण हैं तौऊ पंकविषै भया तातैं पंकज कहिये ५. बहुरि वस्तुनिकूं अनुक्रमतैं स्थापनेका वचन कहै सो संयोजना सत्य है, जैसैं दशलक्षणका मंडल माडै तामैं अनुक्रमतैं चूर्णके कोठे करै अर कहै कि यह उत्तम क्षमाका है, इत्यादि जोडरूप नाम कहै. अथवा दूसरा उदाहरण जैसैं जौहरी मोतीनिकी लडी करै तिनिमें मोतिनकी संज्ञा थापि लीनी है सो जहा जो चाहिये तिसही अनुक्रमतैं मोती पोवै ६. बहुरि जिस देशमें जैसी भाषा होय सो कहना सो जनपदसत्य है ७ बहुरि ग्राम नगर आदिका उपदेशक वचन सो देशसत्य है जैसैं वाडि चौगिरद होय ताकू ग्राम कहिये ८ बहुरि छद्मस्थके ज्ञान अगोचर अर संयमादिक पालनेके अर्थ जो वचन सो भावसत्य है. जैसैं काहू वस्तुमें छद्मस्थके ज्ञानके अगोचर जीव होय तौऊ अपनी दृष्टिमें

जीव न देखि आगम अनुसार कहै कि यह प्रासुक है ९ ब-हुरि जो आगमगोचर वस्तु है तिनिकूं आगमके वचनानुसार कहना सो समयसत्य है जैसें पल्य सागर इत्यादिक कहना १०. बहुरि दशप्रकार सत्यका कथन गोम्मटसारमें है तहां सात नाम तौ येही हैं अर तीनके नाम इहां तौ देश, संयोजना, समय हैं अर तहां, संभावना, व्यवहार, उपमा ए हैं. बहुरि उदाहरण अन्य प्रकार हैं सो विवक्षाका भेद जानना विरोध नाहीं. ऐसैं सत्यकी प्रवृत्ति होय है सो जिनसूत्रानुसार वचन प्रवृत्ति करै ताकै सत्यधर्म होय है ॥ ३९८ ॥

आगें उत्तम संयमधर्मकूं कहै हैं,—

जो जीवरक्खणपरो गमणागमणादिसव्वकम्मेसु ।
तणछेदं पि ण इच्छदि संजमभावो हवे तस्स ३९९

भाषार्थ—जो मुनि गमन आगमन आदि सर्व कार्यनिविषै तृणका छेदमात्र भी नाहीं चाहै न करै कैसा है मुनि ? जीवनकी रक्षाविषै तत्पर है ऐसे मुनिकै संयमभाव होय है. भावार्थ—संयम दोय प्रकार कह्या है इन्द्रिय मनका वश करणा अर छह कायके जीवनिकी रक्षा करनी. सो इहां मुनिकै आहार विहार करनेविषै गमन आगमन आदिका काम पडै तिनि कार्यनिमें ऐसे परिणाम रहैं जो मैं तृणमात्रका भी छेद नाहीं करूं. मेरा निमित्ततैं काहूका अहित न होय, ऐसैं यत्नरूप प्रवर्त्तै है जीवदयाविषै ही तत्पर रहै है इहां टीकाकार अन्य ग्रंथनिवैं संयमका विशेष वर्णन

कीया है. ताका संक्षेप—जो सयम दोयप्रकार है उपेक्षासंयम, अपहृतसंयम। तहा जो स्वभावहीतैं रागद्वेषकूं छोडि गुप्ति धर्मविषै कायोत्सर्ग ध्यानकरि तिष्ठै तहां ताकै उपेक्षासंयम कहिये उपेक्षा नाम उदासीनता वा वीतरागताका है. बहुरि अपहृतसंयमके तीन भेद हैं उत्कृष्ट मध्यम जघन्य। तहा चालता बैठतां जो जीव दीखै ताकू आप टलिजाय जीवकू सरकावै नाहीं सो उत्कृष्ट है बहुरि कोमलमयूरकी पीछीकरि जीवकू सरकावै सो मध्यम है बहुरि अन्य तृणादिकतें सरकावै सो जघन्य है. इहा अपहृत सयमीकू पंच समितिका उपदेश है. तहा आहार विहारके अर्थ गमन करै सो प्रासुक मार्ग देखि जूडा प्रमाण भूमिकू देखतैं मद मंद अति यत्नतैं गमन करै, सो ईर्यासमिति है. बहुरि धर्मोपदेश आदिकै निमित्त वचन कहै सो हितरूप मर्यादनै लीया सन्देहरहित स्पष्ट अक्षररूप वचन कहै. बहु प्रलाप आदि वचनके दोप हैं तिनितैं रहित बोलै सो भाषासमिति है बहुरि कायकी स्थितिकै अर्थ आहार करै सो मनवचनकाय कृत कारित अनुमोदनाका दोप जामें न लागे, ऐसा परका दीया छियालीस दोष, बत्तीस अन्तराय टालि चौदहमलरहित अपने हाथ विषै लेणा अतियत्नतैं शुद्ध आहार करै सो एषणा समिति है. बहुरि धर्मके उपकरणनिकू उठावना धरना सो अतियत्नतैं भूमिकू देखि उठावना धरना सो आदान निक्षेपण समिति है बहुरि अगका मल मूत्रादिक क्षेपण सो त्रस थावर जीवनिकूं देखि टालिकरि यत्नतैं क्षेपना सो प्रतिष्ठापना

समिति है ऐसैं पांच समिति पालैं तिनिके संयम पलै है. जातैं ऐसा कह्या है जो यत्नाचार प्रवर्तै है ताके बाह्य जीव कूं बाधा होय तौऊ बंध नाहीं है अर यत्नरहित प्रवर्तै है ताके बाह्य जीव मरो तथा मति मरो बंध अवश्य होय है. बहुरि अपहृत संयमके पालनेकै अर्थ आठ शुद्धीनिका उपदेश है. भावशुद्धि १ कायशुद्धि २ विनयशुद्धि ३ ईर्यापथशुद्धि ४ भिक्षाशुद्धि ५ प्रतिष्ठापनाशुद्धि ६ शयनासनशुद्धि ७ वाक्यशुद्धि ८।

तहां भावशुद्धि तौ कर्मका क्षयोपशमजनित है, सो तिस बिना तौ आचार प्रकट नहीं होय. शुद्ध उज्वल भींतिमें चित्राम शोभायमान दीखै तैसैं बहुरि दिगंबररूप सर्व विकारनितैं रहित यत्नरूप जाविषे प्रवृत्ति शान्त मुद्रा जाकूं देखि अन्यकै भय न उपजै तथा आप निर्भय रहै ऐसी कायशुद्धि है बहुरि जहां अरहंत आदिविषै भक्ति गुरुनिकै अनुकूल रहना ऐसैं विनयशुद्धि है. बहुरि मुनि जीवनिके ठिकाने सर्व जानै हैं तातैं अपने ज्ञानतैं सूर्यके उद्योगतैं नेत्र इंद्रियतैं मार्गकूं अतियत्नतैं देखिकरि गमन करना सो ईर्यापथशुद्धि है. बहुरि भोजनकूं गमन करै तब पहले तौ अपने मल मूत्रकी बाधाकूं परखै, अपना अंगकूं नीकै प्रतिलेखै, बहुरि आचार सूत्रमें कह्या तैसैं देश काल स्वभाव विचारै. बहुरि एती जायगा आहारको प्रवेश करै नाहीं. गीत नृत्य वादित्रकी जिनकै आजीविका होय, तिनके घर जाय नाहीं. जहां प्रसूति भई होय तहां जाय नाहीं जहां मृत्यु भई होय तहां

जाय नाहीं. वेश्याकै जाय नाहीं पापकर्म हिंसाकर्म होय तहां जाय नाहीं. दीनका घर, अनाथका घर, दानशाला, यज्ञशाला, यज्ञ, पूजनशाला, विवाह आदि मंगल जहां होय इनिकै आहार निमित्त जाय नाहीं. धनवानकै जाना कि निर्धनकै जाना ऐसा विचारै नाहीं लोकनिंद्य कुलके घर जाय नाहीं दीनवृत्ति करै नाहीं. प्राशुक आहार ले. आगममें कहा तैसें दोष अंतराय टालि निर्दोष आहार ले, सो भिक्षाशुद्धि है इहां लाभ अलाभ सरस नीरसविषै समानबुद्धि राखै है सो भिक्षा पांच प्रकार कही है. गोचर १ अक्षम्रक्षण २ उदराग्निप्रशमन ३ भ्रमराहार ४ गर्तपूरण ५. तहां गऊकी ज्यों दातारकी सम्पदादिककी तरफ न देखै, जैसा पाया तैसा आहार लेनेहीमें चित्त राखै, सो गोचरी वृत्ति है. बहुरि जैसें गाडीकौ वांगि ग्राम पहुचै, तैसें संयमका साधक काय, ताकें निर्दोष आहार दे संयम साधै, सो अक्षम्रक्षण है. बहुरि अग्नि लागीकूं जैसें तैसें पाणीतैं बुझाय घर बचावै, तैसें क्षुधा अग्निकूं सरस नीरस आहारकरि बुझाय अपना परिणाम उज्ज्वल राखै सो उदराग्निप्रशमन है. बहुरि भ्रमर जैसें फूलकं बाधा नाहीं करै अर वासना ले, तैसें मुनि दातारकूं बाधा न उपजाय आहार ले सो भ्रमराहार है बहुरि जैसें शुभ्र कहिये खाडा ताकूं जैसें तैसें भरतकरि भरिये तैसें मुनि स्वादु निःस्वादु आहारकरि उदर भरै सो गर्तपूरण कहिये. ऐसें भिक्षाशुद्धि है. बहुरि मल मूत्र श्लेष्म थूक आदि क्षेपै सो जीवनिकूं देखि यत्नतैं क्षेपै सो प्रतिष्ठा-

पना शुद्धि है बहुरि शयनासनशुद्धि जहां स्त्री दुष्ट जीव नपुंसक चोर मद्यपायी जीववधके करणहारे, नीच लोक बसते होंय तहां न वसै. बहुरि शृंगार विकार आभूषणसुन्दर वेश ऐसी जो वेश्यादिक तिनिकी क्रीडा जहां होय, सुंदर गीत नृत्य वादित्र जहां होते होंय, बहुरि जहां विकारके कारण नग्न गुह्यप्रदेश जिनमैं दीखैं ऐसे चित्राम होय, बहुरि जहां हास्य महोत्सव घोडा आदिक शिक्षा देनेका ठिकाना तथा व्यायामभूमि होय, तहां मुनि न वसै जिनतैं क्रोधादिक उपजै ऐसे ठिकाने न वसै सो शयनासनशुद्धि है. जेतैं कायोत्सर्ग खडा रहनेकी शक्ति होय तेतैं स्वरूपमें लीन होय खडे रहै पीछैं बैठै तथा खेदके मेटनेक अल्पकाल सोवै बहुरि वाक्यशुद्धि जहां आरम्भकी प्रेरणारहित वचन प्रवर्तै युद्ध, काम, कर्कश, प्रलाप, पैशुन्य, कठोर, परपीडा करनेवाले वाक्य न प्रवर्तै । अनेक विकथाके भेद है तिनिरूप वचन न प्रवर्त्ते. जिनिमैं व्रत शीलका उपदेश अपना परका जामैं हित होय मीठा मनोहर वैराग्यकू कारण अपनी प्रशंसा परकी निन्दातैं रहित संयमी योग्य वचन प्रवर्तै सो वचनशुद्धि है. ऐसैं संयम धर्म है संयमके पांच भेद कहे हैं, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात ऐसैं पांच भेद है इनिका विशेष व्याख्यान अन्यग्रन्थनितैं जानना ॥ ३९९ ॥

आगें तप धर्मकू कहै हैं,—

इहपरलोयसुहाणं णिरवेक्खो जो करेदि समभावो ।
विविहं कायकिलेसं तवधम्मो णिम्मलो तस्स ४००

भावार्थ–जो मुनि इस लोक परलोकके सुखकी अपेक्षा सू रहित हूवा संता, बहुरि सुखदुःख शत्रु मित्र तृण कंचन निंदा प्रशंसा आदिविषै रागद्वेषरहित समभावी हूवा संता अनेक प्रकार कायक्लेश करै है तिस मुनिके निर्मल तपधर्म होय है। भावार्थ–चारित्रके अर्थ जो उद्यम अर उपयोग करै सो तप कह्या है। तहां कायक्लेश सहित ही होय है, तातैं आत्माकी विभावपरिणतिका संस्कार हो है ताकू मेटनेका उद्यम करै, अपने शुद्धस्वरूप उपयोगकू चारित्रविषै थामैं, तहां बडा जोरसूं थमै है सो जोर करना सो ही तप है। सो बाह्य अभ्यंतर भेदतैं बारह प्रकार कह्या है। ताका वर्णन आगें चूलिकामें होयगा, ऐसें तप धर्म कह्या ॥ ४०० ॥

आगें त्याग धर्मकू कहै हैं,––

जो चयदि मिट्ठभोज्जं उवयरणं रायदोससंजणयं ।
वसदिं ममत्तहेदुं चायगुणो सो हवे तस्स ॥ ४०१ ॥

भावार्थ–जो मुनि मिष्ट भोजन छोडै, रागद्वेषका उपजावनहारा उपकरण छोडै, ममत्वका कारण वसतिका छोडै, तिस मुनिके त्यागनामा धर्म होय है। भावार्थ–मुनिके संसार देह भोगके ममत्वका त्याग तो पहले ही है। बहुरि जिन वस्तूनिमें कार्य पडै है तिनिकू मुख्यकरि कह्या है, आहारसू काम पडै

तहा तौ सरस नीरसका ममत्व नाहीं करै. बहुरि धर्मोपकरण पुस्तक पीछी कमण्डलु जिनसू राग तीव्र बधै ऐसे न राखै, जो गृहस्थजनके काम न आवै बहुरि बडी वस्तिका रहनेकी जायगास् काम पडै सो ऐसी जायगा न बसै जातैं ममत्व उपजै, ऐसैं त्यागधर्म कह्या ॥ ४०१ ॥

आगें आकिंचन्य धर्मकू कहै है,—

तिविहेण जो विवज्जइ चेयणमियरं च सव्वहा संग

लोयववहारविरदो णिग्गथत्तं हवे तस्स ॥ ४०२ ॥

भावार्थ—जो मुनि चेतन अचेतन परिग्रहकू सर्वथा मन वचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि छोडै, कैसा हूवा सता, लोकके व्यवहारसू विरक्त हूवा सता छोडै, तिस मुनिके निर्ग्रंथपणा होय है. भावार्थ—मुनि अन्य परिग्रह तौ छोडै ही है परन्तु मुनिपणामें योग्य ऐसे चेतन तो शिष्य सघ अर अचेतन पुस्तक पिच्छिका कमडलु धर्मोपकरण अर आहार वस्तिका देह ये अचेतन तिनिसू भी सर्वथा ममत्व छोडै ऐसा विचारै जो मैं तो आत्मा ही हौं अन्य मेरी किछू भी नाहीं मैं अकिंचन हों, ऐसा निर्ममत्व होय ताके आकिंचन्य धर्म होय है ॥ ४०२ ॥

आगें ब्रह्मचर्य धर्मकू कहै हैं,—

जो परिहरेदि सग महिलाणं णेव पस्सदे रूव ।

कामकहादिणियत्तो णवहा बंभं हवे तस्स ॥ ४०३ ॥

भावार्थ-जो मुनि स्त्रीनिकी संगति न करै, तिनिका रूपकू नाहीं निरखै, बहुरि कामकी कथा आदि शब्दकरि स्मरणादिकरि रहित होय ऐसैं नवधा कहिये मनवचनकाय, कृत कारित अनुमोदनाकरि करै तिस मुनिके ब्रह्मचर्य धर्म होय है. भावार्थ-इहां ऐसा भी जानना जो ब्रह्म आत्मा है ताविषै लीन होय सो ब्रह्मचर्य है। सो परद्रव्यविषै आत्मा लीन होय तिनिविषै स्त्रीमें लीन होना प्रधान है जातैं काम मनविषै उपजै है सो अन्य कषायनितैं भी यह प्रधान है । अर इस कामका आलंबन स्त्री है सो याका संसर्ग छोडै अपने स्वरूपविषै लीन होय है। तातैं याकी संगति करना रूप निरखना, याकी कथा करनी, स्मरण करना, छोडै ताके ब्रह्मचर्य होय है। इहां टीकामें शीलके अठारह हजार भेद ऐसे लिखे हैं। अचेतन स्त्री-काष्ठ पाषाण अर लेपकृत, तिनिकू मनवचनकाय अर कृत कारित अनुमोदना इनि छह तैं गुणे अठारह होय । तिनिकू पांच इन्द्रियनितैं गुणे निब्बै होय । द्रव्य अर भावतैं गुणे एकसो अस्सी ( १८० )होय क्रोध मान माया लोभ इनि च्यारितैं गुणे सातसौ वीस ७२० होय । बहुरि चेतन स्त्री देवांगना मनुष्यणी तिर्यंचणी तिनिकू कृत कारित अनुमोदनातैं गुणे नव ( ९ ) होय, तिनिकूं मन वचन काय इनि तीनतैं गुणे सत्ताईस २७ होय, पांच इन्द्रियनितैं गुणे एकसौ पैंतीस १३५ होय, द्रव्य अर भाव-करि गुणे दोयसौसत्तरि २७० होय, इनिकू च्यारि संज्ञा आहार भय मैथुन परिग्रहतैं गुणे एक हजार अस्सी १०८०

होय इनिकू अनतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण सञ्वलन क्रोध मान माया लोभ रूप सोलह कषायनितैं गुणे सतराहजार दोयसे अस्सी १७२८० होय अर अचेतन स्त्रीके सातसौ वीस भेद मिलाये अठारह हजार १८००० होय ऐसें भेद हैं बहुरि इनि भेदनिकू अन्य प्रकार भी कीये हैं सो अन्य ग्रन्थनितें जानने ए आत्माकी परणतिके विकारके भेद हैं सो सर्व ही छोडि अपने स्वरूपमें रमै तब ब्रह्मचर्य धर्म उत्तम होय है ॥ ४०३ ॥

आगें शीलवानकी बडाई कहै हैं,—उक्तं च,

जो ण वि जादि वियारं तरुणियणकडक्खबाणविद्धो वि
सो चेव सूरसूरो रणसूणो णो हवे सूरो ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष स्त्रीजनके कटाक्षरूप बाणनिकरि विंध्या भी विकारकू प्राप्त न होय है सो शूरवीरनिमें प्रधान है, अर जो रणविषै शूरवीर है सो शूरवीर नाहीं है भावार्थ—युद्धमें सामा होय मरनेवाले तो सूरवीर बहुत हैं अर जे स्त्रीके वश न होय हैं ब्रह्मचर्यव्रत पालें हैं ऐसे विरले हैं तेही बडे साहसी है शूरवीर हैं, कामको जीतनेवाले ही बडे सुभट हैं। ऐसे यह दश प्रकार धर्मका व्याख्यान कीया।

आगे याकू सकोचै हैं,—

एसो दहप्पयारो धम्मो दहलक्खणो हवे णियमा।
अण्णो ण हवदि धम्मो हिंसा सुहमा वि जत्थत्थि॥

भावार्थ–ऐसें दश प्रकार धर्म है सो ही दशलक्षणस्वरूप धर्म नियमकरि है बहुरि अन्य जहा सूक्ष्म भी हिंसा होय सो धर्म नाहीं है भावार्थ–जहा हिंसाकरि अर तिसकूं कोई अन्यमती धर्म थापै है, तिसकू धर्म न कहिये यह दशलक्षणस्वरूप धर्म कह्या है सो ही धर्म नियमकरि है ४०४

आगें इस गाथामें कह्या है जो जहा सूक्ष्म भी हिंसा होय तहां धर्म नाहीं तिस ही अर्थकू स्पष्टकरि कहै हैं,—

हिंसारभो ण सुहो देवणिमित्तं गुरूण कज्जेसु ।
हिंसा पावं ति मदो दयापहाणो जदो धम्मो ॥४०५॥

भावार्थ–जातैं हिंसा होय सो पाप है, ऐसैं कह्या है. बहुरि धर्म है सो दया प्रधान है, ऐसैं कह्या है. तातैं देवके निमित्त तथा गुरुके कार्यके निमित्त हिंसा आरम्भ सो शुभ नाहीं है. भावार्थ–अन्यमती हिंसामें धर्म थापैं हैं मीमासक तो यज्ञ करै हैं, तहां पशुनिकों होमै हैं ताका फल शुभ कहै हैं. बहुरि देवीके भैरूके उपासक बकरे आदि मारि देवी भैरूकै चढावैं हैं ताका शुभ फल मानैं हैं. बौद्धमती हिंसाकरि मासादिक आहार शुभ कहै हैं बहुरि श्वेताम्बरनिके केई सूत्रनिमें ऐसैं कही है जो देव गुरु धर्मके निमित्त चक्रवर्तिकी सेनानै चूरिये जो साधु ऐसैं न करै है तो अनन्त ससारी होय कहूं मद्यमासका आहार भी लिखा है. इनि सर्वनिका निषेध इस गाथामें जानना जो देव गुरुके कार्यनिमित्त हिंसाका आरम्भ करै है सो शुभ नाहीं. धर्म है

सो दयाप्रधान ही है. बहुरि ऐसैं भी जानना जो पूजा प्रतिष्ठा चैत्यालयका निर्मापण संघयात्रा तथा वसतिकाका निर्मापण गृहस्थनिके कार्य हैं ते भी मुनि आप न करै, न करावै, न अनुमोदना करै यह धर्म गृहस्थनिका है सो जैसैं इनिका सूत्रमें विधान लिख्या है तैसैं गृहस्थ करै गृहस्थ मुनिकू इनिश प्रश्न करै तौ कहै जिन सिद्धांतमें गृहस्थका धर्म पूजा प्रतिष्ठा आदि लिख्या है तैसैं करो ऐसैं कहनेमें हिंसाका दोष तौ गृहस्थके ही है. इसमें तिस श्रद्धान भक्ति धर्मकी प्रधानता भई तिस सबधी पुण्य भया तिसके सीरी मुनि भी हैं, हिंसा गृहस्थकी है ताके सीरी नाहीं. बहुरि गृहस्थ भी हिंसा करनेका अभिप्राय करै तौ अशुभ ही है. पूजा प्रतिष्ठा यत्नपूर्वक करै है. कार्यमें हिंसा होय सो गृहस्थके कैसैं टलै ? सिद्धांतमें ऐसा भी कह्या है जो अल्प अपराध लगै बहुत पुण्य निपजै ऐसा कार्य गृहस्थकू योग्य है गृहस्थ जिसमें नफा जाणै सो कार्य करै थोडा द्रव्य दीये बहुत द्रव्य आवै सो कार्य करै किंतु मुनिनिकै ऐसा कार्य नाहीं होय है तिनिकैं सर्वथा यत्न ही है ऐसा जानना ४०७

देवगुरूण णिम्मित्त हिंसारभो वि होदि जदि धम्मो ।
हिंसारहिओ धम्मो इदि जिणवयण हवे अलियं ॥

भावार्थ—जो देव गुरुके निमित्त हिंसाका आरम्भ भी यतिका धर्म होय तौ जिन भगवानके ऐसे वचन हैं जो धर्म हिंसारहित है सो ऐसा वचन अलीक ( झूठा ) ठहरै भा-

भार्थ–जातै धर्म भगवानने हिंसारहित कह्या है तातै देव गुरुके कार्यके निमित्त भी मुनि हिंसाका आरम्भ न करै जे श्वेताम्बर कहै हैं सो मिथ्या है ॥ ४०६ ॥

आगें इस धर्मका दुर्लभपणा दिखावै हैं—

इदि एसो जिणधम्मो अलद्धपुव्वो अणाइकाले वि।
मिछत्तसंजुदाणं जीवाणं लद्धिहीणाणं ॥ ४०७ ॥

भाषार्थ–ऐसे यह जिनेश्वर देवका धर्म अनादि कालविषै मिथ्यात्वकरि संयुक्त जे जीव जिनिकै कालादि लब्धि नाहीं आई, तिनिकै अलब्धपूर्वक है पूर्वे कदाू पाया नाहीं भावार्थ–मिथ्यात्वकी अल्प जीवनिकै अनादि कालतै ऐसी है जो जीव अजीवादि तत्त्वार्थनिका श्रद्धान कदाहूं हुवा नाहीं, विना तत्त्वार्थश्रद्धान अहिंसाधर्मकी प्राप्ति कैसैं होय १ ४०७

आगे कहै हैं कि अलब्धपूर्वक धर्मकू पायकरि केवल पुण्यका ही आशय करि न सेवणा,—

एदे दहप्पयारा पावकम्मस्स णासिया भणिया।
पुण्णस्स य संजणया पर पुण्णत्थं ण कायव्वा ४०८

भाषार्थ–ए दश प्रकार धर्मके भेद कहे, ते पापकर्मके तौ नाश करनेवाले कहे बहुरि पुण्य कर्मके उपजावन हारे कहे हैं परन्तु केवल पुण्यहीका अर्थ प्रयोजनकरि नाहीं अंगीकार करने। भावार्थ–सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र तौ पुण्य कर्म कहे हैं. अर च्यारि घातिकर्म अर असातावेदनीय

अनाम अशुभआयु अशुभगोत्र पापकर्म कहे हैं सो दश लक्षण धर्मकू पापका नाश करनेवाला पुण्यका उपजावनहारा कह्या तहां केवल पुण्य उपजावनेका अभिप्राय राखि इनिकू न सेवणो जातैं पुण्य भी बंध ही है ए धर्म तौ पाप जो घाति कर्म ताके नाश करनेवाला है अर अघातिमें अशुभ प्रकृति हैं तिनिका नाश करै है अर पुण्य कर्म हैं ते संसारके अ- भ्युदयकू देहैं सो इनितैं तिसका भी व्यवहार अपेक्षा बन्ध होय है तौ स्वयमेव होय ही है तिसकी वांछा करणा तौ संसारकी वांछा करना है, सो यह तौ निदान भया, मोक्षका अर्थीकै यह होय नाहीं जैसैं किसाण खेती नाजके अर्थ करै है ताके घास स्वयमेव होय है ताकी वांछा काहेकू करै मोक्षके अर्थीक पुण्यबंधकी वांछा करना योग्य नाहीं ४०८

पुण्णं पि जो समच्छदि संसारो तेण ईहिदो होदि।
पुण्णं सग्गइ हेउं पुण्णखयेणेव णिव्वाणं ॥ ४०९ ॥

भाषार्थ—जो पुण्यकौ भी चाहै है तिस पुरुषने संसार चाह्या जातैं पुण्य है सो सुगतिका बंधका कारण है अर मोक्ष है सो भी पुण्यका भी क्षयकरि होय है भावार्थ—पु- ण्यतैं सुगति होय है सो जानै पुण्य चाह्या तिसने संसार चाह्या सुगति है सो संसार ही है, मोक्ष तौ पुण्यका भी क्षय भये होय है सो मोक्षका अर्थीकौं पुण्यकी वांछा करणा योग्य नाहीं॥ ४०९ ॥

जो अहिलसेदि पुण्ण सकसाओ विसयसोक्खतह्णाए
दूरे तस्स विसोही विसोहिमूलाणि पुण्णाणि ॥ ४१० ॥

भावार्थ-जो कषायसहित भया सता विषयसुखकी तृ-ष्णाकरि पुण्यकी अभिलाषा करै है ताकै विशुद्धता मंदकपायके अभावकरि दूर वर्त्तै है बहुरि पुण्य कर्म है सो विशुद्धता है मूल कारण जाका, ऐसा है भावार्थ-जो विषयनिकी तृष्णाकरि पुण्यकों चाहै है सो तीव्र कषाय है. अर पुण्यबंध होय सो मंदकषायरूप विशुद्धि तातैं होय है सो पुण्य चाहै ताकै आगामी पुण्यबन्ध भी नाहीं होय है, निदानमात्र फल होय तो होय ॥ ४१० ॥

पुण्णासए ण पुण्णं जदो णिरीहस्स पुण्णसंपत्ती ।
इय जाणिऊण जइणो पुण्णे वि म आयरं कुणह ॥

भावार्थ-जातैं पुण्यकी वांछाकरि तौ पुण्यबन्ध नाहीं होय है अर वांछा रहित पुरुषकै पुण्यका बंध होय है. तातैं भी यतीश्वर हो ऐसा जाणिकरि पुण्य विषै भी वांछा आदर मति करो. भावार्थ-इहां मुनिराजकौ उपदेश कह्या है जो पुण्यकी वांछातै पुण्यबन्ध नाहीं तौ आशा मिटै बंधै है तातैं आशा पुण्यकी भी मति करौ, अपने स्वरूपकी प्राप्तिकी आशा करौ ॥ ४११ ॥

पुण्णं बंधदि जीवो मंदकसाएहि परिणदो संतो ।
तह्मा मंदकसाया हेऊ पुण्णस्स ण हि बंछा

भावार्थ–जातैं जीव है सो मंदकषायरूप परिणाया संता पुण्यकौं बांधै है. तातैं पुण्यबंधका कारण मंदकषाय है, वांछा पुण्यबन्धका कारण नाहीं है. पुण्यबंध मंदकषायतैं होय है, अर याकी वांछा है सो तीव्र कषाय है तातैं वांछा न करणी. निर्वांछक पुरुषकै पुण्य बंध होय है यह लौकिक भी कहै है जो चाह करै ताकूं किछू मिलै नाहीं. विना वांछिवालेकौं बहुत मिलै है तातैं वांछाका तौ निषेध ही है इहां कोई पूछै अध्यात्म ग्रंथनिमें तौ पुण्यका निषेध बहुत कीया अर पुराणनिमें पुण्यहीका अधिकार है सो हम तौ यह जाणै है संसारमें पुण्यही बडा है, याहीतैं तौ इहां इन्द्रियनिके सुख मिलै है याहीतैं मनुष्य पर्याय, भली संगति, भला शरीर मोक्ष साधनेके उपाय मिलै हैं, पापतैं नरक निगोद जाय तब मोक्षका भी साधन कहा मिलै? तातैं ऐसे पुण्यकी वांछा क्यों न कीजिये? ताका समाधान–यह कह्या सो तौ सत्य है परन्तु भोगनिके अर्थ केवल पुण्यकी वांछा का अत्यंत निषेध है भोगनिके अर्थ पुण्यकी वांछा करै ताकै प्रथम तौ सातिशय पुण्य बंधै ही नाहीं, अर इहां तपश्चरणादिककरि किछू पुण्य बांधि भोग पावै, तहां अति तृष्णातैं भोगनिकौं सेवै तब नरक निगोद ही पावै अर बंध मोक्षके स्वरूप साधनेके अर्थ पुन्य पावै ताका निषेध है नाहीं,पुण्यतैं मोक्षसाधनेकी सामग्री मिलै ऐसा उपाय राखै तौ तहां परम्पराय मोक्षहीकी वांछा भई, पुण्यकी तौ वांछा न भई-जैसैं कोई पुरुष भोजन करनेकी वांछाकरि रसोईकी सामग्री

मेली करै तिनिकी बाछा पहली होय तौ भोजनहीकी बांछा कहिये. बहुरि भोजनकी बांछा विना केवल सामग्रीहीकी बाछा करै तौ सामग्री मिलै भी प्रयास मात्र ही भया. किछू फल तौ न भया. ऐसैं जानना. पुराणनिमें पुण्यका अधिकार है सो भी मोक्षहीके अर्थि है ससारका तौ तहा भी निषेध ही है ॥ ४१२ ॥

आगें दश लक्षण धर्म है सो दया प्रधान है अर दया है सोई सम्यक्त्वका मुख्य चिह्न है जातैं सम्यक्त्व है सो जीव अजीव आस्रव बंध सवर निर्जरा मोक्ष इनि तत्त्वार्थनिके ज्ञानपूर्वक श्रद्धान स्वरूप है सो यह होय तब सर्व जीवनिकौं आप समान जाणै ही, तिनिकै दुःख होय तब आपकी ज्यौं जाणै. तब तिनिकी करुणा होय ही अर अपना शुद्ध स्वरूप जाणै कषायनिकौं अपराध दुःखरूप जाणैं इनितैं अपना घात जाणै तब आपकी दया कषायभावके अभावकौं मानै ऐसैं अहिंसाकौं धर्म जाणैं हिंसाकौं अधर्म जानै ऐसा श्रद्धान सो ही सम्यक्त्व है ताके निःशंकितकूं आदि देकरि आठ अग हैं. तिनिकौं जीव दया ही परि लगाय कहै हैं. तहा प्रथम निःशंकितकौं कहै है,—

किं जीवदया धम्मो जण्णे हिंसा वि होदि किं धम्मो
इच्चेवमादिसंका तदकरणं जाण णिस्संका ॥४१३॥

भावार्थ—यह विचारै जो कहा जीव दया धर्म है कि यज्ञविषै पशूनिका वधरूप हिंसा होय है सो धर्म है ?

दिक धर्मविषैं संशय होय शंका है याका न करणा सो नि.-शंका है. भावार्थ-इहा आदि शब्दतैं कहा दिगम्बर यती निहीकैं मोक्ष है. कि तापस पचाग्नि आदि तप करै तिनिकौं भी है अथवा दिगम्बरकौं ही मोक्ष है कि श्वेताम्बरकौं है अथवा केवली कवलाहार करै है कि नाहीं करै है अ-थवा स्त्रीनिकौं मोक्ष है कि नाहीं अथवा जिनदेव वस्तुकौं अनेकांत कह्या है सो सत्य है कि असत्य है ऐसी आशंका न करै सो निःशंकित अंग है ॥ ४१३ ॥

दयभावो वि य धम्मो हिंसाभावो ण भण्णदे धम्मो
इदि संदेहाभावो णिस्संका णिम्मला होदि ॥ ४१४ ॥

भाषार्थ-निश्चयतैं दयाभाव ही धर्म है हिंसाभाव धर्म न कहिये ऐसैं निश्चय भये सदेहका अभाव होय सो ही निर्मल निःशंकित गुण है भावार्थ-अन्यमतीनैं मान्या जो विपरीत देव धर्म गुरुका तथा तत्त्वका स्वरूप ताका सर्वथा निषेधकरि जिनमतका कह्या श्रद्धान करना सो निःशंकित गुण है शंका रहै जेतैं श्रद्धान निर्मल होय नाहीं ॥ ४१४ ॥

आगें निःकांक्षित गुणकौं कहै हैं,—

जो सग्गसुहणिमित्तं धम्मं णायरदि दूसहतवेहिं ।
मुक्खं समीहमाणो णिक्कंक्खा जायदे तस्स ॥ ४१५ ॥

भाषार्थ-जो सम्यग्दृष्टी दुद्धर तपकरि भी स्वर्गसुखके अर्थ धर्मकौं आचरण न करै तिसकै निःकांक्षित गुण होय

है कैसा है विस दुद्दर तपकरि मोक्षकी ही बाछा करता संता है. भावार्थ-जो धर्मकों आचरण करै दुद्दर तप करै सो मोक्षहीके अर्थ करै स्वर्ग आदिके सुख न चाहै ताकै निःकांक्षित गुण होय है ॥ ४१५ ॥

आगें निर्विचिकित्सा गुणकों कहै है,—

दहविहधम्मजुदाणं सहावदुग्गंधअसुइदेहेसु ।
जं णिंदणं ण कीरइ णिव्विदिगिंछा गुणे सो हु ४१६

भावार्थ-जो दशप्रकारके धर्मकरि सयुक्त जे मुनिराज तिनिका देह सो प्रथम तौ देहका स्वभाव ही करि दुर्गंध अशुचि है बहुरि स्नानादि संस्कारके अभावतैं बाह्यमें विशेषकरि अशुचि दुर्गंध दीखै है ताकी अवज्ञा न करै सो निर्विचिकित्सा गुण है. भावार्थ-सम्यग्दृष्टी पुरुषकी प्रधान दृष्टि सम्यक्त्वज्ञानचारित्रगुणनि परि पडै है देह तौ स्वभाव ही करि अशुचि दुर्गंध है तातै मुनिराजनिकी देहकी तरफ कहा देखै ? तिनिके रत्नत्रयकी तरफ देखै तब काहेकों ग्लानि आवै यह ग्लानि न उपजाना सो ही निर्विचिकित्सा गुण है जाकै सम्यक्त्व गुण प्रधान न होय ताकी दृष्टि पहली देहपरि पडै तब ग्लानि उपजै तब यह गुण न होय है ॥४१६॥

आगें अमूढदृष्टि गुणकों कहै हैं,—

भयलज्जालाहादो हिंसारंभो ण मण्णदे धम्मो ।
जो जिणवयणे लीणो अमूढदिट्ठी हवे सो हु ॥४१७॥

भावार्थ–जो भयकरि तथा लज्जाकरि तथा लाभकरि हिंसाके आरम्भकौं धर्म नाहीं मानै, सो पुरुष अमूढदृष्टिगुण संयुक्त है कैसा है जिनवचनविषै लीन है भगवानने धर्म अहिंसा ही कह्या है, ऐसी दृढ श्रद्धा युक्त है भावार्थ–अन्य मती यज्ञादिक हिंसा धर्म थापै है ताकौं राजाके भयतैं तथा काहू व्यन्तरके भयतैं तथा लोककी लज्जातैं तथा किछू धनादिकके लाभतैं इत्यादि अनेक कारण है तिनितैं धर्म न मानै ऐसी श्रद्धा राखै जो धर्म तौ भगवानने अहिंसा ही कहा है तातैं अमूढदृष्टि गुण है इहां हिंसारम्भके कहनेमें हिंसाके प्ररूपक देव शास्त्र गुरु आदिविषै भी मूढदृष्टि न होय है ऐसा जानना ॥ ४१७ ॥

आगें उपगूहन गुणकौ कहै है,—

जो परदोसं गोवदि णियसुकयं णो पयासदे लोए ।
भवियव्वभावणरओ उवगूहणकारओ सो हु ४१८

भावार्थ–जो सम्यग्दृष्टी परके दोषकौ तौ गोपै ढाकै वहुरि अपना सुकृत कहिये पुण्य गुण लोकविषै प्रकाशै नाहीं कहता न फिरै वहुरि ऐसी भावनामें लीन रहै जो भवितव्य है सो होय है तथा होयगा सो, उपगूहन गुण करने वाला है, भावार्थ–सम्यग्दृष्टिकै ऐसी भावना रहै है जो कर्मका उदय है तिस अनुसार मेरे लोकमें प्रवृत्ति है सो होणी है सो होय है. ऐसी भावनातैं अपना गुणको प्रकाशता फिरै नाहीं, परके दोष प्रगट करै नाहीं, वहुरि साधर्मी जन तथा

पूज्य पुरुषनिमें कोई कर्मके उदयतैं दोष लागे तो ताकौं छिपावै, उपदेशादिकरि दोष छुडावै, ऐसे न करै जामें तिनिकी निन्दा होय, धर्मकी निन्दा होय, धर्म धर्मात्मामेंसूं दोषका अभाव करना है सो छिपावना भी अभाव ही करना है जातें लोक न जानैं सो अभाव तुल्य ही हैं ऐसैं उपगूहन गुण होय है ॥ ४१८ ॥

आगे स्थितिकरण गुणकों कहै हैं,—

धम्मादो चलमाणं जो अण्णं संठवेदि धम्मम्मि ।
अप्पाणं पि सुदिढयदि ठिदिकरणं होदि तस्सेव ॥

भाषार्थ—जो अन्यकौं धर्मतैं चलायमान होतेकौं धर्मविषै स्थापै तथा अपने आत्माकौं भी चलनेतैं दृढ करै तिसकै निश्चयतैं स्थितिकरण गुण होय है भावार्थ—धर्मतैं चिगनेके अनेक कारण हैं सो निश्चय व्यवहाररूप धर्मतैं परकौं तथा आपकूं चिगता जाणि तथा उपदेशतैं तथा जैसैं होय तैसैं दृढ करै, ताकैं स्थितिकरण गुण होय है ॥ ४१९ ॥

आगें वात्सल्य गुणकू कहै हैं,—

जो धम्मिएसु भत्तो अणुचरणं कुणदि परमसद्धाए ।
पियवयणं जंपंतो वच्छल्लं तस्स भव्वस्स ॥ ४२० ॥

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी जीव धार्मिक कहिये सम्यग्दृष्टी श्रावक मुनिनिविषै तौ भक्तिवान् होय, बहुरि तिनिकै अनुसार प्रवर्त्तै, परम श्रद्धाकरि प्रियवचन

तिस भव्यकैं वात्सल्यगुण होय है. भावार्थ—वात्सल्य गुणमें धर्मानुराग प्रधान है उत्कृष्टकरि धर्मात्मा पुरुषनिसूं जाकै भक्ति अनुराग होय तिनिमें प्रियवचन सहित प्रवर्त्त, तिनिकूं भोजन गमन आगमन आदिकी क्रियाका अनुचर होय प्रवर्तें, गाय वछेरेकीसी प्रीति राखै ताकै वात्सल्य गुण होय है ॥ ४२० ॥

आगें प्रभावना गुणकूं कहै हैं,—

जो दसभेयं धम्मं भव्वजणाणं पयासदे विमलं ।
अप्पाणं पि पयासदि णाणेण पहावणा तस्स २१

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी दशभेदरूप धर्मकौं भव्य जीवनिके निकट अपने ज्ञानकरि प्रगट करै तथा अपनी आत्माकौं दशप्रकार धर्मकरि प्रकाशै ताकै प्रभावना गुण होय है. भावार्थ—धर्मका विख्यात करना सो प्रभावना गुण है. सो उपदेशादिककरि तौ परके विषै धर्म प्रगट करै, अर अपना आत्माकौं दशविध धर्म अंगीकारकरि कर्म कलकतैं रहितकरि प्रगट करै ताकै प्रभावना गुण होय है ॥ ४२१ ॥

जिणसासणमाहप्पं बहुविहजुत्तीहिं जो पयासेदि ।
तह तिव्वेण तवेण य पहावणा णिम्मला तस्स २२

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी पुरुष अपने ज्ञानके बलतैं अनेक प्रकार युक्तिकरि वादीनिका निराकरणकरि तथा न्याय व्याकरण छंद अलंकार साहित्य विद्याकरि वक्तापणा वा शास्त्र-

निकी रचना करि तथा अनेकप्रकार युक्तिकरि वादीनिका नि-
राकरणकरि तथा अनेक अतिशय चमत्कार पूजा प्रतिष्ठा तथा
महान् दुद्धर तपश्चरणकरि जिनशासनका माहात्म्य प्रगट
करै ताकै प्रभावना गुण निर्मल होय है. भावार्थ—यह प्र-
भावना गुण बडा गुण है यातैं अनेक अनेक जीवनिकै ध-
र्मकी रुचि श्रद्धा उपजि आवै है तातैं सम्यग्दृष्टी पुरुषनिकै
अवश्य होय है ॥ ४२२ ॥

आगें निःशंकित आदि गुण किस पुरुषकै होय ताकौ
कहै हैं,—

जो ण कुणदि परतत्तिं पुण पुण भावेदि सुद्धमप्पाणं ।
इंदियसुहणिरवेक्खो णिस्संकाईगुणा तस्स ॥ २३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष परकी निंदा न करै बहुरि शुद्ध आ-
त्माकौं बार बार भावै बहुरि इन्द्रिय सुखकी अपेक्षा वांछा
रहित होय ताकै निःशंकित आदि अष्ट गुण अहिंसा धर्मरूप स-
म्यक्त्व होय है भावार्थ—इहां तीन विशेषण हैं तिनिका ता-
त्पर्य यह है कि जो परकी निंदा करै ताकै निर्विचिकित्सा
अर उपगूहन स्थितिकरण गुण कैसैं होय तथा वात्सल्य
कैसें होय तातैं परका निंदक न होय तब ये चार गुण होय
हैं बहुरि जाकै अपना आत्माका वस्तु स्वरूपमें शंका सदेह
होय तथा मूढ दृष्टि होय सो अपने आत्माकौं वारम्वार
शुद्ध कैसैं भावै तातैं शुद्ध आपकौं भावै ताहीकै निःशंकित
तथा अमूढदृष्टि गुण होय. तथा प्रभावना भी ताहीकैं होय

बहुरि जाकै इंद्रियसुखकी वाछा होय ताकै निःकांक्षित गुण नाहीं होय. इन्द्रिय सुखकी वांछातैं रहित भये ही निःकांक्षित गुण होय ऐसे आठ गुणके समवनेके तीन विशेषण हैं ॥

आगैं ए कहै हैं-ये आठ गुण जैसैं धर्मविषै कहे तैसैं देव गुरु आदिविषै भी जानने,—

णिस्संकापहुदिगुणा जह धम्मे तह य देवगुरुतच्चे ।
जाणेहि जिणमयादो सम्मत्तविसोहया एदे ॥ २४ ॥

भाषार्थ-ए निःशंकित आदि आठ गुण कहे ते धर्मविषै प्रकट होते कहे तैसैं ही देवके स्वरूपविषै तथा गुरुके स्वरूपविषै तथा षड्द्रव्य पचास्तिकाय सप्त तत्व नव पदार्थनिके स्वरूपविषै होय हैं तिनिकौं प्रवचन सिद्धान्ततैं जानने. ए आठ गुण सम्यक्त्वका निरतिचार विशुद्ध करनेवाले हैं भावार्थ-देव गुरु तत्वविषै शंका न करणी, तिनिकी यथार्थ श्रद्धातैं इंद्रिय सुखकी वाछा रूप कांक्षा न करणी, तिनिमैं ग्लानि न ल्यावनी, तिनिविषै मूढदृष्टि न राखणी, तिनिके दोषनिका अभाव करना तथा तिनिका ढाकना, तिनिका श्रद्धान दृढ करना, तिनिकै वात्सल्य विशेष अनुराग करना, तिनकी महिमा प्रकट करनी ऐसैं आठ गुण इनिविषै जानने इनिकी कथा आगैं सम्यग्दृष्टी भये तिनिकी जिनशासनितैं जाननी अर ये आठौं गुण सम्यक्त्वके अतीचार दूरकरि निर्मल करनहारे हैं ऐसैं जानना ॥ ४२४ ॥

आगें इस धर्मके करनेवाला तथा जाननेवाला दुर्लभ है ऐसें कहै हैं,—

धम्मं ण मुणदि जीवो अहवा जाणेइ कहवि कट्ठेण।
काउं तो वि ण सक्कदि मोहपिसाएण भोलविदो ॥

भाषार्थ—या संसारमें प्रथम तौ जीव धर्मकौं जाणै ही नाहीं है बहुरि कोई प्रकार बडा कष्टकरि जो जाणै भी तौ, मोहरूप पिशाचकरि भ्रमित किया हुवा करनेको समर्थ नाहीं होय है. भावार्थ—अनादिसंसारतें मिथ्यात्वकरि भ्रमित जो यह प्राणी प्रथम तौ धर्मको जाणै ही नाहीं है बहुरि कोई काललब्धितें गुरुके संयोगतें ज्ञानावरणीके क्षयोपशमतें जानै भी तौ ताका करना दुर्लभ है ॥ ४२५ ॥

आगें धर्मका ग्रहणका माहात्म्य दृष्टांतकरि कहै हैं,—

जह जीवो कुणइ रइं पुत्तकलत्तेसु कामभोगेसु ।
तह जइ जिणिंदधम्मे तो लीलाए सुहं लहदि २६

भाषार्थ—जैसें यह जीव पुत्र कलत्रविषै तथा काम भोगविषै रति प्रीति करै है तैसें जो जिनेन्द्रके वीतराग धर्मविषै करै तौ लीला मात्र शीघ्र कालमें ही सुखकू प्राप्त होय है। भावार्थ—जैसी या प्राणीके संसारविषै तथा इन्द्रियनिके विषयनिकेविषै प्रीति है तैसी जो जिनेश्वरके दश लक्षण धर्म स्वरूप जो वीतराग धर्म ताविषै प्रीति होय तौ थोडेसे ही कालविषै मोक्षकू पावै ॥ ४२६ ॥

आगें कहै हैं जो जीव लक्ष्मी चाहै हैं सो धर्मबिना कैसें होय ?—

लच्छि वंछेइ णरो णेव सुधम्मेसु आयरं कुणई ।
बीएण विणा कुत्थ वि किं दीसदि सस्सणिप्पत्ती ॥२७॥

भाषार्थ-यह जीव लक्ष्मीको चाहै है बहुरि जिनेन्द्रका कह्या मुनि श्रावक धर्मविषै आदरप्रीति नाहीं करै है तौ लक्ष्मीका कारण तौ धर्म है, तिस विना कैसें आवै ? जैसें बीज विना धान्यकी उत्पत्ति कहूं दीखै है ? नाहीं दीखै है. भावार्थ-बीज विना धान्य न होय तैसें धर्मविना सपदा न होय यह प्रसिद्ध है ॥ ४२७ ॥

आगें धर्मात्मा जीवकी प्रवृत्ति कहै हैं,—

जो धम्मत्थो जीवो सो रिउवग्गे वि कुणदि खमभावं
ता परदव्वं वज्जइ जणणिसमं गणइ परदारं ॥ २८ ॥

भाषार्थ-जो जीव धर्मविषै तिष्टै है सो वैरीनिके समूहविषै क्षमाभाव करै है बहुरि परका द्रव्यकौं तजै है, अंगीकार नाहीं करै है बहुरि परकी स्त्रीकूं कन्या माता बहन समान गिणै है ॥ ४२८ ॥

ता सव्वत्थ वि कित्ती ता सव्वस्स वि हवेइ वीसासो।
ता सव्व पि य भासइ ता सुद्ध माणसं कुणई ॥२९॥

भाषार्थ-जो जीव धर्मविषै तिष्टै है तो सर्व लोकमें ताकी कीर्ति होय है. बहुरि ताका सर्वलोक विश्वास करै

है. बहुरि सो पुरुष सबकों प्रियवचन कहै है जातैं कोई दुःख न पावै है बहुरि सो पुरुष अपने अर परके मनकों शुद्ध उज्वल करै है कोईके यासू कालिमा न रहै तैसैं याकै भी कोईसू कालिमा न रहै है. भावार्थ—धर्म सर्वप्रकार सुखदाई है।

आगें धर्मका माहात्म्य कहै है,—

उत्तमधम्मेण जुदो होदि तिरक्खो वि उत्तमो देवो ।
चंडालो वि सुरिंदो उत्तमधम्मेण संभवदि ॥ ४३० ॥

भावार्थ—सम्यक्त्व सहित उत्तम धर्मकरि संयुक्त जीव है सो तिर्यंच भी देव पदईकों पावै है बहुरि चांडाल है सो भी देवनिका इन्द्र सम्यक्त्व सहित उत्तम धर्मकरि होय है।

अग्गी वि य होदि हिमं होदि सुयंगो वि उत्तमं रयणं
जीवस्स सुधम्मादो देवा वि य किंकरा होंति ॥४३१॥

भावार्थ—या जीवकै उत्तम धर्मतैं अग्नि तौ हिम ( शीतल पाला ) हो जाय है बहुरि सर्प है सो उत्तम रत्ननिकी माला हो जाय है बहुरि देव हैं ते भी किंकर दास होय हैं।

उक्तं च गाथा,—

तिक्खं खग्गं माला दुज्जयरिउणो सुहंकरा सुयणा ।
हालाहलं पि अमियं महापया संपया होदि ॥ १ ॥

भावार्थ—उत्तम धर्म सहित जीवकै तीक्ष्ण खड्ग सो फूलमाला होय जाय है बहुरि दुर्जय ऐसा जो जीत्या न जाय रिपु जो बैरी सो भी सुखका करनेवाला सुजन कहिये मित्र

समान होय है, बहुरि हलाहल जो जहर सो भी अमृतसमान परिणवै है, बहुत कहा कहिये महान् बडी आपदा भी सं-पदा होय जाय है ॥ १ ॥

आलियवयण पि सच्चं उज्जमरहिये वि लच्छिसपत्ती।
धम्मपहावेण णरो अणओ वि सुहकरो होदि ३२

भाषार्थ–धर्मके प्रभावकरि जीवकै झूठ वचन भी सत्य वचन होय हैं बहुरि उद्यम रहितकै भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होय है बहुरि अन्याय कार्य भी सुखका करनहारा होय है भावार्थ–इहां यह अर्थ जानना जो पूर्वे धर्म सेया होय तौ ताके प्रभावतैं इहां झूठ बोलै सो भी साची होय जाय उ द्यमविना भी संपत्ति मिलै, अन्याय चालै तौ भी सुखी रहै, अथवा कोई झूठ वचनका तूदा ( वायदा ) लगावै तौ धीजमें (अतुंमें) साचा होय, अन्याय कीया लोक कहै है तौ न्याय वालेकी सहाय ही होय ऐसा भी जानना।

आगें धर्मरहित जीवकी निंदा कहै हैं,—

देवो वि धम्मचत्तो मिच्छत्तवसेण तरुवरो होदि।
चक्की वि धम्मरहिओ णिवडइ णरए ण संपदे होदि

भावार्थ–धर्मकरि रहित जीव हैं सो मिथ्यात्वका वसकरि देव भी वनस्पतिका जीव एकेन्द्रिय आय होय है, बहुरि चक्रवर्ती भी धर्मकरि रहित होय तब नरकविषे पडै है जातैं पाप है सो संपदाके अर्थ नाहीं है।

धम्मविहीणो जीवो कुणइ असज्झं पि साहसं जइवि
तो ण वि पावदि इट्ठं सुट्ठु अणिट्ठं परं लहदि ३४

भावार्थ– धर्मरहित जीव है सो यद्यपि बडा असहवे योग्य साहस पराक्रम करै तौऊ ताके इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न होय केवल उलटा अतिसैकरि अनिष्टकूं प्राप्त होय है। भावार्थ–पापके उदयतैं भली करतैं बुरा होय है यह जगप्रसिद्ध है ॥ ४३४ ॥

इय पच्चक्खं पिच्छिय धम्माहम्माण विविहमाहप्पं।
धम्मं आयरह सया पावं दूरेण परिहरह ३५

भावार्थ–हे प्राणी हो या प्रकार धर्म अर अधर्मका अनेक प्रकार माहात्म्य प्रत्यक्ष देखिकरि तुम धर्मकूं आदरौ अर पापकूं दूरहीतै परिहरौ भावार्थ–आचार्य दशप्रकार धर्म का स्वरूप कहिकरि अधर्मका फल दिखाया अब इहां यह उपदेश कीया है जो हे प्राणी हौ! जो प्रत्यक्ष धर्म अधर्मका फल लोकविषै देखि धर्मकू आदरौ पापकू परिहरौ. आचार्य बडे उपकारी हैं निष्कारण आपकूं किछू चाहिये नाहीं. निस्पृह भये संते जीवनिके कल्याणहीके अर्थ वारवार कहिकरि प्राणीनिकौं चेत करावै हैं, ऐसे श्रीगुरु वन्दनें पूजने योग्य हैं. ऐसें यतिधर्मका व्याख्यान किया।

दोहा।

मुनिश्रावकके भेदतैं, धर्म दोय परकार।

ताकू सुनि चितवो सतत, गहि पावौ भवपार ॥ १२ ॥

इति धर्मानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १२ ॥

## अथ द्वादश तपांसि कथ्यंते.

आगें धर्मानुप्रेक्षाकी चूलिकाकू कहता संता आचार्य बारहप्रकार तपके विधानका निरूपण करै हैं,—

बारसभेओ भणिओ णिज्जरहेऊ तवो समासेण,
तस्स पयारा एदे भणिज्जमाणा मुणेयव्वा ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—तप है सो बारह प्रकार संक्षेपकरि जिनागम विषै कह्या है कैसा है? कर्म निर्जराका कारण है तिसके प्रकार आगें कहैंगे ते जानने भावार्थ—निर्जराका कारण तप है सो बारहप्रकार है. बाह्यके अनशन अवमोदर्य वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेश ऐसैं छः प्रकार बहुरि अन्तरंगका प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ऐसैं छह प्रकार. इनिका व्याख्यान अब करिये हैं तहां प्रथम ही अनशन नाम तपकू च्यारि गाथाकरि कहै हैं,—

उवसमण अक्खाणं उववासो वण्णिदो मुणिंदेहि ।
तह्मा भुंजंता विय जिदिंदिया होंति उववासा ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—मुनीन्द्र हैं तिनिनै इन्द्रियनिका उपवास कहिये विषयनिमैं न जानै देना मनकू अपने आत्मस्वरूपविषैं लगावणा सो उपवास कह्या है. तातैं जितेन्द्रिय हैं ते

आहार करते भी उपवास सहित ही कहिये भावार्थ—इंद्रियका जीतना सो उपवास सो यतिगण भोजन करते भी उपवासे ही हैं जातैं इंद्रियनिकूं वशीभूतकरि प्रवर्त्तैं हैं ।

जो मणइंदियविजई इहभवपरलोयसोक्खणिरवेक्खो
अप्पाणे चिय णिवसइ सज्झायपरायणो होदि ॥ ३८ ॥
कम्माण णिज्जरट्ठं आहारं परिहरेइ लीलाए ।
एगादिणादिपमाणं तस्स तवो अणसणं होदि ॥४३९॥

भावार्थ—जो मन इंद्रियनिका जीतनहारा है बहुरि इस भव परभवके विषयसुखनिविषै अपेक्षा रहित है वांछा नाहीं करै है बहुरि अपने आत्मस्वरूप ही विषै बसै है अथवा स्वाध्यायविषै तत्पर है । बहुरि एक दिनकी मर्यादानैं कर्मनिकी निर्जराके अर्थ क्रीडा कहिये लीलामात्र ही क्लेश रहित हर्षतैं आहारको छोडै है ताकै अनशन तप होय है भावार्थ—उपवासका ऐसा अर्थ है जो इंद्रिय मन विषयनिविषै प्रवृत्तिसैं रहित होय आत्मामें बसै सो उपवास है. सो इंद्रियनिका जीतना विषयनिकी इसलोक परलोक सम्बन्धी वांछा न करनी, कै तो आत्मस्वरूपविषै लीन रहना, कै शास्त्रके अभ्यास स्वाध्यायविषै मन लगावणा ए तो उपवासविषै प्रधान हैं. बहुरि क्लेश न उपजै जैसैं क्रीडामात्र एक दिनकी मर्यादारूप आहारका त्याग करना ऐसैं उपवास नामा अनशन तप होय है ॥ ४३८–४३९ ॥

उववासं कुव्वाणो आरंभं जो करेदि मोहादो ।
तस्स किलेसो अवरं कम्माणं णेव णिज्जरणं ॥ ४० ॥

भाषार्थ–जो उपवास करता संता मोहतैं आरंभ गृहकार्यादिकक् करै है ताकै पहिलै तौ गृहकार्यका क्लेश था ही बहुरि दूसरा भोजन विना क्षुधा तृष्णाका क्लेश भया ऐसैं होतै क्लेश ही भया कर्मका निर्जरण तौ न भया. भावार्थ–आहारकौ तौ छोडै अर विषय कषाय आरंभकू न छोडै ताकै आगैं तौ क्लेश था ही दूसरा क्लेश भूख तिसका भया ऐसे उपवासमें कर्मकी निर्जरा कैसैं होय ? कर्मकी निर्जरा तौ सर्व क्लेश छोडि साम्यभाव करे होय है. ऐसा जानना ॥ ४४० ॥

आगैं अवमोदर्य तपकू दोय गाथाकरि कहै हैं,—

आहारगिद्धिरहिओ चरियामग्गेण पासुगं जोग्गं ।
अप्पयरं जो भुंजइ अवमोदरियं तव तस्स ॥ ४१ ॥

भाषार्थ–जो तपस्वी आहारकी अतिचाहरहित हूवा सूत्रोक्त चर्याका मार्गकरि योग्य प्रासुक आहार अतिशयकरि अल्प ले, तिसकै अवमोदर्य तप होय है. भावार्थ–मुनि आहारके छियालीस दोष टालै है वत्तीस अतराय टालै है चौदह मल रहित प्रासुक योग्य भोजन ले है तौऊ ऊनोदर तप करे, तामें अपने आहारके प्रमाणतैं थोडा ले, एक ग्रासतैं

लगाय बत्तीस ग्रास ताईं आहारका प्रमाण कह्या है तामें यथा इच्छा घटती ले सो अवमोदर्यतप है ॥ ४४१ ॥

जो पुण कित्तिणिमित्तं मायाए मिट्ठभिक्खलाहट्ठं ।
अप्पं भुंजदि भोज्जं तस्स तवं णिष्फलं बिदियं ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जो मुनि कीर्तिके निमित्त तथा माया कपट करि तथा मिष्ट भोजनके लाभके अर्थ अल्प भोजन करे है तपका नाम करे है ताकै तो दूसरा अवमोदर्य तप निष्फल है भावार्थ— जो ऐसा विचारे अल्प भोजन कियेसू मेरी कीर्ति होयगी. तब कपटकरिं लोककौ भुलावा दे किछूम-योजन साधनेके निमित्त तथा यह विचारे जो थोडा भोजन किये भोजन मिष्ट रससहित मिलेगा ऐसे अभिप्रायतैं ऊनोदर तप करे तौ ताके निष्फल है. यह तप नाहीं पाखड है।

आगें वृत्तिपरिसंख्यान तपकों कहै हैं,—

एगादिगिहपमाणं किं वा संकप्पकप्पियं विरसं ।
भोज्जं पसुव्व भुंजइ वित्तिपमाणं तवो तस्स ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जो मुनि आहारकू उतरे तब पहले मनमें ऐसी मर्याद करि चालै जो आज एक ही घर पहलें मिलेगा तौ आहार लेवेंगे नातर फिर आवेंगे तथा दोय घर ताईं जायगे ऐसैं मर्याद करै. तथा एक रस ताकी मर्याद करै तथा देनेवालेकी मर्याद करै तथा पात्रकी मर्याद करै ऐसा दातार ऐसी रीति एसे पात्रमें लेकर देवैगा तौ लेवेंगे,

मर्यादकरै सरस तथा नीरस तथा फलाणा अन्न मिलेगा तौ लेवैंगे इत्यादि वृत्तिकी सख्या गणना मर्यादा मनमें विचार चाले तैसें ही मिलै तौ लेय अन्यथा न लेय. बहुरि आहार लेय तब पशु गऊ आदिकी ज्यों करै. जैसें गऊ इतउत देखै नाहीं चरनेहीकी तरफ देखै तैसें ले, तिसके वृत्तिपरिसंख्यानतप है. भावार्थ–भोजनकी आशाका निरास करनेकौं यह तप है सकल्प माफिक विधि मिलना दैव योग है यह बड़ा कठिन तप महामुनि करै हैं ॥ ४५३ ॥

आगें रस परित्यागतपकों कहै हैं,—

संसारदुक्खतट्ठो विससमविसयं विचिंतमाणो जो ।
णीरसभोज्जं भुंजइ रसचाओ तस्स सुविसुद्धो ॥ ४४ ॥

भावार्थ–जो मुनि ससार दुःखसूं तप्तायमान हूवा ऐसैं विचार करता है जो इन्द्रियनिके विषय हैं ते विष सरीखे हैं विष खाये एकवार मरै है विषय सेये बहुत जन्म मरण होय हैं ऐसा विचारि नीरस भोजन करै है ताकै रसपरित्याग तप निर्मळ होय है. भावार्थ–रस छह प्रकारके हैं घृत तैल दधि मिष्ट लवण दुग्ध ऐसैं बहुरि खाटा खारा मीठा कडुवा तीखा कषायला ए भी रस कहा है तिनिका जैसें इच्छा होय तैसें त्याग करै एक ही रस छोडै, दोय रस छोडै तथा सर्व ही छोडै ऐसैं रसपरित्याग तप होय है इहां कोई पूछै रसत्यागकौं कोई जाणै नाहीं मनहीमें त्याग करै तौ ऐसैं ही वृत्तिपरिसंख्यान है यामें वामें कहा विशेष ?

ताका समाधान, वृत्ति परिसंख्यानमें तो अनेक रीतनिकी संख्या हैं इहां रसहीका त्याग है यह विशेष है. बहुरि यह भी विशेष जो रसपरित्याग तो बहुत दिनका भी होय ताकूं श्रावक जाणि भी जाय अर वृत्तिपरिसंख्यान बहुत दिनका होय नाहीं ॥ ४४४ ॥

आगें विविक्तशय्यासन तपकूं कहे हैं,—

जो रायदोसहेदू आसणसिज्जादियं परिच्चयई ।
अप्पा णिव्विसय सया तस्स तवो पंचमो परमो ॥

भावार्थ–जो मुनि रागद्वेषके कारण जे आसन अर शय्या इनि आदिककों छोडे बहुरि सदा अपने आत्मस्वरूपविषै बसे अर निर्विषय कहिये इन्द्रियनिके विषयनितैं विरक्त होय तिस मुनिके पांचमा तप विविक्तशय्यासन उत्कृष्ट होय है भावार्थ–आसन कहिये बैठनेका स्थान अर शय्या कहिये सोवनेका स्थान, आदि शब्दतैं मलमूत्रादि क्षेपनेका स्थान, ऐसा होय जहां रागद्वेष न उपजैं अर वीतरागता बधै ऐसा एकान्त स्थानक होय तहां बैठै सोवै, जातैं मुनिनिकों अपना अपना स्वरूप साधना है इन्द्रियविषय सेवने नाहीं हैं तातैं एकान्त स्थानक कहा है ॥ ४४५ ॥

पूजादिसु णिरवेक्खो संसारसरीरभोगणिव्विण्णो ।
अब्भंतरतवकुसलो उवसमसीलो महासंतो ॥ ४४६ ॥
जो णिवसेदि मसाणे वणगहणे

अप्पणत्थ वि एयते तस्स वि एदं तवं होदि ॥४४७॥

भावार्थ—जो महामुनि पूजा आदिविषै तौ निरपेक्ष है अपनी पूजा महिमादिक नाहीं चाहै है, बहुरि स्वाध्याय ध्यान आदि जे अंतरंग तप तिनिविषै प्रवीण है, ध्यानाध्ययनका निरन्तर अभ्यास राखे है, बहुरि उपशमशील कहिये मंद कषायरूप शान्तपरिणाम ही है स्वभाव जाका, बहुरि महा पराक्रमी है, क्षमादिपरिणाम युक्त है, ऐसा महामुनि मसाण भूमिविषै तथा गहन वनविषै तथा जहां लोक न प्रवर्त्ते, ऐसे निर्जनस्थानविषै तथा महाभयानक उद्यान विषै तथा अन्य भी ऐसा एकान्त स्थानविषै जो वसै ताकै निश्चय यह विविक्तशय्यासन तप होय है. भावार्थ—महामुनि विविक्तशय्यासन तप करै है सो ऐसें एकान्त स्थानकमें सोवै बैठे है जहां चित्तके क्षोभके करनेहारे कछू भी पदार्थ न होय ऐसे सूने घर गिरिकी गुफा वृक्षके मूल तथा स्वयमेव गृहस्थनिके बणाये उद्यानमें वस्तिकादिक देव मन्दिर तथा मसाणभूमि इत्यादिक एकांत स्थानक होय तहां ध्यानाध्ययन करे है जातैं देहतैं तो निर्ममत्व है विषयनितैं विरक्त है, अपने आत्मस्वरूपविषै अनुरक्त है सो मुनि विविक्त शय्यासनतपसंयुक्त है ॥ ४४६-४४७ ॥

आगै कायक्लेशतपकूं कहै हैं,—

दुस्सहउवसग्गजई आतावणसीयवायखिण्णो वि ।
जो ण वि खेदं गच्छदि कायकिलेसो तवो तस्स ॥

भावार्थ–जो मुनि दुःसह उपसर्गका जीतनहारा आताप सीत वातकरि पीडित होय खेदकूं प्राप्त न होय, चित्तमें क्षोभ क्लेश न उपजै तिस मुनिके कायक्लेश नामा तप होय है। भावार्थ–महामुनि ग्रीष्मकालमें तौ पर्वतके शिखर आदि विषै जहां सूर्यके किरणिनिका अत्यन्त आताप होय तहां भूमि शिलादिक तप्तायमान होय तहां आतापनयोग धारै हैं. बहुरि शीतकालमें नदी आदिके तटविषै चौडे जहां अति शीत पडै दाहतें वृक्ष भी दाहे जाय तहां खडे रहैं बहुरि चतुर्मासमें वर्षा वरसै प्रचंड पवन चालै दंशमशक काटैं ऐसे समय वृक्षके तले योग धारै हैं तथा अनेक विकट आसन करै है ऐसे अनेक कायक्लेशके कारण मिलावे हैं अर साम्यभावतें चिगै नाहीं हैं जातें अनेक प्रकारके उपसर्गके जीतनहारे हैं तातें चित्तविषै जिनके खेद नाहीं उपजै है. अपने स्वरूपके ध्यानमें लगे रहैं तिनके कायक्लेशनामा तप होय है. जिनके काय तथा इंद्रियनितें ममत्व होय है तिनिके चित्तमें क्षोभ हो है ए मुनि सर्वतें निस्पृह वर्त्तें हैं तिनकूं काहेका खेद होय ? ऐसे छहप्रकार बाह्यतपका निरूपण किया,

आगें छहप्रकार अंतरंग तपका व्याख्यान करै हैं तहां प्रथम ही प्रायश्चित्तनामा तपकूं कहै हैं,—

दोसं ण करेदि सयं अण्णं पि ण कारएदि जो तिविहं ।
कुव्वाणं पि ण इच्छइ तस्स विसोही परा होदि ४४९

भावार्थ–जो मुनि आप दोष न करै अन्य पासि दोष

न करावै दोष करता होय ताकूं इष्ट भला न जाणै तिसकै उत्कृष्ट विशुद्धि होय है भावार्थ—इहां विशुद्धि नाम मायश्चि-त्तका है जातैं 'प्राय' शब्दकरि तौ प्रकृष्ट चारित्रका ग्रहण है ऐसा चारित्र जाकै होय सो 'प्रायः' कहिये साधु लोक ताका चित्त जिस कार्यविषै होय है सो प्रायश्चित्त कहिये, सो आत्माकै विशुद्धि करै सो प्रायश्चित्त है बहुरि दूसरा अर्थ ऐसा भी है जो प्राय नाम अपराधका है ताका चित्त कहिये शुद्ध करना सो भी प्रायश्चित्त कहिये, ऐसैं पूर्वै कीये अपराधतैं जातैं शुद्धता होय सो प्रायश्चित्त है ऐसैं जो मुनि मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि दोष नाहीं ल-गावै ताकै उत्कृष्ट विशुद्धता होय. यही प्रायश्चित्त नामा तप है ॥ ४४९ ॥

अह कहवि पमादेण य दोसो जदि एदि त पि पयडेदि
णिद्दोससाहुमूले दसदोसविवज्जिदो होदुं ॥ ४५० ॥

भाषार्थ—अथवा कोई प्रकार प्रमादकरि अपने चारित्रमें दोष आया होय तौ ताकूं निर्दोष जे साधु आचार्य उनकै निकट दश दोषवर्जित होयकरि प्रकट करै आलोचना करै. भावार्थ—अपने चारित्रमें दोष प्रमादकरि लग्या होय तौ

१ यत्याचारोक्त दशप्रकारं प्रायश्चित्त ।

२ आलोयण पडिकमणं उभय विवेगो तहा विओसग्गो ।
तवछेदो मूल पि य परिहारो चेव सद्दहणं ॥

आचार्य पास जाय दशदोषवर्जित आलोचना करै. ते प्रमाद—इन्द्रिय ५ निन्द्रा १ कषाय ४ विकथा ४ स्नेह १ ये पाच हैं तिनके पदरह भेद हैं भंगनिकी अपेक्षा बहुत भेद होय हैं तिनिकरि दोष लागै है बहुरि आलोचनाके दश दोष हैं तिनिके नाम आकंपित १ अनुमानित २ बादर ३ सूक्ष्म ४ दृष्ट ५ प्रच्छन्न ६ शब्दाकुलित ७ बहुजन ८ अव्यक्त ९ तत्सेवी १० ए दश दोष हैं. तिनिका अर्थ ऐसा जो आचार्यकूं उपकरणादि देकरि आपकी करुणा उपजाय आलोचना करै जो ऐसैं कीये प्रायश्चित्त थोडा देसी, ऐसा विचारै तौ यह आकंपितदोष है बहुरि वचन ही करि आचार्यनिकी बडाई आदिकरि आलोचना करै अभिप्राय ऐसा राखै जो आचार्य मोसूं प्रसन्न रहै तौ प्रायश्चित्त थोडा बतावै, ऐसें अनुमानित दोष है. बहुरि प्रत्यक्ष दृष्टदोष होय सो कहै अदृष्ट न कहै सो दृष्टदोष है बहुरि स्थूल बडा दोष तौ कहै सूक्ष्म न कहै सो बादरदोष है. बहुरि सूक्ष्म दोष ही कहै बादर न कहै यह जनावै यानैं सूक्ष्म ही कह दिया सो बादर काहेकूं छिपावै सो सूक्ष्मदोष है. बहुरि छिपायकरि ही कहै कोई अन्यनैं अपना दोष कह्या है तब

---

( १ ) विकहा तहा कषाया इंदिय णिद्दा तहेव पणओ य।
चउ चउ पण मेगेगं होंति पमादा हु पण्णरसा ॥ १ ॥

[ २ ] आकंपिय अणुमाणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च।
छण्णं सद्दाउलियं बहुजणमव्वत्त तस्सेवी ॥ २ ॥

कहै ऐसा ही दोप मोकू लाग्या है ताका नाम प्रकट न करै सो प्रच्छन्न दोष है. बहुरि बहुत शब्दका कोलाहलविषै दोष कहै अभिप्राय ऐसा कोई और न सुणै तहां शब्दाकुलित दोष है बहुरि गुरु पासि आलोचनाकरि फेरि अन्य गुरुपासि आलोचना करै अभिप्राय ऐसा जो याका प्रायश्चित्त देखें, अन्य गुरु कहा बतावै, ऐसें बहुजननामा दोष है बहुरि जो दोष व्यक्त होय सो कहै अभिप्राय ऐसा—जो यह दोष छिपाया छिपै नाहीं कहया ही चाहिये सो अव्यक्त दोष है बहुरि अन्य मुनिनै लाग्या दोषकी गुरुपासि आलोचनाकरि प्रायश्चित्त लिया देखकरि तिस समान आपकू दोष लाग्या होय ताकी आलोचना गुरुपासि न करै आपही प्रायश्चित्त लेवै, अभिप्राय दोष प्रगटकरनेका न होय सो तत्सेवी दोष है ऐसें दशदोषरहित सरलचित्त होय बालककी ज्यों आलोचना करै ॥ ४५० ॥

जं किंपि तेण दिण्णं तं सव्वं सो करेदि सद्धाए ।
णो पुण हियए सकदि किं थोवं किमु बहुव वा ४५१

भावार्थ-दोषकी आलोचना करै पीछैं जो किछू आचार्य प्रायश्चित्त दीया तिस सर्व हीकू श्रद्धाकरि करै. हृदयविषै ऐसें शका सदेह न करै जो ए प्रायश्चित्त दिया सो थोडा है कि बहुत है. भावार्थ-प्रायश्चित्तके तत्त्वार्थ सूत्रमें नव भेद कहे हैं. आलोचन प्रतिक्रमण तदुभय विवेक व्युत्सर्ग तपश्छेद परिहार उपस्थापना तहा आलोचना तौ

दोपका यथावत् कहना, प्रतिक्रमण—दोपका मिथ्या करावना, तदुभय—आलोचन प्रतिक्रमण दोऊ करावना, विवेक—आगामी त्याग करावना, व्युत्सर्ग—कायोत्सर्ग करावना, तप, छेद कहिये दीक्षा छेदन, बहुत दिनके दीक्षितकूं थोड़े दिनका करना, परिहार—संघबाह्य करना, उपस्थापना फेरि नवा सिरतैं दीक्षा देना. ऐसैं नव हैं इनिके भी अनेक भेद हैं तहा देश काल अवस्था सामर्थ्य दूपणका विधान देखि यथाविधि आचार्य प्रायश्चित्त देहैं ताकू श्रद्धाकरि अंगीकार करै तार्मे संशय न करै ॥ ४५१ ॥

पुणरवि काउं णेच्छदि तं दोस जइवि जाइ सयखंडं ।
एव णिच्छयसहिदो पायच्छित्त तवो होदि ॥ ४५२ ॥

भाषार्थ—लाग्यादोपका प्रायश्चित्त लेकरि तिस दोपकूं फिरा न चाहै जो आपके शतखंड भी होय तौ न करै ऐसैं निश्चय सहित प्रायश्चित्त नामा तप होय है भावार्थ—ऐसा दिढचित्त करै जो लाग्या दोपकों फेरि अपना शरीरके शतखंड होय जाय तौऊ सो दोप न लगावै सो प्रायश्चित्त तप है ॥ ४५२ ॥

जो चिंतइ अप्पाणं णाणसरूवं पुणो पुणो णाणी ।
विकहादिविरत्तमणो पायच्छित्तं वर तस्स ॥ ४५३ ॥

भाषार्थ—जो ज्ञानी मुनि आत्माकू ज्ञानस्वरूप फेरि फेरि बारंबार चिंतवन करै, बहुरि विकथादिक प्रमादनितैं

निर्कों निरखि देखि निर्दोष पालने सो तपका विनय है ४५५

रयणत्तयजुत्ताणं अणुकूलं जो चरेदि भत्तीए ।
भिच्चो जह रायाणं उवयारो सो हवे विणओ ४५६

भावार्थ—जो रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका धारक मुनिनिके अनुकूल भक्तिकरि आचरण करै जैसें राजाके चाकर राजाके अनुकूल प्रवर्त्तै हैं तैसें साधूनिके अनुकूल प्रवर्त्तै सो उपचार विनय है. भावार्थ—जैसें राजाके चाकर किंकर लोक राजाके अनुकूल प्रवर्त्तै हैं, ताकी आज्ञा मानैं, हुकम होय सो करैं तथा प्रत्यक्ष देखि उठि खडा होय, सन्मुख होय, हाथद् जोडैं, प्रणाम करैं, चालै तब पीछैं होय चालैं, ताके पोसाख आदि उपकरण सवारैं, तैसें ही मुनिनिकी भक्ति मुनिनिका विनय करैं तिनकी आज्ञा मानैं प्रत्यक्ष देखै तब उठि सन्मुख होय हाथ जोडै प्रणाम करै चलैं तब पीछैं होय चालै उपकरण संवारै इत्यादिक तिनका विनय करै सो उपचार विनय है ॥ ४५६ ॥

आगें वैयावृत्य तपकौं दोय गाथाकरि कहै हैं,—

जो उवयरदि जदीणं उवसग्गजराइखीणकायाणं ।
पूजादिसु णिरवेक्खं विज्जावच्च तवो तस्स ॥ ४५७ ॥

भावार्थ—जो मुनि यति उपसर्गकरि पीडित होय तिनिका तथा जरा रोगादिककरि क्षीणकाय होय तिनिका अपनी चेष्टातैं तथा उपदेशतैं तथा अल्प

ताकै वैयावृत्य नामा तप होय है. सो कैसें करै आप अपने पूजा महिमा आदिविषै अपेक्षा वाछातैं रहित जैसें होय तैसें करै. भावार्थ–निस्पृह हूवा मुनिनिकी चाकरी करै सो वैयावृत्य है तहा आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल संघ साधु मनोज्ञ ये दश प्रकारके यति वैयावृत्य करने योग्य कहे हैं तिनिका यथायोग्य अपनी शक्तिसारू वैयावृत्य करै ॥ ४५७ ॥

जो वावरइसरूवे समदमभावम्मि सुद्धिउवजुत्तो ।
लोयववहारविरदो विज्जावच्च परं तस्स ॥ ४५८ ॥

भाषार्थ–जो मुनि शमदमभावरूप जो अपना आत्मस्वरूप ताके विषै शुद्ध उपयोगकरि युक्त हूवा प्रवर्तै अर लोकव्यवहार बाह्य वैयावृत्यसूं विरक्त होय, ताकै उत्कृष्ट निश्चय वैयावृत्य होय है भावार्थ—जो मुनि सम कहिये राग द्वेष रहित साम्यभाव, बहुरि दम कहिये इन्द्रियनिकौं विषयनिविषै न जानै देना, ऐसा जो अपना आत्मस्वरूप ताविषै लीन होय, ताकै लोकव्यवहाररूप बाह्य वैयावृत्य काहेकौं होय ? ताकै निश्चय वैयावृत्य ही होय है. शुद्धोपयोगी मुनिनिकी यह रीति है ॥ ४५८ ॥

आगें स्वाध्याय तपकौं छह गाथानिकरि कहै हैं,––

परतत्तीणिरवेक्खो दुट्ठवियप्पाण णासणसमत्थो ।
तच्चविणिच्छयहेदू सज्झाओ ज्झाणसिद्धियरो ॥४५९॥

भाषार्थ–जो मुनि परकी निन्दाविषै निरपेक्ष होय बा-

छारहित होय है. बहुरि दुष्ट जे मनके खोटे विकल्प तिनिके नाश करनेकूं समर्थ होय ताकैं तत्त्वके निश्चय करनेका कारण अर ध्यानकी सिद्धि करनेवाला स्वाध्यायनामा तप होय है. भावार्थ—जो परकी निंदा करनेविषैं परिणाम राखै अर आर्त्तरौद्रध्यानरूप खोटे विकल्प मनमैं चिंतवन कीया करै ताकै शास्त्रनिका अभ्यासरूप स्वाध्याय कैसैं होय तातैं तिनिकूं छोडि स्वाध्याय करै ताकै तत्त्वका निश्चय होय अर धर्म्यशुक्लध्यानकी सिद्धि होय, ऐसा स्वाध्याय तप है ॥ ४५९ ॥

पूजादिसु णिरवेक्खो जिणसत्थ जो पढेइ भत्तीए ।
कम्ममलसोहणट्ठं सुयलाहो सुहयरो तस्स ॥ ४६० ॥

भाषार्थ—जो मुनि अपनी अपनी पूजा महिमा आदिविषै तौ निरपेक्ष होय, वांछारहित होय अर भक्तिकरि जिनशास्त्र पढै, बहुरि कर्ममलके सोधनेके अर्थ पढै ताकै श्रुतका लाभ सुखकारी होय भावार्थ—जो पूजा महिमा आदिके अर्थ शास्त्रकूं पढै है ताकैं शास्त्रका पढना सुखकारी नाहीं. अपने कर्मक्षयके निमित्त जिनशास्त्रनिहीको पढै ताकै सुखकारी है ॥ ४६० ॥

जो जिणसत्थं सेवइ पंडियमानी फलं समीहंतो ।
साहम्मियपडिकूलो सत्थं पि विसं हवे तस्स ४६१

भाषार्थ—जो पुरुष जिनशास्त्र तौ पढै है अर

जन है. दुष्ट अभिप्रायतैं पढ़ै ताका निषेध है ॥ ४६२ ॥

जो अप्पाणं जाणदि असुइसरीरादु तच्चदो भिण्णं ।
जाणगरूवसरूवं सो सत्थं जाणदे सव्वं ॥ ४६३ ॥

भाषार्थ–जो मुनि अपने आत्माकौ इस अपवित्र शरीरतैं भिन्न ज्ञायकरूप स्वरूप जाणै सो सर्व शास्त्र जाणै. भावार्थ–जो मुनि शास्त्र अभ्यास अल्प भी करै है अर अपना आत्माका रूप ज्ञायक देखन जाननहारा इस अशुचि शरीरतैं भिन्न शुद्ध उपयोगरूप होय जाणै है, सो सर्व ही शास्त्र जानै है. अपना स्वरूप न जान्या अर बहुत शास्त्र पढे तौ कहा साध्य है? ॥ ४६३ ॥

जो ण विजाणदि अप्पं णाणसरूवं सरीरदो भिण्णं ।
सो ण विजाणदि सत्थं आगमपाढं कुणंतो वि ॥ ४६४ ॥

भाषार्थ–जो मुनि अपने आत्माकौं ज्ञानस्वरूप शरीरतैं भिन्न नाहीं जानै है सो आगमका पाठ करै तौऊ शास्त्रकौ नाहीं जानै है. भावार्थ–जो मुनि शरीरतैं भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्माकौ नाहीं जानै है सो बहुत शास्त्र पढै है तौऊ बिना पढ्या ही है. शास्त्रके पढनेका सार तौ अपना स्वरूप जानि रागद्वेषरहित होना था सो पढिकरि भी ऐसा न भया तो काहेका पढ्या? अपना स्वरूप जानि तामैं थिर होना सो निश्चयस्वाध्यायतप है. वाचना पृच्छना अनुप्रेक्षा आम्नाय धर्मोपदेश ऐसैं पांचप्रकार व्यवहारस्वाध्याय है

यह व्यवहार निश्चयके अर्थ होय सो व्यवहार भी सत्यार्थ है विना निश्चय व्यवहार थोथा है ॥ ४६४ ॥

आगें व्युत्सर्ग तपकों कहै हैं,—

जल्लमललित्तगत्तो दुस्सहवाहीसु णिप्पडीयारो ।
मुहधोवणादिविरओ भोयणसेज्जादिणिरवेक्खो ६५
ससरूवचिंतणरओ दुज्जणसुयणाण जो हु मज्झत्थो ।
देहे वि णिम्ममत्तो काओसग्गो तवो तस्स ॥ ६६ ॥

भावार्थ—जो मुनि जल्ल कहिये पसेव अर मल तिनि-करि तौ लिप्त शरीर होय, बहुरि सह्या न जाय ऐसा भी तीव्र रोग आवै, ताका प्रतीकार न करै इलाज न करै, मुखका धोवणा आदि शरीरका सस्कार न करै भोजन अर सेज्या आदिकी वांछा न करै, बहुरि अपने स्वरूप चिंतवनविषै रत होय, लीन होय, बहुरि दुर्जन सज्जनविषै मध्यस्थ होय, शत्रु मित्र बराबर जानै, बहुत कहा कहिये देहविषै भी ममत्वरहित होय, ताकै कायोत्सर्ग नामा तप होय है. मुनि कायोत्सर्ग करै है, तब सर्व बाह्य अभ्यतर परिग्रहत्यागकरि सर्व बाह्य आहारविहारादिक कियासू रहित ... कायसू ममत्व छाडि अपना ज्ञानस्वरूप आत्माविषै ... हित शुद्धोपयोगरूप होय लीन होय है, तिस ... नेक उपसर्ग आवो, रोग आवो, कोई ... हारो, स्वरूपतैं चिगै नाहीं, काहूतैं रागद्वेष ... है ताकै कायोत्सर्ग तप होय है ॥ ४६५-

जो देहपालणपरो उवयरणादीविसेससंसत्तो।
वाहिरववहाररओ काओसग्गो कुदो तस्स ॥ ४६७ ॥

भावार्थ–जो मुनि देहके पालनेविषै तत्पर होय, उपकरण आदिकविषै विशेष ससक्त होय, बहुरि बाह्य व्यवहार लोकरंजन करनेविषै रत होय, तत्पर होय ताकै कायोत्सर्ग तप काहेतैं होय ? भावार्थ–जो मुनि बाह्य व्यवहार पूजा प्रतिष्ठा आदि तथा ईर्यासमिति आदि क्रिया ताकौं लोक जानैं यह मुनि है ऐसी क्रियामें तत्पर होय अर देहका आहारादिकतैं पालना उपकरणादिकका विशेष सवारना शिष्य जनादिकतैं बहुत ममता राखि प्रसन्न होना इत्यादिकमें लीन होय अर अपना स्वरूपका यथार्थ अनुभव जाकै नाहीं तामें कबहू लीन होय ही नाहीं कायोत्सर्ग भी करै तौ खड़ा रहना आदि बाह्य विधान करले तौ ताकै कायोत्सर्ग तप न कहिये निश्चय विना बाह्यव्यवहार निरर्थक है ॥ ४६७ ॥

अंतो मुहुत्तमेत्तं लीणं वत्थुम्मि माणसं णाणं ।
झाणं भण्णइ समए असुहं च सुहं च तं दुविहं ६८

भावार्थ–जो मनसबंधी ज्ञान वस्तुविषै अंतर्मुहूर्तमात्र लीन होय एकाग्र होय सो सिद्धान्तविषै ध्यान कह्या है सो शुभ बहुरि अशुभ ऐसैं दोय प्रकार कहया है भावार्थ–ध्यान परमार्थतैं ज्ञानका उपयोग ही है जो ज्ञानका उपयोग एक ज्ञेय वस्तुमें अन्तर्मुहूर्तमात्र एकाग्र ठहरै सो ध्यान है सो शुभ भी है अर अशुभ भी है ऐसैं दोय प्रकार है ॥ ४६८ ॥

यह व्यवहार निश्चयके अर्थ होय सो व्यवहार भी सत्यार्थ है विना निश्चय व्यवहार थोथा है ॥ ४६४ ॥

आगें व्युत्सर्ग तपकों कहै हैं,—

जल्लमललित्तगत्तो दुस्सहवाहीसु णिप्पडीयारो ।
मुहधोवणादिविरओ भोयणसेज्जादिणिरवेक्खो ६५
ससरूवचिंतणरओ दुज्जणसुयणाण जो हु मज्झत्थो।
देहे वि णिम्ममत्तो काओसग्गो तवो तस्स ॥ ६६ ॥

भावार्थ–जो मुनि जल्ल कहिये पसेव अर मल तिनिकरि तौ लिप्त शरीर होय, बहुरि सह्या न जाय ऐसा भी तीव्र रोग आवै, ताका प्रतीकार न करै इलाज न करै, मुखका धोवणा आदि शरीरका सस्कार न करै भोजन अर सेज्या आदिकी वांछा न करै, वहुरि अपने स्वरूप चिंतवनविषै रत होय, लीन होय, बहुरि दुर्जन सज्जनविषै मध्यस्थ होय, शत्रु मित्र बराबर जानै, बहुत कहा कहिये देहविषै भी ममत्वरहित होय, ताकै कायोत्सर्ग नामा तप होय है. मुनि कायोत्सर्ग करै है, तब सर्व बाह्य अभ्यतर परिग्रह त्यागकरि सर्व बाह्य आहारविहारादिक क्रियासू रहित होय कायसू ममत्व छाडि अपना ज्ञानस्वरूप आत्माविषै रागद्वेषरहित शुद्धोपयोगरूप होय लीन होय है, तिस काल जो अनेक उपसर्ग आवो, रोग आवो, कोई शरीरकों काटि ही डारो, स्वरूपतैं चिगै नाहीं, काहूतैं रागद्वेष नाहीं उपजावै है ताकैं कायोत्सर्ग तप होय है ॥ ४६५–४६६ ॥

जो देहपालणपरो उवयरणादीविसेससंसत्तो।
बाहिरववहाररओ काओसग्गो कुदो तस्स ॥ ४६७ ॥

भाषार्थ—जो मुनि देहके पालनेविषै तत्पर होय, उपकरण आदिकविषै विशेष ससक्त होय, बहुरि बाह्य व्यवहार लोकरंजन करनेविषै रत होय, तत्पर होय ताकै कायोत्सर्ग तप काहेतैं होय ? भावार्थ—जो मुनि बाह्य व्यवहार पूजा प्रतिष्ठा आदि तथा ईर्यासमिति आदि क्रिया ताकों लोक जानैं यह मुनि है ऐसी क्रियामें तत्पर होय अर देहका आहारादिकतैं पालना उपकरणादिकका विशेष सवारना शिष्यजनादिकतैं बहुत ममता राखि प्रसन्न होना इत्यादिकमें लीन होय अर अपना स्वरूपका यथार्थ अनुभव जाकै नाहीं तामें कबहू लीन होय ही नाहीं कायोत्सर्ग भी करै तौ खड़ा रहना आदि बाह्य विधान करले तौ ताकै कायोत्सर्ग तप न कहिये निश्चय विना बाह्यव्यवहार निरर्थक है ॥ ४६७ ॥

अंतो मुहुत्तमेत्तं लीणं वत्थुम्मि माणसं णाणं ।
ज्झाणं भण्णइ समए असुहं च सुहं च तं दुविहं ६८

भाषार्थ—जो मनसबंधी ज्ञान वस्तुविषै अन्तर्मुहूर्तमात्र लीन होय एकाग्र होय सो सिद्धान्तविषै ध्यान कह्या है सो शुभ बहुरि अशुभ ऐसैं दोय प्रकार कह्या है भावार्थ—ध्यान परमार्थतैं ज्ञानका उपयोग ही है जो ज्ञानका उपयोग एक ज्ञेय वस्तुमें अन्तर्मुहूर्तमात्र एकाग्र ठहरै सो ध्यान है सो शुभ भी है अर अशुभ भी है ऐसैं दोय प्रकार है ॥ ४६८ ॥

आगें शुभ अशुभध्यानके नाम स्वरूप कहे हैं,—

अमुहं अट्ट रउद्दं धम्मं सुक्कं च सुहयरं होदि।
आदं तिव्वकसायं तिव्वतमकसायदो रुद्दं ॥ ४६९ ॥

भावार्थ-आर्तध्यान रौद्रध्यान ए दोऊ तौ अशुभध्यान हैं बहुरि धर्मध्यान अर शुक्लध्यान ए दोऊ शुभ अर शुभतर हैं तिनिमें आदिका आर्तध्यान तौ तीव्र कषायतें होय है अर रौद्रध्यान अति तीव्र कषायतें होय है ॥ ४६९ ॥

मंदकसायं धम्मं मंदतमकसायदो हवे सुक्कं।
अकसाए वि सुयड्ढे केवलणाणे वि त होदि ॥४७०॥

भावार्थ-धर्म ध्यान है सो मंदकषायतें होय है बहुरि शुक्लध्यान है सो अतिशयकरि मंदकषायतें होय महामुनि श्रेणी चढै तिनिके होय है अर कषायका अभाव भये श्रुतज्ञानी उपशांतकषाय क्षीणकषाय तथा केवलज्ञानी सयोगी अयोगी जिनकैं भी कहिये है भावार्थ-धर्मध्यान तौ व्यक्तरागसहित पंच परमेष्ठी तथा दशलक्षणस्वरूप धर्म तथा आत्मस्वरूपविषै उपयोग एकाग्र होय है तातैं याकूं मन्दकषाय सहित है ऐसा कहा है बहुरि शुक्लध्यान है सो उपयोगमें व्यक्तराग तौ नाहीं अर अपने अनुभवमें न आवै ऐसा सूक्ष्मराग सहित श्रेणी चढै है तहा आत्मपरिणाम उज्वल होय हैं यातैं शुचि गुणके योगतैं शुक्ल कह्या है, ताकूं मन्दतम कषाय कहिये अतिशय मंदकषायतैं होय है ऐसा कह्या है तथा कषायके अभाव भये भी कह्या है ॥ ४७० ॥

आगें आर्त्तध्यानकूं कहै हैं,—

दुक्खयरविसयजोए केण इमं चयदि इदि विचिंततो।
चेट्ठदि जो विक्खित्तो अट्ट ज्झाणं हवे तस्स ॥४७१॥
मणहरविसयविजोगे कह तं पावेमि इदि वियप्पो जो।
संतावेण पयट्टो सो चिय अट्ट हवे ज्झाण ॥ ४७२ ॥

भावार्थ—जो पुरुष दुःखकारी विषयका संयोग होते ऐसा चितवन करै जो यह मेरे कैसे दूर होय? बहुरि तिसके संयोगतैं विक्षिप्तचित्त भया संता चेष्टा करै, रुदनादिक करै तिसके आर्त्तध्यान होय है. बहुरि जो मनोहर प्यारी विषय सामग्रीका वियोग होतें ऐसा चितवन करै जो ताहि मैं कैसैं पाऊं, ताके वियोगतैं संतापरूप दुःखरूप प्रवर्त्ते, सो भी आर्त्तध्यान है. भावार्थ—आर्त्तध्यान सामान्य तौ दुःखक्लेशरूप परिणाम है. तिस दुःखमें लीन रहै अन्य किछू चेत रहै नाहीं ताकूं दोय प्रकारकरि कह्या प्रथम तौ दुःखकारी सामग्रीका संयोग होय ताकूं दूरि करनेका ध्यान रहै दूसरा इष्ट सुखकारी सामग्रीका वियोग होय ताके मिलावनेका चितवन ध्यान रहै सो आर्त्तध्यान है. अन्य ग्रन्थनिमें च्यारि भेद कहे हैं—इष्टवियोगका चितवन, अनिष्टसंयोगका चितवन, पीडाका चितवन, निदानबंधका चितवन. सो इहां दोय कहे तिनिमें ही अंतर्भाव भये अनिष्टसंयोगके दूरि करनेमें तौ पीडा चितवन आय गया, अर इष्टके मिलावनेकी वांछा

में निदानबंध आयगया ये दोऊ ध्यान अशुभ हैं पापबंधकूं करै है धर्मात्मा पुरुषनिके त्यजने योग्य हैं ॥ ४७२ ॥

आगें रौद्रध्यानकों कहै हैं,—

हिंसाणंदेण जुदो असच्चवयणेण परिणदो जो दु ।
तत्थेव अथिरचित्तो रुद्दं ज्झाणं हवे तस्स ॥ ४७३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष हिंसाविषै आनन्दकरि संयुक्त होय बहुरि असत्य वचन करि परिणमता रहै तहां ही विक्षिप्त-चित्त रहै तिसकै रौद्रध्यान होय है भावार्थ—हिंसा जो जीवनिका घात तिसकौं करि अति हर्ष मानै, शिकार आदिमें आनन्दतैं प्रवर्त्तै, परके विघ्न होय, तब अति संतुष्ट होय बहुरि झूठ बोलि करि अपना प्रवीणपणा मानै, परके दोषनिकौं निरन्तर देखै, कहै तामें आनंद मानै ऐसैं ए दोय भेद रौद्रध्यानके कहे ॥ ४७३ ॥

आगें दोय भेद और कहै हैं,—

परविसयहरणसीलो सगीयविसयेसु रक्खणे दक्खो ।
तग्गयचित्ताविट्ठो णिरंतरं तं पि रुद्दं पि ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष परकी विषय सामग्रीकू हरणेका स्वभावसहित होय, बहुरि अपनी विषय सामग्रीकी रक्षा करनेविषै प्रवीण होय, तिनि दोऊ कार्यनिविषै लीनचित्त निरन्तर राखै, तिस पुरुषकै यह भी रौद्रध्यान ही है. भावार्थ, परकी सम्पदाकौं चोरनेविषै प्रवीण होय चोरीकरि हर्ष मानै

बहुरि अपनी विषय सामग्रीकू राखने का अति यत्न करै ताकी रक्षाकरि आनन्द मानै ऐसे ये चार भेद रौद्रध्यानके भये. ऐसैं ये चारों भेदरूप रौद्रध्यान अतितीव्र कषायके योगतैं होय हैं,महापाप रूप हैं. महापापबन्धकू कारण हैं सो धर्मात्मा पुरुष ऐसे ध्यानकों दूरिहीतैं छोडै हैं. जेते जगतकौं उपद्रवके कारण हैं तेते रौद्रध्यानयुक्त पुरुषतैं बणै है जातैं पापकरि हर्षमानै सुख मानै ताको धर्मका उपदेश भी नाहीं लागै है अति प्रमादी हूवा अचेत पापहीमें मस्त रहै है ॥ ४७४ ॥

आगें धर्मध्यानकू कहै हैं,—

विण्णिवि असुहे ज्झाणे पावणिहाणे य दुक्खसंताणे।
णच्चा दूरे वज्जह धम्मे पुण आयरं कुणहु ॥ ७५ ॥

भाषार्थ-हे भव्य जीव हो ! आर्त्तरौद्र ये दोऊ ही ध्यान अशुभ हैं पापके निधान दुःखके संतान जाणिकरि दूरिहीतैं छोडौ, बहुरि धर्मध्यानविषै आदर करौ. भावार्थ-आर्त्तरौद्र दोऊ ही ध्यान अशुभ है अर पापके भरे हैं अर दुःखहीकी संतति इनिमें चली जाय है तातैं छोडिकरि धर्मध्यान करनेका श्रीगुरुनिका उपदेश है ॥ ४७५ ॥

आगें धर्मका स्वरूप कहै हैं,—

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाण रक्खण धम्मो ॥ ७६ ॥

भाषार्थ-वस्तुका स्वभाव सो धर्म है. जैसैं जीवका द-

र्शन ज्ञान स्वरूप चैतन्यस्वभाव सो याका एही धर्म है. बहुरि क्षमादिक भाव दश प्रकार सो धर्म हैं बहुरि रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र सो धर्म है बहुरि जीवनिकी रक्षा करना सो भी धर्म है. भावार्थ–अभेदविवक्षाकरि तौ वस्तुका स्वभाव सो धर्म है जीवका चैतन्य स्वभाव सो ही याका धर्म है. बहुरि भेद विवक्षाकरि दशलक्षण उत्तम क्षमादिक तथा रत्नत्रयादिक धर्म है बहुरि निश्चयतैं तो अपने चैतन्यकी रक्षा विभावपरिणतिरूप न परिणमना अर व्यवहारकरि पर जीवकौं विभावरूप दुःख क्लेशरूप न करना ताहीका भेद जीवको प्राणात न करना यह धर्म है ॥ ४७६ ॥

आगें धर्मध्यान कैसे जीवकैं होय सो कहै हैं,—

धम्मे एयग्गमणो जो ण हि वेदेइ इंदिय विसय।
वेरग्गमओ णाणी धम्मज्झाणं हवे तस्स ॥ ७७ ॥

भावार्थ–जो पुरुष ज्ञानी धर्मविषैं एकाग्रमन होय वर्त्तैं, बहुरि इन्द्रियनिके विषयनिकौं न वेदै बहुरि वैराग्यमयी होय, तिस ज्ञानीकै धर्मध्यान होय है. भावार्थ–ध्यानका स्वरूप एक ज्ञेयकेविषै ज्ञानका एकाग्र होना है. जो पुरुष धर्मविषै एकाग्रचित्त करै तिस काल इन्द्रिय विषयनिकौं न वेदै ताकै धर्मध्यान होय है. याका मूलकारण संसारदेहभोगसू वैराग्य है विना वैराग्यके धर्ममें चित्त थमै नाहीं ॥७७॥

सुविसुद्धरायदोसो वाहिरसकप्पवज्जिओ धीरो।

ण्ययरगमणो संतो जं चिंतइ तं पि सुहज्झाणं ॥७८॥

भावार्थ–जो पुरुष रागद्वेषतैं रहित हूवा संता बाह्यके सकल्पकरि वर्जित हूवा धीरचित्त एकाग्रमन हूवा सन्ता जो चितवन करै सो भी शुभध्यान है भावार्थ–जो रागद्वेषमयी वा वस्तुसम्बन्धी सकल्प छोडि एकाग्रचित्त होय काहूका चलाया न चलै ऐसा होय चितवन करे सो भी शुभ ध्यान है॥ ४७८ ॥

ससरूवसमुब्भासो णट्ठममत्तो जिदिंदिओ संतो ।
अप्पाण चिंतंतो सुहज्झाणरओ हवे साहू ॥ ७९ ॥

भावार्थ–जो साधु अपने स्वरूपका है समुद्भास कहिये प्रगट होना जाकै ऐसा हूवा संता, तथा परद्रव्यविषै नष्ट भया है ममत्व भाव जाकै ऐसा हूवा संता, तथा जीते हैं इन्द्रिय जानैं, ऐसा हूवा संता आत्माकौं चितवन करता सन्ता प्रवर्तै सो साधु शुभध्यानकेविषै लीन होय है. भावार्थ–जाकै अपना स्वरूपका तो प्रतिभास भया होय अर परद्रव्यविषै ममत्व न करै अर इन्द्रियनिकौं वश करै ऐसैं आत्माका चितवन करै सो साधु शुभ ध्यानविषै लीन होय है, अन्यकै शुमध्यान न होय है ॥ ४७९ ॥

वज्जियसयलवियप्पो अप्पसरूवे मण णिरुंभित्ता ।
जं चिंतइ साणदं तं धम्मं उत्तमं ज्झाणं ॥ ४८० ॥

भावार्थ–जो समस्त अन्य विकल्पनिकू वर्जकरि आत्म

स्वरूपविषै मनकू रोककरि आनन्दसहित चितवन होय सो उत्तम धर्मध्यान है भावार्थ—जो समस्त अन्य विकल्पनिसैं रहित आत्मस्वरूपविषै मनकू थामनेतैं आनन्दरूप चिन्तवन रहै सो उत्तम धर्मध्यान है इहां संस्कृत टीकाकार धर्मध्यानका अन्य ग्रंथनिकै अनुसार विशेष कथन किया है ताकौं संक्षेपकरि लिखिये है—तहां धर्मध्यानके च्यारि भेद कहे हैं आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, ऐसैं तहां जीवादिक छह द्रव्य पंचास्तिकाय सप्ततत्त्व नव पदार्थनिका विशेष स्वरूप विशिष्ट गुरुके अभावतैं तथा अपनी मंदबुद्धिके वशतैं प्रमाण नय निक्षेपनितैं साधिये ऐसा जान्या न जाय तब ऐसा श्रद्धान करै जो सर्वज्ञ वीतराग देवने कह्या है सो हमारै प्रमाण है ऐसैं आज्ञा मानि ताके अनुसार पदार्थनिमैं उपयोग थामै * सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है १ बहुरि अपाय नाम नाशका है सो जैसैं कर्मनिका नाश होय तैसैं चितवै तथा मिथ्यात्वभाव धर्मविषै विघ्नके कारण हैं तिनिका चितवन राखै—अपने न होनेका चितवन करै परके मेटनेका चितवन करै सो अपायविचय है २ बहुरि विपाक नाम कर्मके उदयका है सो जैसा कर्म उदय होय ताका तैसा स्वरूपका चितवन करै सो विपाकविचय है ३ बहुरि लोकका स्वरूप चितवना सो संस्थान विचय है ४ बहुरि दशप्रकार भी कह्या है—अपायविचय उपायविचय जीवविचय आज्ञाविचय विपाकविचय अजीवविचय

हेतुविचय विरागविचय भवविचय संस्थानविचय ऐसें इनि दशनिका चितवन सो ए च्यारि भेदनिका विशेष कीये हैं. बहुरि पदस्थ पिंडस्थ रूपस्थ रूपातीत ऐसें च्यारि भेदरूप धर्मध्यान होय है. तहा पद तौं अक्षरनिके समुदायका नाम है सो परमेष्ठीके वाचक अक्षर हैं जिनकूं मंत्र संज्ञा है सो तिनि अक्षरनिकूं प्रधानकरि परमेष्ठीका चितवन करै तहा तिस अक्षरमें एकाग्रचित्त होय सो तिसका ध्यान कहिये। तहा नमोकार मन्त्रके पैंतीस अक्षर हैं ते प्रसिद्ध हैं तिनिविषै मन लगावै तथा तिस ही मन्त्रके भेदरूप कीये संक्षेप सोलह अक्षर हैं "अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय साहू" ऐसें सोलह अक्षर हैं. बहुरि इसहीके भेदरूप 'अरहंत सिद्ध' ऐसे छह अक्षर हैं बहुरि इसहीका संक्षेप " अ सि आ उ सा " ये आदिअक्षररूप पांच अक्षर हैं. बहुरि "अरहंत" ए च्यारि अक्षर हैं बहुरि "सिद्ध" अथवा "अर्हं" ऐसें दोय अक्षर हैं बहुरि "ॐ" ऐसा एक अक्षर है. यामें पंचपरमेष्ठीका आदि

---

* सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिना ॥

१ पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनं ।
रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरंजनं ॥

[ २ ] अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ।

[ ३ ] णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

अक्षर सर्व हैं. अरहंतका अकार अशरीर जे सिद्ध तिनिका अकार आचार्यका आकार उपाध्यायका उकार मुनिका मकार ऐसैं पांच अक्षर अ+अ+आ+उ+म्="ओं"[४] ऐसा सिद्ध होय है. ऐसैं ए मंत्रवाक्य हैं सो इनिका उच्चारणरूप-करि मनविषै चिंतवनरूप ध्यान करै तथा इनिका वाच्य अर्थ जो परमेष्ठी तिनिका अनन्तज्ञानादिरूप स्वरूप विचारि ध्यान करना, बहुरि अन्य भी बारह हजार श्लोकरूप नम-स्कार ग्रन्थ हैं ताकै अनुसार तथा लघुवृहत् सिद्धचक्र प्रतिष्ठा ग्रन्थनिमें मन्त्र कहे हैं तिनिका ध्यान करना, मन्त्रनिका के-ताइक कथन संस्कृत टीकामें है सो तहांतैं जानना इहां सं-क्षेप लिख्या है. ऐसैं पदस्थध्यान है बहुरि पिंड नाम श रीरका है तिसविषै पुरुषाकार अमूर्तीक अनन्तचतुष्टयकरि संयुक्त जैसा परमात्माका स्वरूप तैसा आत्माका चिंतवन क-रना सो पिंडस्थध्यान है बहुरि रूप कहिये अरहंतका रूप समवसरणविषै घातिकर्मरहित चौंतीस अतिशय आठ प्राति हार्यकरि सहित अनन्तचतुष्टयमंडित इन्द्र आदिकरि पूज्य परम औदारिक शरीरकरि युक्त ऐसा अरहंतकूं ध्यावै तथा ऐसा ही संकल्प अपने आत्माका करि आपकूं ध्यावै सो रूपस्थ ध्यान है बहुरि देहविना बाह्यके अतिशयादिकविना अपना परका ध्याता ध्यान ध्येयका भेदविना सर्व विकल्प-

---

[ ४ ] अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो।
पढमक्खरणिप्पणो ओंकारो पंचपरमेट्ठी ॥ १ ॥

रहित परमात्मस्वरूपविषै लयकूं प्राप्त होय सो रूपातीत ध्यान है. ऐसा ध्यान सातवें गुणस्थान होय तब श्रेणीकों माडै यह ध्यान अक्षरागसहित चतुर्थ गुणस्थानतें लगाय सातवां गुणस्थान ताईं अनेक भेदरूप प्रवर्त्तै है ॥ ४८० ॥

आगें शुक्ल ध्यानकौं पाच गाथाकरि कहै हैं,—

जत्थ गुणा सुविसुद्धा उवसमखमणं च जत्थ कम्माणं ।
लेसा वि जत्थ सुक्का त सुक्क भण्णदे ज्झाणं ॥४८१॥

भावार्थ-जहां भले प्रकार विशुद्ध व्यक्त कषायनिके अनुभवरहित उज्वल गुण कहिये ज्ञानोपयोग आदि होय, बहुरि कर्मनिका जहां उपशम तथा क्षय होय, बहुरि जहां लेश्या भी शुक्ल ही होय, तिमकौं शुक्लध्यान कहिये है. भावार्थ-यह सामान्य शुक्लध्यानका स्वरूप कह्या विशेष आगें कहै हैं बहुरि कर्मके उपशमनका अर क्षपणका विधान अन्य ग्रन्थनितैं टीकाकार लिख्या है सो आगें लिखियेगा ।

आगें विशेष भेदनिकू कहै हैं,—

पडिसमयं सुज्झनो अणंतगुणिदाए उभयसुद्धीए ।
पढम सुक्कं ज्झायदि आरूढो उभयसेणीसु ॥ ४८२ ॥

भावार्थ-उपशमक अर क्षपक इनि दोऊ श्रेणीनिविषैं आरूढ हूवा सता समय समय अनतगुणी विशुद्धता कर्मका उपशमरूप तथा क्षयरूपकरि शुद्ध होता सता मुनि प्रथम शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा ध्यावै है.

मिथ्यात्व तीन, कषाय अनंतानुबंधी च्यारि प्रकृतिनिका उपशम तथा क्षय करि सम्यग्दृष्टी होय पीछैं अप्रमत्त गुणस्थानविषै सातिशय विशुद्धतासहित होय श्रेणीका प्रारम्भ करै, तब अपूर्वकरण गुणस्थान होय शुक्लध्यानका पहला पाया प्रवर्त्तै, तहां जो मोहकी प्रकृतिनिकूं उपशमावनेका प्रारम्भ करै तौ अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय इनि तीन गुणस्थाननिविषै समय समय अनन्तगुणी विशुद्धताकरि वर्द्धमान होता संता मोहनीय कर्मकी इकईस प्रकृतिनिकूं उपशमकरि उपशांत कषाय गुणस्थानकूं प्राप्त होय है अर जे मोहकी प्रकृतिनिकूं खपावनेका प्रारंभ करै तौ तीनूं गुणस्थानविषै इकईस मोहकी प्रकृतिनिका सत्तामेंसूं नाशकरि क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानकूं प्राप्त होय है ऐसैं शुक्लध्यानका पहला पाया पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा प्रवर्त्तै है तहां पृथक कहिये न्यारा न्यारा वितर्क कहिये श्रुतज्ञानका अक्षर अर अर्थ अर वीचार कहिये अर्थका व्यंजन कहिये अक्षररूप वस्तुका नामका अर मन वचन कायके योग इनिका पलटना सो इस पहले शुक्लध्यानमें होय है तहां अर्थ तौ द्रव्य गुणपर्याय है सो पलटै, द्रव्यसूं द्रव्यान्तर गुणसूं गुणान्तर पर्यायसूं पर्यायान्तर बहुरि तैसैं ही वर्णसूं वर्णान्तर बहुरि तैसैं ही योगसूं योगांतर है।

इहां कोई पूछै—ध्यान तौ एकाग्रचिंतानिरोध है पलटनेकूं ध्यान कैसैं कहिये ? ताका समाधान—जो जेतीवार एक

परि थमे सो तो ध्यान भया पलट्या तब दूसरे परि थंभ्या सो भी ध्यान भया ऐसैं ध्यानके संतानकू भी ध्यान कहिये। इहा सतानकी जाति एक है ताकी अपेक्षा लेणी. बहुरि उपयोग पलटै सो इसके ध्याताकै पलटावनेकी इच्छा नाहीं है जो इच्छा होय तो रागसहित यह भी धर्म ध्यान ही ठहरै. इहा रागका अव्यक्त भया सो केवलज्ञानगम्य है ध्याताके ज्ञान गम्य नाहीं आप शुद्ध उपयोगरूप हूवा पलटनेका भी ज्ञाता ही है. पलटना क्षयोपशम ज्ञानका स्वभाव है सो यह उपयोग बहुत काल एकाग्र रहै नाहीं याकू शुक्ल ऐसा नाम रागके अव्यक्त होनेहीतै कह्या है ॥ ४८२ ॥

आगें दूजा भेद कहै हैं,—

णिस्सेसमोहविलये खीणकसाओ य अंतिमे काले ।
ससरूवम्मि णिलीणो सुक्कं ज्झायेदि एयत्तं ४८३

भाषार्थ—आत्मा समस्त मोहकर्मका नाश भये क्षीण कषाय गुणस्थानका अतके कालविषै अपने स्वरूपविषै लीन हूवा सता एकत्ववितर्कवीचारनामा दूसरा शुक्लध्यानकौं ध्यावै है. भावार्थ—पहले प येमें उपयोग पलटै था सो पलट ता रहगया एक द्रव्य तथा पर्यायपरि तथा एक व्यंजनपरि तथा एक योगपरि थभि गया, अपने स्वरूपमें लीन है ही, अब घातिकर्मका नाशकरि उपयोग पलटैगा सो सर्वका प्रत्यक्ष ज्ञाता होय लोकालोककौं जानना यह ही पलटना रह्या है ॥ ४८३ ॥

आगें तीसरा भेद कहै हैं,—

केवलणाणसहावो सुहमे जोगम्मि संठिओ काए ।
जं ज्झायदि सजोगिजिणो तं तदिय सुहमकिरियं च ॥

भाषार्थ-केवलज्ञान है स्वभाव जाका ऐसा सयोगी जिन सो जब सूक्ष्म काय योगमें तिष्ठै तिस काल जो ध्यान होय सो तीसरा सूक्ष्मक्रिया नामा शुक्ल ध्यान है भावार्थ— जब घातिकर्मका नाशकरि केवल उपजै, तब तेरहवा गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली होय है तहां तिस गुणस्थानकालका अंतमें अंतर्मुहूर्त शेष रहै तब मनोयोग वचनयोग रुकि जाय अर काययोगकी सूक्ष्मक्रिया रह जाय तब शुक्लध्यानका तीसरा पाया कहिये है सो इहां उपयोग तौ केवलज्ञान उपज्या तबहीतैं अवस्थित है अर ध्यानमें अन्तर्मुहूर्त ठहरना कह्या है सो इस ध्यानकी अपेक्षा तौ इहां ध्यान है नाहीं अर योगके थमनेकी अपेक्षा ध्यानका उपचार है अर उपयोगकी अपेक्षा कहिये तौ उपयोग थंभ ही रह्या है किछू जानना रह्या नाहीं तथा पलटावनेवाला प्रतिपक्षी कर्म रह्या नाहीं तातैं सदा ही ध्यान है अपने स्वरूपमें रमि रहे हैं ज्ञेय आरसीकी ज्यों समस्त प्रतिबिंबित होय रहे हैं, मोहके नाशतैं काहूविषै इष्ट अनिष्टभाव नाहीं है ऐसैं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामा तीसरा शुक्लध्यान प्रवर्तै है ॥ ४८४ ॥

आगें चौथा भेद कहै हैं,—

जोगविणासं किच्चा कम्मचउक्कस्स खवणकरणट्ठं ।

जं ज्झायदि अजोगिजिणो णिक्किरियं तं चउत्थं च

भाषार्थ—केवली भगवान् योगनिकी प्रवृत्तिका अभावकरि जब अयोगी जिन होय है तब अघातियाकी प्रकृति सत्तामें पिच्यासी रहीं हैं तिनिका क्षय करनेके अर्थ जो ध्यावै है सो चौथा व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामा शुक्लध्यान होय है भावार्थ—चौदहवा गुणस्थान अयोगीजिन है तहां स्थिति पंचलघु अक्षरप्रमाण है, तहां योगनिकी प्रवृत्तिका अभाव है सो सत्तामें अघातिकर्मकी पिच्यासी प्रकृति है तिनिके नाशका कारण यह योगनिका रुकना है तातैं इसकौं ध्यान कह्या है, सो तेरहवा गुणस्थानकी ज्यों इहां भी ध्यानका उपचार जानना, किछू इच्छापूर्वक उपयोगका थामनेरूप ध्यान है नाहीं, इहां कर्म प्रकृतिनिके नाम तथा और भी विशेष कथन अन्यग्रन्थनिके अनुसार हैं सो संस्कृतटीकातैं जानना, ऐसें ध्यान तपका स्वरूप कह्या ॥ ४८५ ॥

आगें तपके कथनकौं संकोचै है,—

एसो बारसभेओ उग्गतवो जो चरेदि उवजुत्तो ।
सो खविय कम्मपुंजं मुत्तिसुहं उत्तमं लहई ॥४८६॥

भाषार्थ—यह बारह प्रकारका तप कह्या जो मुनि इनिविषै उपयोग लगाय उग्र तीव्र तपकौं आचरण करै है सो मुनि मुक्तिके सुखकौं पावै है कैसा है मुक्तिसुख खेप हैं कर्मके पुंज जानैं बहुरि अक्षय है अविनाशी है, भावार्थ—तप

आगैं तीसरा भेद कहै हैं,—

केवलणाणसहावो सुहमे जोगम्मि संठिओ काए ।
जं झायदि सजोगिजिणो तं तदिय सुहमकिरियं च ॥

भावार्थ-केवलज्ञान है स्वभाव जाका ऐसा सयोगी जिन सो जब सूक्ष्म काय योगमें तिष्ठै तिस काल जो ध्यान होय सो तीसरा सूक्ष्मक्रिया नामा शुक्लध्यान है भावार्थ— जब घातिकर्मका नाशकरि केवल उपजै, तब तेरहवा गुण-स्थानवर्त्ती सयोगकेवली होय है तहां तिस गुणस्थानकालका अंतमें अंतर्मुहूर्त्त शेष रहै तब मनोयोग वचनयोग रुकि जाय अर काययोगकी सूक्ष्मक्रिया रह जाय तब शुक्लध्यानका तीसरा पाया कहिये है सो इहां उपयोग तौ केवलज्ञान उपज्या तबहीतैं अवस्थित है अर ध्यानमें अंतर्मुहूर्त्त ठहरना कह्या है सो इस ध्यानकी अपेक्षा तौ इहां ध्यान है नाहीं अर योगके थमनेकी अपेक्षा ध्यानका उपचार है अर उपयोगकी अपेक्षा कहिये तौ उपयोग थम ही रह्या है किछू जानना रह्या नाहीं तथा पलटावनेवाला प्रतिपक्षी कर्म रह्या नाहीं तातैं सदा ही ध्यान है अपने स्वरूपमें रमि रहे हैं ज्ञेय आरसीकी ज्यों समस्त प्रतिबिंबित होय रहे हैं, मोहके नाशतैं काहूविषै इष्ट अनिष्टभाव नाहीं है ऐसैं सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाती नामा तीसरा शुक्लध्यान प्रवर्त्तै है ॥ ४८४ ॥

आगैं चौथा भेद कहै हैं,—

जोगविणासं किच्चा कम्मचउक्कस्स खवणकरणट्ठं ।

जं ज्झायदि अजोगिजिणो णिक्किरियं तं चउत्थं च

भापार्थ–केवली भगवान् योगनिकी प्रवृत्तिका अभाव-करि जब अयोगी जिन होय है तब अघातियाकी प्रकृति सत्तामें पिच्यासी रहीं है तिनिका क्षय करनेके अर्थ जो ध्यावै है सो चौथा व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामा शुक्लध्यान होय है भावार्थ–चौदहवा गुणस्थान अयोगीजिन है तहां स्थिति पचलघु अक्षरप्रमाण है. तहा योगनिकी प्रवृत्तिका अभाव है सो सत्तामें अघातिकर्मकी पिच्यासी प्रकृति है तिनिके नाशका कारण यह योगनिका रुकना है तातैं इसकौं ध्यान कह्या है. सो तेरहवा गुणस्थानकी ज्यों इहा भी ध्यानका उपचार जानना. किछू इच्छापूर्वक उपयोगका थांभनेरूप ध्यान है नाहीं, इहा कर्म प्रकृतिनिके नाम तथा और भी विशेष कथन अन्यग्रंथनिके अनुसार है सो संस्कृतटीकातैं जानना, ऐसैं ध्यान तपका स्वरूप कह्या ॥ ४८५ ॥

आगें तपके कथनकौं संकोचै है,—

एसो वारसभेओ उग्गतवो जो चरेदि उवजुत्तो ।
सो खविय कम्मपुंजं मुत्तिसुहं उत्तमं लहई ॥४८६॥

भापार्थ–यह बारह प्रकारका तप कह्या जो मुनि इनिविषै उपयोग लगाय उग्र तीव्र तपकौ आचरण करै है सो मुनि मुक्तिके सुखकौं पावै है कैसा है मुक्तिसुख खेप हैं कर्मके पुंज जानैं बहुरि अक्षय है अविनाशी है. भावार्थ–तप

तैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संवर होय है सो ए दोऊ ही मोक्षके कारण हैं सो जो मुनिव्रत लेयकरि बाह्य अभ्यंतर भेदकरि कह्या जो तप ताकौं तिस विधानकरि आचरै है सो मुक्ति पावै है, तब ही कर्मका अभाव होय है याहीतैं अविनाशी बाधा रहित आत्मीक सुखकी प्राप्ति होय है ऐसैं बारह प्रकारके तपके धारक तथा इस तपका फल पावैं ते साधु च्यारि प्रकारकरि कहे हैं अनगार, यति, मुनि, ऋषि, तहां सामान्य साधु गृहवासके त्यागी मूलगुणनिके धारक ते अनगार हैं बहुरि ध्यानमैं तिष्ठैं श्रेणी मांडैं ते यति हैं. बहुरि जिनको अवधि मनःपर्ययज्ञान होय तथा केवलज्ञान होय ते मुनि हैं बहुरि ऋद्धिधारी होय ते ऋषि हैं तिनके च्यारि भेद राजऋषि, ब्रह्मऋषि, देवऋषि, परमऋषि, तहां विक्रिया ऋद्धिवाले राजऋषि, अक्षीण महानस ऋद्धिवाले ब्रह्मऋषि, आकाशगामी देवऋषि, केवलज्ञानी परमऋषि हैं ऐसैं जानना ॥ ४८६ ॥

आगैं या ग्रंथका कर्त्ता श्रीस्वामिकार्त्तिकेयनामा मुनि हैं सो अपना कर्त्तव्यप्रगट करै हैं,—

जिणवयणभावणट्ठं सामिकुमारेण परमसद्धाए ।
रइया अणुपेक्खाओ चंचलमणरुंभणट्ठं च ॥४८७॥

भाषार्थ—यह अनुप्रेक्षा नाम ग्रंथ है सो स्वामिकुमार जो स्वामिकार्तिकेय नाम मुनि तानैं रच्या है, गाथारूप रचना करी है. इहां कुमार शब्दकरि ऐसा सूच्या है जो यह मुनि

जन्महीतैं ब्रह्मचारी हैं तानै यह रची है, सो श्रद्धाकरि रची है. ऐसा नाहीं जो कथनमात्रकरि दिई हो इस विशेषणतैं अनुप्रेक्षातैं अति प्रीति सूचै है बहुरि प्रयोजन कहै हैं कि,- जिन वचनकी भावनाकी अर्थ रच्या है इस वचनतैं ऐसा जनाया है जो ख्याति लाभ पूजादिक लौकिकप्रयोजनके अर्थ नाहीं रच्या है. जिनवचनका ज्ञान श्रद्धान भया है ताकौ वारम्वार भावना स्पष्ट करना यातैं ज्ञानकी वृद्धि होय कषायनिका प्रलय होय ऐसा प्रयोजन जनाया है. बहुरि दूजा प्रयोजन चंचल मनकौ थांमनेके अर्थ रची है. इस विशेषणतैं ऐसा जानना जो मन चचल है सो एकाग्र रहै नाहीं ताकौ इस शास्त्रमें लगाइये तौ रागद्वेषके कारण जे वषय तिनिविषै न जाय इस प्रयोजनके अर्थ यह अनुप्रेक्षा ग्रंथकी रचना करी है. सो भव्य जीवनिकौं इसका अभ्यास करना योग्य है. जातैं जिनवचनकी श्रद्धा होय, सम्यग्ज्ञानकी वधवारी होय. अर मन चचल है सो इसके अभ्यासमें लगै अन्य विषयनिविषै न जाय ॥ ४८७ ॥

आगें अनुप्रेक्षाका माहात्य कहि भव्यनिकौं उपदेशरूप फलका वर्णन करै हैं,—

बारसअणुपेक्खाओ भणिया हु जिणागमाणुसारेण ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥

भावार्थ-ए बारह अनुप्रेक्षा जिन आगमके अनुसार ले प्रगटकरि कही हैं ऐसा वचनकरि यह जनाया है जो मैं क

ल्पित न कही हैं पूर्व अनुसारतैं कही हैं सो इनिकौं जो भव्य जीव पढै अथवा सुणै अर इनिकी भावना करै वारम्वार चिंतवन करै सो उत्तम सुख जो बाधारहित अविनाशी स्वात्मीक सुख, ताकौं पावै यह सभावनारूप कर्त्तव्य अर्थका उपदेश जानना. भव्य जीव है सो पढौ सुणो वारम्वार इनिका चितवन रूप भावना करौ ॥ ४८८ ॥

आगैं अन्त्यमगल करै हैं,--

तिहुयणपहाणस्वामिं कुमारकाले वि तविय तवयरणं।
वसुपुज्जसुयं मल्लिं चरिमतिय सथुवे णिच्च ॥४८९॥

भाषार्थ—तीन भुवनके प्रधानस्वामी तीर्थंकर देव जिनने कुमार कालविषै ही तपश्चरण धारण किया, ऐसे वसुपूज्य राजाके पुत्र वासुपूज्यजिन, अर मल्लिजिन अर चरम कहिये अतके तीन नेमिनाथ जिन, पार्श्वनाथ जिन, वर्द्धमान जिन ए पाच जिन, तिनिकौं मैं नित्य ही स्तवू हू तिनिके गुणानुवाद करू हू वदू हू भावार्थ—ऐसैं कुमारश्रमण जे पाच तीर्थंकर तिनिकौं स्तवन नमस्काररूप अतमगल कीया है इहा ऐसा सूचै है कि—आप कुमार अवस्थामें मुनि भये हैं तातैं कुमार तीर्थंकरनितैं विशेष प्रीति उपजी है तातैं तिनिके नामरूप अतमगल कीया है ॥ ४८९ ॥

ऐसैं श्रीस्वामिकार्त्तिकेय मुनि यह अनुप्रेक्षा नामा ग्रन्थ समाप्त कीया।

आगैं इस वचनिकाके होनेका सवन्ध लिखिये हैं,—

दोहा ।

प्राकृत स्वामिकुमार कृत, अनुप्रेक्षा शुभ ग्रन्थ ।
देशवचनिका तासकी, पढ़ौ लगौ शिवपंथ ॥ १ ॥

चौपई ।

देश ढुंढाहड जयपुर थान । जगतसिंह नृपराज महान ।
न्यायबुद्धि ताकैं नित रहै । ताकी महिमा कोकवि कहै ॥२॥
ताकै मंत्री बहुगुणवान । तिनकैं मंत्र राजसुविधान ॥
ईति भीति लोकनिकैं नाहिं । जो व्यापै तौ झट मिटि जाहिं ॥
धर्मभेद सब मतके भले । अपने अपने इष्ट जु चले ॥
जैनधर्मकी कथनी तनी । भक्ति प्रीति जैननिकै घनी ॥ ४ ॥
तिनमें तेरापंथ कहात । धरैं गुणीजन करैं बढ़ाव ॥
तिनिकै मध्य नाम जयचंद्र । मैं हूं आतमराम अनंद ॥ ५ ॥
धर्मरागतैं ग्रन्थ विचारि । करि अभ्यास लेय मनधारि ॥
भावनबारह चिंतन सार । सो हूं लखि उपज्यो सुविचार ६
देशवचनिका करिये सोय । सुगम होय बांचै सब कोय ॥
यातैं रची वचनिका सार । केवल धर्मराग निरधार ॥ ७ ॥
मूलग्रन्थतैं घटि बढ़ि होय । ज्ञानी पंडित सोधौ सोय ॥
अल्पबुद्धिकी हास्य न करैं । संतपुरुष मारग यह धरैं ॥ ८ ॥
बारह भावनकी भावना । बहु लै पुण्ययोग पावना ॥
तीर्थंकर वैराग जु होय । तब भावैं सब राग जु खोय ॥९॥
दीक्षा धरैं तब निरदोष । केवल लै फरु पावैं मोष ॥
यह विचारि भावौ भवि जीव । सब कल्याण सु धरौ सदीव ॥

पंच परमगुरु अरु जिनधर्म। जिनवानी भाषै सब मर्म ॥
चैत्य चैत्यमंदिर पढि नाम। नमूं मानि नव देव सुधाम ११

दोहा।

संवत्सर विक्रमतणूं, अष्टादशशत जानि।
त्रेसठि सावण तीज वदि, पूरण भयो सुमानि ॥१२॥
जैनधर्म जयवंत जग, जाको मर्म सु पाय।
वस्तु यथारथरूप लखि, ध्यावैं शिवपुर जाय ॥१३॥

इति श्रीस्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा जयचंदजीकृत
वचनिकासहित समाप्त।

लीजिये ! पांचसौका ग्रंथराज इक्यावन रुपयेमें—

# सिद्धांत ग्रंथ गोम्मटसारजी ।

( लब्धिसार क्षपणासारजी भी साथमें हैं )

ये ग्रन्थराज पाच वर्षसे हमारे यहां छप रहे थे, सो अब लब्धिसारक्षपणासारजी सहित ६ खंडोंमें छपकर संपूर्ण हो गये । जीवकांड १४०० पृष्ठ कर्मकांड सदृष्टिसहित १६००, पृष्ठ लब्धिसारक्षपणासारजी ११०० पृष्ठ कुल ४१०० पृष्ठ श्लोक संख्या सबकी अनुमान १,२५००० के होगी । क्योंकि इन सबमें संस्कृतटीका और स्वर्गीय प० टोडरमलजी कृत वचनिका सहित मूलगाथायें छपी हैं । कागज स्वदेशी एंटिक टिकाऊ ५० पौंडके लगाये गये हैं । ऐसा बडा ग्रंथ जैनसमाजमें न तो किसीने छपाया और न कोई आगेको भी छपानेका साहस कर सकता है । अगर इस समस्त ग्रन्थको हाथसे लिखवाया जाय तो ५००) रु० से ऊपर खर्च पडेंगे और १० वर्षमें भी सायद लिखकर पूरा न होगा वही ग्रंथ हाथसे लिखे हुये ग्रंथोंसे भी दो बातोंमें पवित्र छपा हुवा—केवल ५१) रुपयोंमें देते हैं डांकखर्च ६।) जुदा लगेगा ।

ये ग्रंथराज सिद्धांत ग्रंथोंमें एक ही हैं यह जैनधर्मके समस्त विषय जाननेके लिए दर्पण समान हैं । इसके पढे विना कोई जैनधर्मका जानकार पण्डित ही नहीं हो सकता ।

## लब्धिसार क्षपणासारजी ।

( भाषा और संस्कृतटीका सहित )

भगवान नेमिचन्द्राचार्य जब गोमट्टसारजी सिद्धांतग्रंथकी रचना कर चुके और उसमें केवल बीस परूपणाओंका तथा जीवको अशुद्ध दशामें रखनेवाले कर्मोंका ही वर्णन आ पाया तो उनने सांसारिक दशासे मुक्त होनेकी रीतिका भी वर्णन करना उपयुक्त समझा। बस ! इसी बातका इस ग्रन्थमें सविस्तर वर्णन है। यदि आपने अपनी अनन्त कालसे संसारमें परिभ्रमणकर प्राप्त हुई पर्यायोंका दिग्दर्शन कर लिया है, यदि आपने उन अशुद्ध वैभाविक पर्यायोंको उत्पन्न करानेवाले वास्तविक कर्मरूपी शत्रुओंकी समस्त सेनाको पहिचान लिया है तो आपका सबसे पहिले यह कर्तव्य है कि आप अपनी शुद्ध दशा होनेकी रीति जो आचार्य महाराजने इस ग्रन्थमें बतलाई है, उसका मनन अध्ययन करें। पुष्ट कागज, मोटे अक्षरोंमें प० टोडरमल्लजी कृत भाषा भाष्य और संस्कृतटीका सहित है। पृष्ठ संख्या ११०० सौ। न्योछावर १२॥) पोष्टेज १।) जुदा।

जिन भाइयोंने गोमट्टसारजी पूर्ण लिये हैं उनको तो अवश्य ही यह ग्रंथ मगाना चाहिये। न्योछावर उनके लिए १०) रु० ही है। पोष्टेज जुदा।